# मुक्ति का सहज उपाय

(पुस्तक संख्या–22)

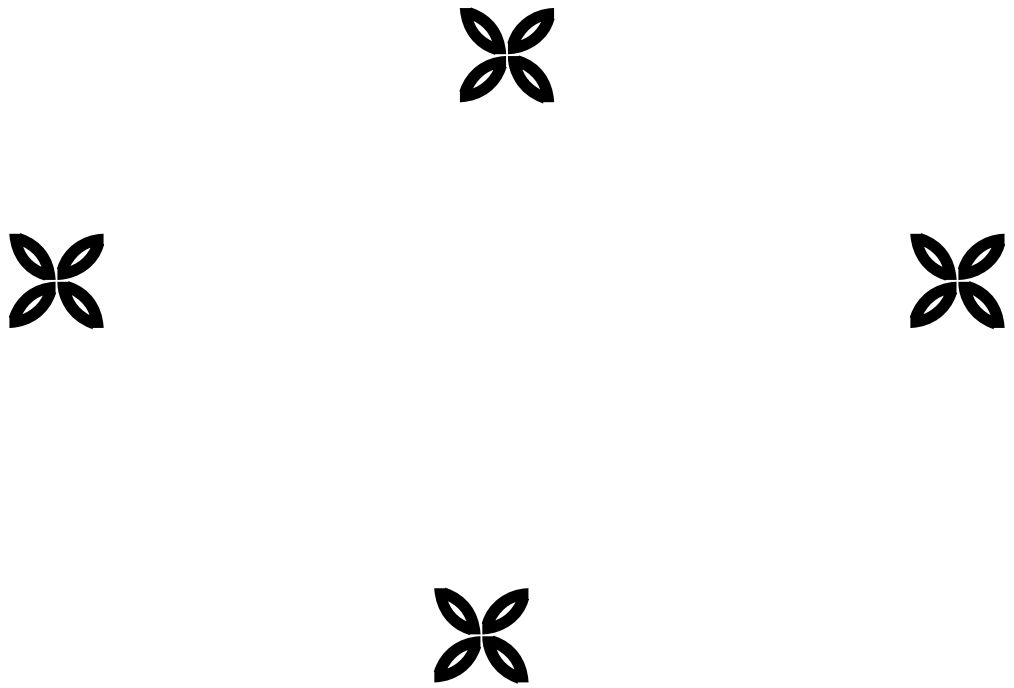

विनयावनत–

❖ ब्रह्मशंकर शास्त्री

## ❖प्रकाशक की ओर से –

श्रीमद्भगवद्गीता विश्व का उत्कृष्ट ग्रन्थ है, ये तथ्य विश्व के दार्शनिक मनीषी स्वीकार करते हैं। इस अतुलनीय ग्रन्थ पर भारतवर्ष के प्रकाण्ड विद्वानों ने भाष्य–टीकायें लिखी हैं। आद्यशंकराचार्य ,भगवान रामानुजाचार्य आदि ने संस्कृत भाषा में श्रीगीताजी पर भाष्य लिखे हैं। अपने समय के मूर्धन्य विद्वान तथा सिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर ने मराठी भाषा में ज्ञानेश्वरी नामक ग्रन्थ की रचना की । ये ग्रन्थ श्रीगीताजी की विशिष्ट टीका मानी जाती है। इसके अतिरिक्त महार्षि अरविन्द, श्री बालगंगाधर तिलक, श्रीमद् ए.सी.भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ,स्वामी रामसुखदासजी महाराज आदि विशिष्ट विद्वानों ने विद्वतापूर्ण भाष्य लिखें है। चूँकि श्रीगीताजी पर जो भाष्य लिखे गये वे सभी प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा ही लिखें गये, इस कारण वे विद्वानों द्वारा ही ग्रहण किये जा सकते हैं। इसी कारण जन सामान्य श्रीगीताजी के ज्ञान से आज तक वंचित रहा, इस तथ्य को दृष्टिगत् रखकर श्री ब्रह्मशंकर शास्त्री द्वारा भगवद्गीता के 21 खण्डों के भाष्य का प्रणयन किया गया है, जो अत्यन्त सरल भाषा में है तथा जनसामान्य हेतु ग्राह्य है।

सम्पूर्ण गीताज्ञान के विशिष्ट तथ्यों का एक पुस्तक के रूप में जनसामान्य अध्ययन कर सके इस हेतु एक तथ्यपूर्ण पुस्तक की आवश्यकता का अनुभव कर यह '**मुक्ति का सहज उपाय**' नामक पुस्तक की रचना शास्त्रीजी द्वारा की गयी है। इस पुस्तक में मन ,बुद्धि ,अंहकार तथा परमात्मा की पराप्रकृति एवं पराशक्ति जीव तथा माया पर विशेष प्रकाश डाला गया है और उक्त की क्रियाविधि तथा स्वरूप का विशिष्ट वर्णन किया गया है। मनुष्य जीवन में परमात्मा की अनुभुति संशयरहित होकर कैसे कर सकता है ?इस तथ्य को भी विस्तार से समझाया गया है। आशा है कि ये पुस्तक जनसामान्य तथा साधकों के लिए विशेष उपयोगी होगी।

❖ **प्रकाशक**

## ❖ *पाठकों से प्रार्थना –*

यदि आप किसी विद्या के मूर्धन्य विद्वान हैं, अथवा दार्शनिक, चिन्तक, विचारक, साहित्यकार, कवि, शिक्षाशास्त्री न्यायविद्, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, गणितज्ञ, प्रवक्ता, विधिवेत्ता मनीषी, आचार्य, चिकित्साशास्त्री, अभियन्ता, खगोलशास्त्री, अभिनेता, कलाकार, शास्त्री, ज्योतिष मर्मज्ञ, राष्ट्राध्यक्ष शासक, प्रशासक शास्त्रों के स्वाध्यायी हैं,तो भी पहले आप एक मानव हैं। एक मानव होने के कारण हमारा प्रथम कर्तव्य है कि हम अपने बारे में जाने कि हम क्या हैं ? इस जगत् में क्यों आये हैं ? हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है ? हमारा शरीर क्या है? यह किस प्रकार कार्य करता है ? इसकी कार्य प्रणाली क्या है?यह जगत् क्या है?किस आधार वाला है? इसका नियन्त्रण कहॉ से हो रहा है? कौन इसे नियन्त्रित कर रहा है?हमारी मृत्यु क्यों होती है ? और जन्म क्यों और कैसे होता है ? इन समस्त प्रश्नों का उत्तर हमें जानना चाहिए । यदि हमने इन प्रश्नों को नही जान पाया तो हम जो भी है वह अन्ततः समाप्त होने वाला है। हम अपने को जो भी मान रहे हैं, अथवा जगत् में हमारी जो छवि है वह अन्ततः हमारी मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो जायेगी। इस कारण हमें सत्य को जानकर उसका अनुगमन करना चाहिए। सत्य को जानकर हम मुक्त हों, यह मानव जीवन का एक मात्र उद्देश्य ळें यह लघु पुस्तिका उपर्युक्त प्रश्नों के समुचित निराकरणों को प्रस्तुत करने तथा सत्यतत्त्व के निष्पादन का प्रयास है। आशा है कि आप सत्य को पढ.कर, समझकर उसका अनुकरण करके मुक्त होगें ।

**❖ ब्रह्मशंकर शास्त्री**

# परमात्मा की असीम कृपा

आप यदि विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्ति हैं तो परमात्मा की आप पर अपार कृपा है। वह सभी को विलक्षण बुद्धि नहीं देता। सामान्यतः अधिकांश मनुष्य सामान्य बुद्धि के होते हैं। हजारों मनुष्यों में एक आध मनुष्यों को परमात्मा कुछ विशिष्ट बुद्धि प्रदान कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा के पास बुद्धि रूपी तत्त्व की कमी है। ये हमारी अपनी कल्पना है। हो सकता है इसी कारण उसने सबको विलक्षण बुद्धि प्रदान नहीं की है। सामान्य रूप से थोड़ी–थोड़ी बुद्धि उसने सबको दी है, जिससे वह अपनी जीवन रूपी यात्रा को पूरी करता है। बाल्यावस्था में जो बुद्धि रहती है वह युवावस्था होते होते कुछ प्रखर हो जाती है तथा वृद्धावस्था में प्रखरता तो कम हो जाती है पर जीवनभर के अनुभव के कारण मनुष्य कुछ अनुभवशील हो जाता है। वृद्धावस्था के पश्चात् उसकी मृत्यु निश्चित है। यह सभी के लिए अनिवार्य स्थिति है, जिससे सभी को गुजरना पड़ता है।

यदि परमात्मा ने आपको कुछ विलक्षण बुद्धि प्रदान की है तथा सामान्य लोगों की श्रेणी से आपको उच्च श्रेणी दी है तो आप ये विचार करें की हमें उसने कुछ विलक्षण बुद्धि क्यों दी है ? लौकिक जीवन में जब हम किसी व्यक्ति से अधिक स्नेह करते हैं अथवा किसी व्यक्ति को अनुग्रहीत करना चाहते हैं तो उसे कुछ विशेष वस्तु भेंट करते हैं, और प्रयास करते हैं कि जो वस्तु भेंट की जावे वह मूल्यवान हो। अपनी क्षमता से कम न हो तथा कुछ विशिष्ट हो। इसी प्रकार यदि परमात्मा ने हमारी ओर कृपा दृष्टि करके कुछ विशिष्ट बुद्धि हमें प्रदान की है तो ये उसकी विशिष्ट कृपा ही है। हमें उसके बारे में विचार करना चाहिए कि उसने हमें ही क्यों विशिष्ट लोगों की सूची में स्थान प्रदान किया है ?

यदि हम विशिष्ट बुद्धि के स्वामी हैं और परमात्मा प्रदत्त भेंट का अनुग्रह हमें प्राप्त हुआ है तो हमें अपने बारे में तथा परमात्मा के विषय में अवश्य ही विचार करना चाहिए। यदि हमने विलक्षण प्रतिभा का प्रयोग सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति तथा सांसारिक भोगों में समाप्त कर दिया तो हम भी उन्हीं लोगों की श्रेणी में आ जाते हैं जो जन्म लेते हैं और समय के साथ समाप्त हो जाते हैं। मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। हमें भी निश्चित ही मृत्यु मिलेगी और पल–प्रतिफल ही हम उसकी ओर बढ़ रहे हैं। हर पल एक कदम मृत्यु के विशाल खण्डहर

की ओर बढ़ रहा है। हम ये जानते हैं पर उसकी उपेक्षा करते हैं पर ऐसा व्यवहार करते हैं कि जैसे हमें अमरता प्राप्त हो। हम यदि विशिष्ट प्रतिभा के बुद्धिमान मनुष्य हैं तो हमें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हमें तत्त्व प्राप्त करने का, सत्य को जानने का प्रयास करना चाहिए। सत्य को जानें और मुक्त हो यही हमारी विलक्षण बुद्धि का एकमात्र अभिप्राय होना चाहिए।

हमें ये मानव जीवन यूँ ही नहीं प्राप्त हुआ है। इसका एक निश्चित उद्देश्य है। हमारी तरह ही कीड़े, पशु–पक्षी आदि जीव भी चेतन हैं पर उनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है। वे उद्देश्य लेकर उत्पन्न नहीं हुए हैं। हमें परमात्मा ने विलक्षण वस्तु बुद्धि प्रदान करके इस जगत में अवतरित किया है। मनुष्य को बुद्धि प्रदान करके उसने मानव जीवन के लक्ष्य को जानने का अवसर दिया है। उस बुद्धिरूपी तत्त्व का हम यदि सांसारिक भोगों में विनिष्ट कर रहें है तो हमसे बड़ा कोई मूर्ख नहीं हो सकता है। यह उत्कृष्ट बुद्धि को मूखर्तापूर्ण कार्यो में लगा देने जैसा कृत्य है। इस कृत्य से हमें अपने को पृथक् कर लेना चाहिए तथा सत्य की खोज करके इस मानव जीवन के परम् पुरुषार्थ को प्राप्त कर लेना चाहिए। यही हमारी विलक्षण बुद्धि का सदुपयोग है। परमात्मा ने हमें जो उत्कृष्ट बुद्धि रूपी तत्त्व प्रदान किया है उसका सबसे सुखद उद्देश्य यही होगा की हम सत्य को जाने तथा मुक्त हों।

यह लघु पुस्तिका की रचना करने का विचार कहीं से आया। विषय वस्तु विषयों का क्रम, एक विषय के पश्चात् दूसरे विषय का प्रस्तुतीकरण, क्रमबद्ध आलेखन, किसी विषय को वर्णित करने का प्रकार, किसी विशिष्ट तथ्य की व्याख्या ये सबका सब आश्चर्यजनक रूप से बिना प्रयास से प्रकट हुए हैं। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस लघु पुस्तिका को मैने नहीं लिखा है। जिन विषयों को व्याख्यापित किया गया हैं वे अनायास मन बुद्धि में प्रकट हो गयें और स्वतः लिख गयें। कई बार आप ये अनुभव करते होंगे कि कोई विचार कहीं से आता है ? यह कहां से आता है ? यह हम नहीं जानते है ? अपने कल्याण, समाज के कल्याण के लिए आने वाले विचार परमात्मा की ओर से आते हैं और सांसारिक विचार संसार के क्रिया–कलापों को देखकर स्वतः प्रकट हो जाते हैं। ये निश्चित तथ्य है। इसीक्रम में यह रचना हुई है, वह आपके समक्ष प्रस्तुत है। आशा है कि आप लाभान्वित होंगे।

# आस्था का सम्यक् विनिश्चय

संसार में प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति पृथक्–पृथक् प्रकार की होती हैं, क्योंकि मनुष्य की प्रकृति का निर्माण परमात्मा की रचनात्मक शक्ति प्रकृति के आधार पर ही होता है। यह प्रकृति त्रिगुणात्मक है, अर्थात् सात्विक, राजसी तथा तामसी है। इस कारण प्रकृति द्वारा निर्मित मनुष्य की प्रकृति भी तीन प्रकार की होती है। जिसे सात्विक प्रकृति, राजसी प्रकृति तथा तामसी प्रकृति कहते हैं। इस प्रकार मनुष्य जिस गुण से प्रभावित रहता है उसी प्रकार की प्रकृति परिलक्षित होती है। सात्विक प्रकृति के मनुष्य में शम (संयम), दम (भोगों से दमन), तितिक्षा (कष्टों में सहनशीलता), विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, संतोष, त्याग विषयों से अनिच्छा, परमात्मा के प्रति श्रद्धा, लज्जा, आत्मरति, दया, विनय, सरलता आदि गुण स्वतः ही परिलक्षित होते हैं। इसी प्रकार राजसी प्रकृति के मनुष्यों में सांसारिक पदार्थो की इच्छा, उनकी प्राप्ति का प्रयत्न, अहंकार, तृष्णा, अकड़पन, देवताओं से सांसारिक वस्तुओं की याचना, भेदबुद्धि, विषयभोग, संशय, पद, यश, कीर्ति से स्नेह तथा उसकी प्राप्ति की इच्छा एवं प्रयत्न, हास्यरस में सुखानूभति, पराक्रम, हठपूर्वक विभिन्न कर्मो का सम्पादन आदि गुण स्वभावतः प्रकट होते हैं। तामसी प्रकृति के मनुष्य में अनायास क्रोध, लोभ, मिथ्याभाषण, हिंसा, याचना, पाखण्ड, अनावश्यक श्रम, कलह, शोक, मोह, तांत्रिक साधना, विषाद, दीनता, निन्दा, अनावश्यक आशा, भ्रम, अकर्मण्यता, असांसारिक तथा अनैतिक कर्मो की प्रवृत्ति आदि अवगुण प्रत्यक्ष प्रतीत होते है।

मनुष्य की प्रकृति जिस प्रकार की होती है, वैसी ही उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। सात्विक प्रकृति का मनुष्य सात्विक कार्यो की ओर प्रवृत्त होता है। राजसी प्रकृति का मनुष्य राजसी कार्यो की ओर प्रवृत्त होता है तथा तामसी प्रकृति का मनुष्य तामसी कार्यो की ओर स्वतः ही स्वभावतः प्रवृत्त हो जाता है। यह प्रवृत्ति अनायास अथवा बिना कारण के नहीं होती है। उसका आधार गुण (सत्त्व, रज, तम) ही हैं। सात्विक प्रकृति का मनुष्य सदा ही आत्म कल्याण के बारें में विचार करके जीवन के परमोद्देश्य मोक्ष की ओर प्रवृत्त होता है तथा समाज के हित कल्याण की बात किया करता है। ऐसे मनुष्य दूसरों के अहित के बारे में विचार भी नहीं करते। अहितकर कर्मो के क्रियान्वयन से

अपने को दूर रखते हैं। समाज में ऐसे व्यक्ति के बारें में यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति अच्छी प्रवृत्ति का है, उसमें दूसरे के हित की आकांक्षा रहती है। किसका कितना हित करें ? यह क्रिया रहती है।

राजसी प्रवृत्ति का मनुष्य रात–दिन सांसारिक वस्तुओं, धन सम्पत्ति, पद, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति में ही सुख का आभास करता है। ऐसे व्यक्ति स्वार्थी प्रकृति के होते हैं। वे अपने हित कल्याण के बारें में ही विचार करते हैं। उन्हीं व्यक्तियों से सम्पर्क सम्बन्ध रखते हैं, जिनसे उन्हें लाभ प्रतीत होता है। लाभ न प्रतीत होने वाले व्यक्ति से वे दूरी बनाये रखते हैं। किसी की सहायता के बदले लाभ लेने की बातों पर गहनता से विचार करते हैं। जहां पर लाभ न मिलने की सम्भावना प्रतीत नहीं होती है वे उस ओर उन्मुख नहीं होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को समाज में स्वार्थी तथा मतलबी कहा जाता है। राजसी प्रवृत्ति के मनुष्य दान तो देते हैं परन्तु उससे ऐश्वर्य, कीर्ति, स्वर्ग प्राप्ति का भाव रहता है।

तामसी प्रवृत्ति का मनुष्य दूसरों की धन, सम्पत्ति से स्वयं के हित कल्याण की बातें विचारता है। वह अवैधानिक रूप से असामाजिक कार्य करके भी धन की प्राप्ति करना चाहता है। लूट, मार, हिंसा आदि कार्यो की प्रकृति विशेष रहती है। दूसरों के अहित के लिए तथा उन्हें क्रियान्वित करने के उपायों पर विचार चलता है। दूसरों से मित्रता करके उससे लाभ लेने का विचार प्रबल रहता है। वे अनैतिक कार्यो में रूचि रखते हैं। प्रातः सोकर जागने से रात्रि सोने तक दूसरों के अहित की बातें सोचना उनका प्रमुख लक्षण है। ऐसे लोगों की सामाजिक छवि बहुत विकृत होती है। समाज के लोग ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाने में भी हिचकिचाते हैं और उनसे दूर ही रहना चाहतें है।

प्रकृति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से स्वभाव का निर्माण होता है। सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्तियों को अच्छे स्वभाव का पुरुष माना जाता है तथा उन्हें यथायोग्य सम्मान भी प्राप्त होता है। राजसी प्रवृत्ति के मनुष्यों को स्वार्थी स्वभाव का व्यक्ति माना जाता है तथा समाज उन्हें स्वार्थी स्वभाव के रूप में देखता है। तामसी प्रकृति के व्यक्तियों को विकृत स्वभाव का माना जाता है और समाज में उनकी छवि हिंसात्मक और दुराचारी स्वभाव वालें व्यक्तियों की

होती है। साधारणतया प्रकृति, प्रवृत्ति रूपी पौधा अंकुरित होता है तथा वह स्वभाव रूपी विशाल वृक्ष के रूप में समाज में परिलक्षित होता है। मनुष्य का स्वभाव उसके व्यवहार में, बोलचाल में, आचरण में प्रकट होता है। हमारा स्वभाव ही हमारी छवि को निर्मित करता है। समाज में लोग हमें अच्छे स्वभाव, स्वार्थी स्वभाव तथा गन्दे स्वभाव का व्यक्ति कहकर हमारी छवि को उकेरते हैं। हम भी अपने स्वभाव के अनुसार ही अपनी छवि का निर्माण करते हैं। आपने देखा होगा कि लोग किसी व्यक्ति के प्रति यह कहते है कि वह व्यक्ति अच्छे स्वभाव का नहीं है और बात बात में गुस्सा करता है और किसी के बारे में यह कहते हैं कि वह बहुत अच्छे स्वभाव का व्यक्ति है। हमने उसे कभी गुस्सा करते हुए नहीं देखा। वह सदैव दूसरों का सम्मान करता है।

वस्तुतः मनुष्य की प्रकृति रजोगुणी होती है, क्योंकि वह सांसारिक पदार्थों, भोगों में सुख का आभास करता है। मधुर संगीत सुनना, आकर्षक मनोहारी दृश्य को देखना, सुस्वाद भोजन करना, अच्छे वातावरण में रहना, सुगन्धित द्रव्यों में लिप्त रहना यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसकी प्रतिकूलता में प्रत्येक मनुष्य को कष्ट का आभास होता है। संसार के पदार्थो में सुख का आभास तथा उनकी अनुपलब्धता में दुःख का अनुभव करना ही रजोगुणी प्रकृति का लक्षण है। परमात्मा ने मनुष्य को रजोगुणी प्रकृति प्रदान करके सत्वगुणी प्रकृति को बढ़ाने का कार्य सौंपा है तथा सत्वगुण को त्याग कर उससे भी ऊपर चला जाना ही परमपुरूषार्थ है। यही जीवन का उद्देश्य है या तो हम रजोगुण में ही रहते है अथवा उससे नीचे तमोगुण में चले जाते हैं। मनुष्य मध्य में है। वह नीचे तम में भी जा सकता है और उर्ध्वगामी (सत्वगुणी) हो सकता है। उर्ध्वगामी होने के प्रयास को तपश्चर्या कहा जाता है। ऊपर उठने के लिए प्रयास करना पड़ता है। नीचे गिरने के लिए प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है तथा अपनी स्थिति में अर्थात् (रजोगुणी) रहने के लिए भी कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है, क्योंकि हम स्वभाव से रजोगुणी हैं। इस प्रकार अधिकांश लोग संसार में ही सुख समझ कर रजोगुणी रहते हैं और मृत्यु तक सांसारिक पदार्थो की प्राप्ति में अपने को संलग्न रखते हैं।

मनुष्य किस प्रकृति का होगा ? इसका वास्तविक निर्धारण हमारे पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के आधार पर ही होता है। जीव (मनुष्य) के जन्म स्थान,

परिवार, स्थिति, माता पिता का संयोग सब कुछ परमात्मा की विधि व्यवस्था के अधीन निर्धारित होता है।। इस कारण हम सभी परतन्त्र है, अर्थात् स्वतंत्र नहीं है, परन्तु इस निर्धारण में हमारे पूर्वजन्मों के कृत कर्म ही आधार हैं। मनुष्य इस पृथ्वी लोक में दो प्रकार से आता है। एक स्वर्गलोक से अपने पुण्यों के उपभोग होने के उपरान्त अथवा नरकादिक् लोकों से दुःख भोग के उपरान्त पूर्वजन्मों के पुण्य क्षय हो जायेंगे तो भी हमें पृथ्वी लोक पर आना पड़ेगा और पूर्व जन्मों के पाप दुःख भोग के उपरान्त समाप्त हो जायेंगे तो भी हमें पृथ्वी लोक पर आना पड़ेगा। शास्त्रों की ऐसी मान्यता है कि स्वर्गलोक से वापस आये हुए जीवों में करुणा, क्षमा, दया, स्नेह, दान, भगवान की भक्ति आदि भाव स्वतः ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि स्वर्गलोक में देवताओं की सान्निध्यता रहती है। नरकलोक से वापस आये हुए जीवों में क्रोध, हिंसावृत्ति, कलह, इर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि अवगगुण स्वतः रहते हैं, क्योंकि जीव का साथ क्रूर यमदूतों से रहता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति की क्रियाओं को देखकर ही उसके पूर्व स्थान अर्थात् स्वर्ग या नरक का अनुमान लगाया जा सकता है।

श्रद्धा तथा आस्था शब्दों का प्रयोग लगभग एक ही अर्थ में होता है, परन्तु श्रद्धा आधार है तथा आस्था उसका प्रकट रूप है जो जैसी श्रद्धावाला होता है, उसी प्रकार उसकी आस्था हो जाती है। श्रद्धा का उद्भव स्वभाव से होता है। इस कारण श्रद्धा को स्वभावजा कहा जाता है। स्वभावजा का अर्थ है स्वभाव से उत्पन्न होना, उद्भवित होना। श्रद्धा मनुष्य के अंतःकरण के अनुरूप होती है। अन्तःकरण में तीन तत्त्व होते हैं। मन, बुद्धि तथा अहंकार। इस कारण श्रद्धा मन की वृत्ति संकल्प के अनुरूप होती है। बुद्धि की वृत्ति विकल्प के आधार पर विनिश्चत होती है तथा अहंकार की वृत्ति मैपन के अनुरूप प्रकट हो जाती है। मन, बुद्धि तथा अहंकार के तीन–तीन प्रकार हैं। सात्विक मन, राजसी मन तथा तामसी मन। सात्विक बुद्धि, राजसी बुद्धि तथा तामसी बुद्धि और सात्विक अहंकार, राजसी अहंकार तथा तामसी अहंकार। मन में यदि सात्विक विचार आता है तो सात्विक बुद्धि उसका यथार्थ विनिश्चय करके ज्ञान रूपी सात्विक अहंकार प्रकट करती है। मन में जब राजसी विचार आता है तब राजसी बुद्धि उसका संशयपूर्ण विनिश्चय करके तृष्णा और आसक्ति रूप से राजसी अहंकार से उसका प्रकटीकरण करती है और जब मन में तामसी विचार आता है तब तामसी बुद्धि उस तथ्य का प्रतिकूल अज्ञानपूर्ण विनिश्चय

करके तामसी अहंकार निद्रा, आलस्य, प्रमाद के रूप में प्रकट करती है। इस प्रकार हम जिस गुण से प्रभावित होते हैं वैसी ही हमारी श्रद्धा होती है क्योंकि श्रद्धा सत्त्व (अन्तःकरण) के अनुरूप ही होती है उससे पृथक् नहीं हो सकती है।

हमारा अंतःकरण इस प्रकार से तीन तरह का होता है। अन्तःकरण मन, बुद्धि, अहंकार का समुच्चय होता है इस कारण अंतःकरण के भी तीन भेद हैं। 1– सात्विक अंतःकरण 2– राजसी अंतःकरण 3– तामसी अंतःकरण। अन्तःकरण के आधार पर ही बाह्यकरण (पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा पांच कर्मेन्द्रियों)की क्रियायें भी सम्पादित होती हैं। हमारा अंतःकरण यदि सात्विक है तो वाह्य कारण भी स्वतः ही सात्विक हो जाता है और हम इन्द्रियों से स्व तथा पर कल्याण के कर्म करने लगते हैं। यदि हमारा अन्तःकरण राजसी है तो बाह्यकरण की क्रियायें भी राजसी हो जाती है। हम पूर्ण स्वार्थपरता के साथ सांसारिक पदार्थो को एकत्र करने की चेष्टा करते हैं। इसी प्रकार हमारा अन्तःकरण तामसी है तो हमारें बाह्यकरण भी तामसी हो जाते हैं और हम दूसरों के अहित से स्वयं की सुख प्राप्ति की क्रिया में संलग्न हो जाते हैं। अन्तःकरण के अनुरूप श्रद्धा होने के कारण हमारी श्रद्धा भी तीन प्रकार की हो जाती है **1– सात्विक श्रद्धा 2– राजसी श्रद्धा 3– तामसी श्रद्धा।**

सात्विक श्रद्धा से प्रभावित मनुष्य देवी देवताओं का ध्यान पूजन करता है। राजसी श्रद्धा से युक्त मनुष्य यक्ष–राक्षसों की उपासना करता हैं तथा तामसी श्रद्धा से युक्त मनुष्य भूतप्रेतों की उपासना करता हैं। देवी देवताओं की उपासना से हमें सात्विक बुद्धि प्राप्त होती है। यक्ष–राक्षसों की पूजा से हमें सांसारिक वस्तुओं के एकत्रीकरण की बुद्धि प्राप्त होती है और तामसी श्रद्धा से लोगों के अहित करने की बुद्धि स्वतः ही हस्तगत होती है। यह बुद्धि का परिवर्तन स्वतः ही हमारी श्रद्धा के आधार पर ही होता है और वैसा ही हम विनिश्चय करने लगते हैं। सात्विक बुद्धि देवी देवताओं की उपासना का विनिश्चय करके उसकी प्राप्ति, आस्था को प्रकट करती है। राजसी बुद्धि पद तथा राक्षसों की उपासना करके उनके प्रति आस्था का विनिश्चय करती है और चमत्कार में अपना विश्वास प्रकट करती है तथा तामसी बुद्धि भूत–प्रेतों की उपासना करके उनके प्रति श्रद्धा का विनिश्चय करती है तथा तांत्रिक उपासनाओं से लोगों का अहित करती है। इस प्रकार सात्विक श्रद्धा सात्विक

आस्था प्रकट करती है। राजसी श्रद्धा राजसी आस्था प्रकट करती है तथा तामसी श्रद्धा तामसी आस्था प्रकट करती है।

सात्विक श्रद्धा से हम देवी देवताओं को प्रसन्न करना चाहते हैं। वे हमारी आस्था से प्रसन्न होकर हमें संसार के सुख तथा मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक प्रदान कर देते है। राजसी श्रद्धा से हम राक्षसों को प्रसन्न करना चाहते हैं। वे हमारी आस्था से प्रसन्न होकर संसार की वस्तुऐं उपलब्ध कराते हैं तथा मृत्यु के पश्चात् अपने लोकों में वास करातें है तथा तामसी श्रद्धा से हम तांत्रिक साधना करके भूत–प्रेतों को प्रसन्न करना चाहते हैं तो हमारी आस्था से प्रसन्न होकर भूत–प्रेत हमें लोगों के अहित करने की शक्ति देते हैं तथा मृत्यु के उपरान्त अपने साथ ले जाते हैं। सात्विक श्रद्धा से भी ऊंची श्रद्धा परमात्मा की उपासना की है। वे हमें इस जगत से मुक्त जीवन देते हैं तथा मृत्यु के उपरान्त जन्म मरण के भय से मुक्त कर देते हैं। इस कारण हमें परमात्मा की उपासना करके एक मात्र उसी में आस्था रखनी चाहिए। यही आस्था का सम्यक् विनिश्चय है।

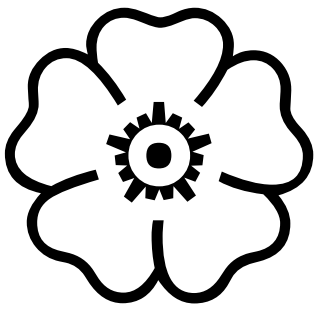

## 1– अव्यक्त व्यक्त है–

इस ब्रह्माण्ड में दो प्रकार की वस्तुऐं हैं एक अव्यक्त तथा दूसरी व्यक्त। अव्यक्त रहकर भी किसी न किसी रूप में व्यक्त होती हैं। व्यक्त को हम स्वीकार करते हैं तथा अव्यक्त को स्वीकार भी करते हैं और अस्वीकार भी करते हैं। व्यक्त को स्वीकार करना अव्यक्त को अस्वीकार करना, आधी अधूरी स्वीकारोक्ति है। इस जगत की परम् सत्ता अव्यक्त है पर उसका व्यक्तीकरण है। ये तथ्य भी हमें स्वीकार ही करना पड़ेगा। प्रश्न ये है कि उस अव्यक्त सत्ता को हम स्वीकार क्यों करें? हमारी स्वीकारोक्ति की बाध्यता क्यों है? क्या हमारे सम्मुख या हमारे समक्ष उसकी स्वीकारोक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है? अवश्य नहीं है। नितान्त नहीं है। बिल्कुल नहीं है। हमारे समक्ष कोई मार्ग नहीं है। हमें उसे स्वीकार ही करना पड़ेगा। अस्वीकार करने का प्रश्न हमें तार्किक रूप से समाप्त करना पड़ेगा। ये प्रश्न जब समाप्त हो जायेगा तो हमारे सम्मुख अव्यक्त सत्ता व्यक्त हो जायेगी और हम साधक से सिद्ध हो जायेंगे।

संसार के अन्य लोग उसे स्वीकार करते हैं, ऐसी स्वीकारोक्ति हमें नहीं चाहिए। हमारी स्वीकारोक्ति तार्किक हो, प्रयोगात्मक हो तब हम उसे स्वीकार करें। इस तथ्य पर हमें विचार करना है। तर्क करने के, तर्क प्रस्तुतीकरण और तर्क से सिद्ध करने के लिए हमारे पास दो शक्तियां हैं इन्हें मन और बुद्धि कहा जाता है। मन तथा बुद्धि की क्रिया विधि पर तर्क–वितर्क करके अनेक प्रकार के प्रश्न खड़े किये जाते हैं। इनका उत्तर भी खोजते हैं। जो प्रश्न खड़े किये जाते हैं उन्हे संकल्प कहा जाता है और जो उत्तर खोजे जाते हैं उसे विकल्प कहा जाता है। संकल्प मन की वृत्ति है तथा विकल्प बुद्धि की वृत्ति है जो तथ्यों का तर्कपूर्ण विनिश्चय करती है। इसी संकल्प अर्थात् प्रश्न और विकल्प अर्थात् उत्तर के आधार पर उस परमसत्ता तथा उसके संजाल की स्वीकारोक्ति करना हमारा परम लक्ष्य है। बिना तर्क के हम उसे स्वीकार नहीं करते। हम ये नहीं चाहते कि आप उसे बिना तर्क के स्वीकार करें। जो प्रश्न हो उसका उत्तर हो, वह भी तार्किक समाधानपूर्ण हो तो ये प्रयोगात्मक कहा जायेगा। यदि किसी प्रश्न का आधारभूत उत्तर नहीं है तो वह अतार्किक ही कहा जायेगा। उसे प्रयोगात्मक नहीं कहा जा सकता।

क्या परम सत्ता परमात्मा है? चूँकि वह व्यक्त नहीं है अव्यक्त है। इस कारण उसकी स्वीकारोक्ति व्यक्त की तरह से नहीं अव्यक्त की भांति है, परन्तु उस अव्यक्त को व्यक्त के समान सिद्ध करना प्रयोगात्मक है। हमारे विचार से वह

हमें प्रतीत हो उसका हमें आभास हो, तो यह तार्किक प्रतीत होगा। हम भी ऐसी अभिव्यक्ति में विश्वास रखते हैं। पुरानी मान्यताओं को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना हमारा लक्ष्य है। हमारी इसी प्रकार की रूचि है। लोग दृढ़तापूर्वक समझें और उसका आभास करें। अव्यक्त को व्यक्त करा देना, उसे तर्क की कसौटी पर खरा सिद्ध कर देने की हमारी आकांक्षा है। अव्यक्त को व्यक्त करना हमारा लक्ष्य तो है ही पर उसका आप भी सर्वत्र प्रतिपल आभास करें ये हमारा परम् लक्ष्य है।

## 2– व्यक्त अव्यक्त क्यों हो जाता है?

हमारा परिवार और समाज में अनेक व्यक्तियों में सम्बंध रहता है। संलग्नता रहती है, स्नेह रहता है। हम उनके साथ अपने संबंधों को प्रगाढ. करते हैं और उनके बिना रहने की कल्पना भी नहीं करते हैं। पिता–माता जो हमारे जीवन का आधार हैं उनसे भी हम स्नेह करते हैं, परन्तु अचानक कुछ निकटतम हमारा साथ छोड़कर शून्य में खो जाते हैं। हमारे लाख प्रयासों के बावजूद उनकी व्यक्तता को हम रोक नहीं पाते हैं। वह व्यक्त से अव्यक्त हो जाते हैं। हम यह भी जानते है कि हम आज व्यक्त हैं और कल अव्यक्त हो जायेंगे। इस अव्यक्तीकरण की प्रक्रिया को हम रोक नहीं पायेंगे।

यह व्यक्त से अव्यक्त होने की क्रिया युगों–युगों से चली आ रही है। जो व्यक्त था वह अव्यक्त हो रहा है। होता जा रहा है। भविष्य में होता रहेगा। ये प्रक्रिया कौन करा रहा है? वह प्रतीत तो नहीं होता पर उसका प्रभाव उसकी प्रक्रिया प्रतीत हो रही है। वह व्यक्त नहीं है, अव्यक्त है, परन्तु अव्यक्त रहकर व्यक्त को अव्यक्त में परिवर्तित कर रहा है। वह निश्चित समय पर व्यक्त को अव्यक्त कर देता है। आज के युग में हम इतने साधन सम्पन्न होकर इसे रोक नहीं पाते हैं। संसार के विलक्षण दार्शनिक, वैज्ञानिक, मनीषी सन्त, विद्वान कल तक जो व्यक्त थे और उनकी कृतियॉ आज भी व्यक्त हैं, पर वे अव्यक्त हो गये।

हम जानते हैं उनके नाम हैं। वे नाम रूपी संज्ञा से जाने जाते हैं, पर वो अव्यक्त हैं। हमें प्रतीत नहीं हो रहे हैं। वहां जहां जिस क्षेत्र में कार्य कर रहे थें, उसी क्षेत्र के कार्य से व्यक्त हो रहे हैं, परन्तु शरीर से अव्यक्त हैं। ये सम्पूर्ण व्यवस्था वह अव्यक्त सत्ता कर रही है। उस सत्ता का एक निश्चित कार्य दृष्टिगोचर हो रहा है। भासता है। हम अनुभव न करके उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। हम इस तथ्य से दृढ़मत हैं कि कोई अव्यक्त सत्ता लाखों वर्षों से हमारी पीढ़ी

को पहले व्यक्त करती है तत्पश्चात् उसे अव्यक्त कर देती है। वह स्वयं तो अव्यक्त है, परन्तु व्यक्त को अव्यक्त करना उसका विलक्षण कार्य है। ये उसका दिव्य प्रभाव है। वह दिव्य आलौकिक सत्ता है। उसकी दिव्यता का उसके कर्म का हमें आभास करना चाहिए। वह है, उसका अस्तित्व है यह तथ्य हमें स्वीकार करना चाहिए। दृढ़ता से मानना चाहिए। ये दृढ़ता उसी प्रकार की होनी चाहिए जैसे हमे संसार में दीखने वाले और प्रतीत होने वाले तथ्यों के संबंध में होती है। हम संसार की वस्तुओं को देखकर, छूकर, आभास कर उनकी सत्ता को स्वीकार करते हैं। ये स्वीकारोक्ति भी इसी प्रकार की होनी चाहिए।

## 3– व्यक्त अव्यक्त होकर कहां जाता है?

व्यक्त मानव शरीर का अव्यक्त होना निश्चित है। ये ध्रुव सत्य है। शरीर शनैः शनैः व्यक्त से अव्यक्त की ओर अग्रसर होता है। मानव शरीर का क्षय निरंतर होता है। ये अव्यक्त की ओर अग्रसर होने का संकेत है। हम प्रयास करते हैं पर शरीर का क्षय रूकता नहीं है। अनेक औषधियों और यौगिक व्यायामों के बावजूद यह मानव शरीर धीरे–धीरे विनिष्ट होता जाता है। विनाश की ये प्रक्रिया शरीर में चलती रहती है।

सोकर जागने से कार्य करने की ऊर्जा प्राप्त होती है पर शरीर के विनाश हाने का क्रम सतत् जारी रहता है। वह रूकता नहीं है। मानव ने आज तक उसे रोक नहीं पाया। दीर्घ जीवन के विकल्प खोजे गयें। योग, प्राणायाम्, तपश्चर्या से जीवन की अवधि को दीर्घ बनाया जा सकता है, पर विनाश को नहीं रोका जा सकता। उसका कारण है कि शरीर को व्यक्त रहने का निश्चित समय परम सत्ता द्वारा निश्चित कर दिया गया है। वह परम सत्ता अव्यक्त संज्ञक है। इस कारण मानव को भी कुछ समय के लिए व्यक्त कर देती है पर पुनः अपने मूल स्वरूप अव्यक्त में मिला लेती है। अव्यक्त द्वारा निर्मित शरीर अव्यक्त की ओर ही बढ़ेगा। कुछ समय के लिए परम सत्ता ने व्यक्त होने के अनुभव और अवसर हमें दिया है। व्यक्त समय में अव्यक्त का अनुभव कर लेना ही इस जीवन का लक्ष्य है। ये अवसर परम सत्ता के द्वारा प्रदत्त है। व्यक्त अवसर के रहस्य को और उसके अभिप्राय को हमें समझना चाहिए।

समुद्र से मेघ निर्मित होते हैं। मेघ से वर्षा होती है। वर्षा से नदी का निर्माण होता है और वह जल पुनः समुद्र में जाकर मिल जाता है। ये जल का

अथाह सागर है इसमें सभी प्रकार के जल को मिल जाना है। समस्त प्रकार के जल का अभिप्राय और उद्देश्य समुद्र की प्राप्ति तक है। समुद्र से उत्पन्न जल समुद्र में पुनः मिल जाता है। नदी के प्रवाह में जब तक जल रहता है, तब तक वह प्रतीत होता है, प्रकट रहता है, व्यक्त रहता है। समुद्र की अखण्ड धारा में मिल जाने के पश्चात् नदी के जल का अस्तित्त्व विलीन हो जाता है। मानव शरीर भी कुछ काल के लिए व्यक्त रहता है और पुनः वह उसी अव्यक्त में विलीन हो जाता है जहां से व्यक्त हुआ था, जो वस्तु उस परम सत्ता ने प्रकट की थी, उसका एक अभिप्राय है। जिस प्रकार नदियों का एक अभिप्राय है। वे मानव जीवन के लिए अन्न उपजाने तथा अन्य कार्यों में सहयोग करती हैं। नदियों का निश्चित अभिप्राय है। नदियों का प्रवाह अकारण और अनावश्यक नहीं है। उसको समुद्र से कुछ दिशा–निर्देश प्राप्त हैं। वैसे ही हमें भी कुछ दिशा–निर्देश प्राप्त हैं। उस परम सत्ता ने हमें भी उन्हीं की पूर्ति के लिए पृथ्वी लोक पर भेजा है। यह निश्चित है कि हमारा व्यक्त शरीर अव्यक्त हो जायेगा। जिस अव्यक्त से व्यक्त हुआ था वहीं मिल जायेगा। परन्तु व्यक्त रहने तक उस अव्यक्त को प्रत्यक्ष करना ही हमारा उद्देश्य है। उसका आभास, उसकी अनुभूति ही इस व्यक्त शरीर की परम उपलब्धि है। व्यक्त से अव्यक्त में मिलने से पूर्व हमें उस चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर लेना चाहिए।

## 4–कुछ विशिष्ट व्यक्त।

करोड़ो, अरबों, असंख्यों ने मानव शरीर धारण किया। व्यक्त हो गये। संसार में प्रकट हो गये। अव्यक्त होने की अनिवार्यता के क्रम में अन्ततः अव्यक्त हुये। उनके व्यक्तीकरण का कोई चिन्ह अवशेष नहीं है। जिस प्रकार कीट, पतंगे, चींटी, पशु–पक्षी व्यक्त हुये और अपना समय समाप्त कर इस परिवर्तनशील जगत से विलुप्त हो गये। उसी प्रकार असंख्य मानव प्रकट हुये और विलुप्त हो गये। अव्यक्त हो गये। कुछ विशिष्ट मानव अव्यक्त होकर भी अपनी रचनाओं, कृतित्व के कारण आज भी व्यक्त हैं।

भारतवर्ष में ही नहीं विश्व में अनेक दार्शनिकों के साथ ये तथ्य प्रकट है कि वे आज भी अपनी कृतियों के कारण व्यक्त हो रहे हैं। उनके विचारों के कारण लोग आज भी उनका स्मरण करते हैं और जानते हैं। भारत में दार्शनिकों और विचारकों की लम्बी श्रृंखला है। विश्व में भी है। पूर्व काल में प्रत्येक क्षेत्र में जितना अन्वेषण भारत में हुआ उतना विश्व में कहीं नहीं हुआ। विशेषकर अध्यात्म के क्षेत्र में दार्शनिकों की एक लम्बी श्रृंखला है। कुछ नाम प्रस्तुत हैं–

महर्षि वाल्मीकी, महर्षि वेदव्यास, महर्षि पतंजलि, ब्रह्मर्षि नारद्, कणाद्, जैमिनी, गौतम, कपिल, पाणिनी, वशिष्ठ, अत्रि, वात्सायन, चरक, सुश्रुत, भृगु, आचार्य शंकर, सूरदास, कबीरदास, गोस्वामी तुलसीदास,स्वामी रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, स्वामी विवेकानंद, विज्ञान भिक्षु, वाचस्पति मिश्र आदि आदि असंख्य नाम हैं। भारतवर्ष में अध्यात्म, चिकित्सा, ज्योतिष, अंतरिक्ष आदि क्षेत्रों में बहुत अन्वेषण हुआ है। असंख्य ग्रंथ उक्त ऋषियों के आज भी उपलब्ध हैं जिनसे उनकी विलक्षण प्रतिभा का दर्शन सहजता से होता है। उनकी कृतियों से अनेक पुस्तकालय भरे पड़े हैं। ऐसे दार्शनिकों की लाखों कृतियॉ हैं। वे सब के सब अपने काल में व्यक्त रहे थे और आज अव्यक्त हैं। अपनी कृतियों के कारण वर्तमान में भी व्यक्त हैं। उनकी रचनाऐं उन्हे आज भी जीवित रखे हुए हैं। जब हम किसी दार्शनिक की कृति का अध्ययन करते हैं तो वह दार्शनिक–विचारक हमारे समक्ष व्यक्त हो जाता है। उसके विचार हमें उसके व्यक्त स्वरूप का प्रस्तुतिकरण स्वतः कर देते हैं। वे सब अव्यक्त से प्रकट हुए, व्यक्त हो गये थे और पुनः अव्यक्त में विलीन हो गये, परन्तु उनकी रचनाऐं उन्हें आज भी व्यक्त किये हुए हैं। यह उस अव्यक्त सत्ता की विलक्षणता है। उसका प्रभाव है। वह अव्यक्त रहकर भी किसी न किसी प्रकार से अपनी विलक्षणता को बिखेरता है।

## 5– अव्यक्त सत्ता की विलक्षणता–

वह परम सत्ता जिसे परम आत्मा भी कहा जाता है, अत्यंत विलक्षण है। वह अव्यक्त रहकर हमें अपने प्रभाव से, शक्ति से सबको व्यक्त कर देता है। हम तो प्रकट हो जाते हैं पर वह अप्रकट ही रहता है। प्रत्यक्ष नहीं होता। अप्रत्यक्ष रहता है। उसकी विलक्षणता का अनुमान उसके कृतित्व से लगाया जा सकता है। शिशु के रूप में मानव का प्रकट कर उसे निरंतर विकसित करना तथा उस विशाल मानव शरीर को पुनः अव्यक्त कर देना उसकी विलक्षणता है। हम सभी उस परमात्मा से प्रकट हुए हैं, पर उसे समझ नहीं पाते। जान नहीं पाते। देख नही पाते। आभास नहीं कर पाते। हम उसे प्रत्यक्ष नहीं कर पाते ये उसकी विलक्षणता ही है। पत्थर का एक टुकड़ा विशाल पत्थरों के समूह पहाड़ को नहीं जानता। वह तो हमें उत्पन्न कर देता है, पर स्वयं नहीं उत्पन्न होता। वह हमें चलाता है, घुमाता है, गति में रखता है, चेष्टा की शक्ति देता है पर वह प्रत्यक्ष रूप से न चलता है, न घूमता है, न गति करता है और न ही चेष्टा करता हुआ प्रतीत होता है। यह उसकी विलक्षणता है।

मनुष्य कितना ज्ञानवान है? चन्द्रमा, मंगल तक जा चुका है। ऐसे– ऐसे विलक्षण साधनों को निर्मित कर दिया है जिसे देखकर दॉतों तले उंगली दबानी पड़ती है, पर वह ज्ञान जो मनुष्य के मस्तिष्क में है ,कहॉ से आया ? किसने उत्पन्न किया? इस पर जब हम विचार करते हैं,तो पाते हैं वह ज्ञान जिससे मानव ने आश्चर्यजनक कार्य किये हैं, वह उस अव्यक्त सत्ता ने ही प्रदान किया है। वह अव्यक्त रहकर मस्तिष्क में ज्ञान भरता है। विशिष्ट विचारकों को जो विशिष्ट ज्ञान प्राप्त होता है, वह उसी परमसत्ता के द्वारा प्रदत्त किया जाता है। हम उसके बारे में जो विचार कर रहे हैं ये उस अव्यक्त सत्ता की प्रेरणा है। हमारे मन में उसने ये विचार प्रस्तुत किया कि आप हमारे बारे में कुछ विचार करें। हमारे अव्यक्त स्वरूप के विषय में कुछ कहें। परम् आत्मा के ज्ञान के सम्मुख, उसकी शक्ति के समक्ष मनुष्य का ज्ञान व शक्ति तुच्छ है, क्योंकि उसने ही ज्ञान प्रदान किया है कि हम उसके बारे में कुछ विचार कर सकें। ये भाव कहॉ से आया? कि उस सर्वशक्तिमान सत्ता के बारे में कुछ कहा जाए। ये उसकी ही प्रेरणा है। उसकी ही विलक्षणता है

परमआत्मा की विलक्षणता का विषय शब्दों से व्याख्यापित नहीं किया जा सकता। इस कारण उसे अनिर्वचनीय विशेषण से विभूषित किया जाता है। मन तथा बुद्धि से उसके विषय में चिंतन नहीं किया जा सकता है इसलिए उसे अचिन्त्यस्वरूप कहा जाता है। ये विशिष्ट विशेषण है जिससे उसकी स्थिति का आंकलन होता है। मनुष्य जो कुछ विचार करता है वह मन बुद्धि का विषय है। पूर्व में आभास किये तथा पूर्व में देखे हुए और वर्तमान में अनुभव में आये हुए, भविष्य मे सुनकर आने वाले अथवा कल्पना में आये हुए समस्त विषयों पर मन बुद्धि विचार करती है। वह अनेक प्रकार की कल्पनाओं के महल भी बना सकती है। जो कुछ विचार में आता है, वाणी उसे व्यक्त करती है। ये मनुष्य के विचार करने तथा उसके व्यक्तिकरण का उपक्रम है। उसे विलक्षण सत्ता के बारे में मन बुद्धि विचार नहीं कर सकती। बुद्धि की पहुॅच उस तक नहीं है। बुद्धि में न आने के कारण वाणी उसे कदापि नहीं कह सकती। ये उस परमसत्ता की विलक्षणता है। अव्यक्त को व्यक्त करना अर्थात् उस परम् सत्ता को तर्कों के सहारे सिद्ध करना भी एक विलक्षण कार्य है। ऐसा है तो, ऐसा होगा ये तर्क देकर हम उस सत्ता को उसके अस्तित्त्व को सिद्ध करते हैं । सिद्ध करके तर्कों के सहारे उसे स्वीकारते हैं । तर्कों को तार्किक आधार पर स्वीकार करने के अतिरिक्त हमारे सम्मुख अन्य कोई विकल्प नहीं है । यदि अन्य कोई विकल्प है तो वह है उसकी साक्षात् अनुभूति का है जो

निरन्तर साधना के पश्चात् आती है तथा परमात्मा की नित्य सत्ता का आभास प्रत्यक्ष होता है। ऐसे साधको ंको परमात्मा नित्य प्राप्त हो जाता है। पर ये स्थिति अत्यन्त दुष्कर है, शीघ्रता से नहीं आती है।

## 6–परमात्मा के अस्तित्त्व की तार्किक अनुभूति–

मनुष्य जन्म से पूर्व कहॉ से आया था? उसका उद्भव कहॉ से हुआ? अचानक वह कैसे प्रकट हो गया? इसका क्या स्रोत है? इन प्रश्नों का उत्तर अधिकांश मनीषी देते हैं और कहते हैं कि मनुष्य अव्यक्त सत्ता के यहॉ से आया है। उस अव्यक्त सत्ता ने इस मनुष्य को प्रकट किया है। भेजा है। इस प्रश्न के उत्तर को स्वीकार करने की हमारी बाध्यता है। किसी मनीषी से ये पूछे की आप कहॉ से आये है? तो उसका तत्काल उत्तर होगा, उस परमात्मा के यहॉ से इस उत्तर का एक कारण है कि इस प्रश्न के प्रत्यक्ष उत्तर को हम सिद्ध नहीं कर सकते हैं। अनायास कोई कार्य नहीं होता है। प्रत्येक कार्य का एक कारण होता है। आधारभूत कारण के आभाव में कार्य नहीं होता है। हमारा प्रकटीकरण, हमारा उद्भव परमात्मा की कृपा से परमात्मा के द्वारा ही हुआ है। इस कारण हमें परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है।

मानव शिशु के रूप में प्रकट होकर धीरे–धीरे विकास करता है। शारीरिक विकास तथा मानसिक विकास सबके सब क्रमिक होते हैं। होते रहते हैं। विकास के लिए आवश्यक सामग्री, परस्थितियॉ, वातावरण, आदि सभी परमात्मा की कृपा से जुटते हैं। एक शिशु शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकसित युवक के रूप में परिवतर्तित हो जाता है। शिशु से युवक बनने तक की क्रिया होती है। अनायास कुछ नहीं होता। इस प्रकिया में भी उसकी अनुभूति एवं सहयोग को स्वीकार करना पड़ता है। धीरे–धीरे मानव शरीर ह्रास की ओर जाता है। वृद्ध हो जाता है। वृद्धावस्था अनायास नहीं आती है। कोई इसे लाता है। हम चाह कर भी युवक जैसी शक्ति वाले नहीं रह पाते हैं। वृद्ध मृत्यु के समीप जाकर विलीन हो जाता है। व्यक्त का अव्यक्तीकरण हो जाता है। ये क्रिया भी किसी के सहारे होती है। लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति भगवान के प्यारे हो गये। अंततः उस परमात्मा की सत्ता हमें स्वीकार करनी पड़ती है। इस तर्क को स्वीकार करने के अतिरिक्त हमारे समक्ष अन्य कोई विकल्प नहीं है।

ये तो मानव शरीर का तथ्य है जिसकी रचना, उद्‌भव, विकास, समापन सभी में उस परम सत्ता के अस्तित्त्व की प्रतीति हमें होती है। ये जगत निरन्तर गति कर रहा है। ठहराव या रूकावट नहीं है। काल अपनी गति से चल रहा है। ये गति अबाध है। सदियों से लाखों वर्षो से काल ने अपनी सामान्य गति बनाये रखी है, जिसका कभी विनाश नहीं हुआ है। सभी मानव निर्मित यन्त्रों में कभी न कभी कुछ न कुछ त्रुटि उत्पन्न हो जाती है। समय के साथ वह अपनी गति खोता है। इस मानव शरीर रूपी यन्त्र की स्थिति का उल्लेख पूर्व में भी हो चुका है , पर काल का लाखों–करोड़ों वर्षों से चलना , एक सामान गति में रहना एक विलक्षण बात है। ये एक समान काल की गति देने वाला कौन है? जिसके नियन्त्रण में रहकर ये काल एक सामान गति कर रहा है। उत्तर आता है वह परमात्मा इस काल की गति को एक समान रखे हुए है। लाखों–करोड़ों वर्षों से उस पर पूर्ण नियन्त्रण बनाये हुए हैं। एक सेकेण्ड या एक पल का अन्तर नहीं आता है ये सब उस परमात्मा की विलक्षणता है।

मानव जब जाग्रत अवस्था में रहता है तब उसका विचार चलता रहता है। कुछ न–कुछ वह सोचा करता है। ये विचारों के चलने की क्रिया स्वतः होती है। उसके लिए हमें कुछ नहीं करना पड़ता है। स्वतः विचार आते हैं। कौन विचारों को भेजता है? और हम किस प्रकार से विचारों को ग्रहण करते हैं? ये सब प्रक्रिया स्वतः चलाने में कौन सहयोग करता है? जब हम सो जाते हैं तो सपनों का विलक्षण संसार हमारे समक्ष आता रहता है। भॉति–भॉति के अनेक स्वप्न जो हमारी कल्पना से परे हैं, जहॉ हम कभी नहीं गये, जिसको हमने कभी नहीं देखा, वे अनेक विलक्षण वस्तुएं हमें स्वप्नावस्था में प्रतीत होती हैं । प्रत्यक्ष होती हैं। सपनों का पृथक् तथा एक विलक्षण संसार है। ये सारी की सारी प्रकिया कौन चला रहा है? ये सब स्वतः चल रहा है। इसका उत्तर भी हमें उस परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करने को बाध्य करता है।

जगत की संरचना तथा उसकी प्रकियाओं पर ध्यान देने से ये स्पष्ट होता है कि कोई निश्चित सत्ता इस सम्पूर्ण व्यवस्था पर नियन्त्रण अवश्य स्थापित किये हुए है। ये जगत अनायास नियन्त्रित नहीं है। जिस किसी का नियन्त्रण है वह साधारण नहीं है, असाधारण है। समक्ष प्रकट होकर नियन्त्रण नहीं कर रहा है। अप्रत्यक्ष रहकर, अप्रकट रहकर वह इस बह्माण्ड को नियन्त्रित किये हुए है। वह सब संरचनाओं को करता है समस्त संरचनाओं को जानता हैं। वह अव्यक्त तो है

परन्तु अव्यक्त रहकर इस जगत के स्वरूप में व्यक्त हो रहा है। संरचना में नियन्त्रण में, प्रकिया में, गति में, काल में, तथा चेष्टाओं में वह प्रकट हो रहा है। प्रत्यक्ष हो रहा है। वही अव्यक्त परमात्मा है।

हम उस अव्यक्त सत्ता के बारे में बहुत विचार करना चाहते है। पर जहॉ तक विचार करते हैं हमें उसकी सत्ता दृष्टिगोचर होने लगती है। ब्रह्माण्ड के सैकड़ों हजारों ग्रह, उपग्रह, तारे सब के सब आज तक हमारे लिए एक पहेली हैं। उनके बारे में हम जानना चाहते हैं। खगोल शास्त्री निरन्तर प्रयासरत हैं कि किस ग्रह पर क्या हो रहा है? वहॉ पर पृथ्वी की भॉति जीवन है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर अभी तक हम खोज नहीं पाये हैं। पर जिस प्रश्न का उत्तर हम खोज नहीं पाए हैं वह सब का सब परमात्मा के द्वारा ही निर्मित है। उसने जो निर्माण ब्रह्माण्ड में कर दिया है उसको हम पूरी तरह जान नहीं पा रहे हैं। ये उस परमात्मा की विलक्षणता है। अव्यक्त स्वरूप का व्यक्तीकरण है।हमें उस परमात्मा की सत्ता की स्वीकारोक्ति को बाध्य भी करता है।

वह परमात्मा है। हम उसे अपनी तुच्छ बुद्धि से, तर्को के सहारे सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। ये उस महान सत्ता के लिए उचित तो नहीं है,इस कारण उसकी अनुभूति हमें स्वयं कर लेनी चाहिए। जैसे हम जगत की अनुभूति करते हैं। जगत को प्रत्यक्ष देखते हैं, इसी प्रकार हमें उस परमात्मा की अनुभूति कर लेनी चाहिए। हम जगत की अनुभूति करते हैं। ऑखों से देखते हैं। कानों से जगत के बारे में सुनते हैं। मन बुद्धि से जगत के बारे में विचार कर लेते हैं तथा त्वचा से इस जगत को छूकर उसका आभास करते हैं। इस प्रकार हमें उस परमात्मा को ऑख से देखने, कानों से सुनने, मन बुद्धि से विचार करने तथा त्वचा से छूने का प्रयास करना चाहिए। हमनें आज तक संसार को मन तथा बुद्धि से विचारा है इस कारण मन तथा बुद्धि में संसार समाया हुआ है। जगत की गतिविधियॉ, क्रियाकलाप, चेष्टाएं हमने विचार में रखीं हैं इस कारण जगत की प्रतीति हमको हो रही है। ये जगत हमें प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहा है। उसकी हलचल का हमें आभास हो रहा है। मन बुद्धि में जब जगत समाया है तो हमें जगत ही तो दिखेगा। इस जगत की प्रतीति से मन तथा बुद्धि को हटाकर परमात्मा के बारे मे विचार करें तो परमात्मा की सत्ता हमें प्रतीत होने लगेगी।

हमने आज तक ऑखों से संसार को देखा है इस कारण हमें वह संसार ही दिखता है। उसके चित्र हमारी ऑखों में समाये हुए हैं। संसार में जो कुछ हो रहा

है वह हम ऑखों से देख रहे हैं। इस कारण ऑखे बंद कर लेने पर भी वह संसार हमें प्रतीत होता है। ये नेत्र की शक्ति की विलक्षणता है। मन बुद्धि में आये विचारों कों बंद ऑखें देखती हैं क्योंकि हमने जगत को देखा है। वही जगत हमें सर्वदा प्रतीत होता है। हमने परमात्मा को नहीं देखा। देखना नहीं चाहा इस कारण वह हमारे आभास में नहीं आ रहा। दिख नहीं रहा है। इसी प्रकार हमने कानों से संसार की आवाज सुनी हैं, वे सबकी सब हमारी स्मृति में सुरक्षित हैं। संसार हमें इसी कारण सुनाई पड़ता है। यदि हम परमात्मा को सुनेंगे तो वह हमें अवश्य सुनाई देगा। संसार का स्पर्श हमने आज तक किया है इस कारण हमें संसार की स्पर्शता का अनुभव होता है। हमने परमात्मा का स्पर्श नहीं किया है इस कारण हमें उसके स्पर्श का आभास नहीं होता। ये उसकी अव्यक्त स्थिति की व्यक्तता है। हम यदि उस अव्यक्त परमात्मा को प्रत्यक्ष करना चाह रहे हैं तो हमें उसे अपनी स्मृति में भरना पड़ेगा, मन तथा बुद्धि से उसके बारे में विचार करना पड़ेगा। मन तथा बुद्धि उसकी रचनाओं में लगाने से उसकी अव्यक्त स्थिति हमे व्यक्त रूप में प्रतीत होगी। जैसे हमे संसार दिखता है वो हमें दिखेगा। जैसे हम संसार को सुनते हैं हम उसे भी सुन सकेंगे। जैसे हम सांसारिक पदार्थों का अनुभव करते हैं वैसे हम उसका अनुभव कर सकेंगे। संसार से मन हटाकर उस अव्यक्त में संसार की तरह से हमें अपने को उसमें स्थापित करना पड़ेगा। ये कार्य सहज नही है धीरे–धीरे हम उस अव्यक्त परमात्मा का आभास करें।

## 7– परमात्मा का स्पष्ट आभास–

लोग हमसे प्रश्न करते हैं कि परमात्मा हमें प्रतीत नही होता, दिखता नहीं है। मैं उनसे पूछना चाहता हूॅ कि क्या कभी आपने उसे देखने का प्रयास किया है? अधिकांश लोग यही उत्तर देते हैं, नहीं। हम कहते हैं कि हमने संसार को देखने का प्रयास किया है तो वह हमें दिख रहा है।यदि हमने परमात्मा को देखने का प्रयास किया होता तो वह हमें अवश्य दिखता। हम संसार को देखना चाह रहे हैं और संसार को देखने की हमारी आदत पड़ गई है। जो आदत पड़ जाती है वह अनायास ही प्रकट होती है। हमने संसार को देखने की आदत डाली है तो हमें संसार अनायास ही दिखता है। हम यदि अपनी आदत बदलेंगे और जैसी आदत डालेंगे वैसी ही हमें प्रतीति होगी। जब हम कोई नशा करते हैं तो हमें उस नशें की आदत पड़ जाती है। नशा करने की आदत से हमें नशा करने का स्मरण होता है और वह हमें करना नहीं पड़ता है। क्या हमें नशा करने की आदत पड़ जाने पर

नशा करने के लिए स्मरण करना पड़ता है? नहीं। उसी प्रकार परमात्मा को देखने की आदत डालनी पड़ेगी। वह आदत पड़ जाने पर उस परमात्मा का स्मरण स्वतः आयेगा। हमें स्मरण करना नहीं पड़ेगा।हमने आज तक संसार को देखने की आदत डाली है तो हमें संसार स्वतः ही दिखता है। परमात्मा कैसे दिखेगा? कहॉ दिखेगा? नहीं दिखेगा।

हम संसार के बारे में विचार करते हैं। संसार के विषय में सोचते हैं। ऐसा करने से संसार हमारे मन में रच बस जाता है। जिस विषय में हमारा विचार चलता है वो विषय हमारी मन बुद्धि में रहता है। अमुक कार्य करना है, अमुक स्थान पर जाना है, अमुक से मिलना है, ये सब विचार करते हैं। ऐसे विचार हमारी मन बुद्धि में सदैव रहते हैं। हम जैसा विचार करते हैं वैसे ही कर्म भी करते हैं। हम इस विचार को परिवर्तित करके परमात्मा की ओर मोड़े तो उसके बारे में चिन्तन चलता है। संसार से निकटता–समीपता कम होती है। हम संसार से पृथक् होते हैं। परमात्मा के समीप हो जाते है, जैसा चिन्तन रहता है वैसा ही कर्म भी होने लगता है। परमात्म विषयक चिन्तन से परमात्म विषयक कार्य आरम्भ हो जाता है। इस चिन्तन तथा कर्म से हमें परमात्मा की निकटता का आभास होता है। हमें वह प्रतीत होता है और हम उसका आभास करते हैं।

हमने अब तक संसार को छूने का प्रयास किया है। उसके विषयों के समीप जाना चाहा है। विषयों को छूकर उनका आभास करना चाहा है। जैसे हमने संसार को उसके विषयों को छूना चाहा है वे सब हमें स्पष्ट प्रतीत होते हैं। आभासित होते हैं। हम उनमें आनन्दित होते हैं। हम उनमें रमना चहते हैं। रम जाते हैं। क्या कभी हमने परमात्मा को छूने का प्रयास किया है? नहीं किया है। इसके बारे में हम ये कहते हैं कि उसका हमें आभास नहीं होता। वो हमें प्रतीत नहीं होता। हमने उसको कभी छूने का प्रयास हीं नहीं किया है। कोई भी कार्य बिना प्रयास के कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता है। जब तक हम परमात्मा को मन में तथा बुद्धि में बसा कर छूना नहीं चाहेंगे तो वह हमें केसे छुवाई देगा? उसके स्पर्श की आकांक्षा यदि नहीं करेंगे तो उसका स्पर्श हमें कैसे होगा? ये सब प्रयास जगत के स्पर्श का परित्याग कर हमें स्वयं करना पड़ेगा। बिना प्रयास के हमें उसका स्पर्शरूपी आभास कदापि नहीं होगा।

जिन लोगों ने एवरेस्ट चोटी पर चढ.ने का प्रयास किया वे उस सर्वाधिक ऊॅची चोटी पर पहुॅचने में सफल हुए। चन्द्रमा पर जाने का सपना यूॅ ही नहीं पूरा

हुआ उसके लिए हमें प्रयत्न करना पड़ा। प्रयास किया गया तो सफलता प्राप्त हुई। उसी प्रकार हम यदि परमात्मा को छूने का प्रयास जगत के छूने के प्रयास को छोड़कर करेंगे तो हमें उसके स्पर्श का आभास होगा। जब तक हम जगत के विषयों को छूने का और उसमें आनन्दित होने का कार्य करेंगे तब तक उस परमात्मा को छूने की कल्पना मात्र रहेंगी। वह कल्पना कभी साकार नहीं होगी।

हमने आज तक संसार की ध्वनि सुनी है, उसके क्रिया–कलापों को सुनकर उन्हें अपनी स्मृति में संजोया है। वे हमें निरन्तर सुनाई पड़ते हैं। संसार के जो स्वाद चखें हैं वे भी हमारी स्मृति में सुरक्षित हैं। वे समस्त ध्वनियॉ, स्वाद हमें संसार में रखते हैं। परमात्मा की ध्वनि हमने कभी नहीं सुनी और उसकी दिव्यता का आभास हमने कभी नहीं किया। शान्त भाव से हमसे वह परमात्मा जो कह रहा है उसकी हमने उपेक्षा की है। उसकी दिव्यता का आभास हमने यदि किया होता तो हम उसकी ध्वनि को अवश्य अनुभव करते। इसके लिए हमें संसार की ध्वनियों की स्मृतियों को हटाना होगा। बिगाड़ना होगा। उस परमात्मा की दिव्य ध्वनि का आभास करना होगा। वो हमारे अत्यन्त निकट है, निकटतम है और वो हमें अपनी दिव्य ध्वनि से लाभान्वित करता है। हम संसार के कोलाहल में रहकर उसकी दिव्य ध्वनि को उपेक्षित करते हैं।

## 8–परमात्मा की आन्तरिक अनुभूति–

वह परमात्मा हमारे साथ सदैव था, सदैव रहेगा तथा वर्तमान में भी है। आप जानना चाहेंगे की वह हमारे साथ वर्तमान में कहॉ है? किस स्थान पर रहकर हमें अपना आभास करा रहा है? हम इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देंगे। वह परमात्मा हमारे हृदय में नित्य उपस्थित है। वह ज्योति स्वरूप वहॉ पर उपस्थित है। हृदय की गति को प्रदान किये हुए है। जो ज्योति माता के गर्भ में स्पष्ट प्रतीत होती है और उस ज्योति की दिव्यता में शिशु अपने अतीव कष्ट को सहजता से सहन कर लेता है, वही ज्योति अब हृदयाकाश में निरन्तर उपस्थित रहती है। इसमें संशय करने के प्रश्न से हमें कल्पनातीत हो जाना चाहिए। क्या आप उसे देखना चाहेंगे? तो अवश्य देखेंगे। उसके दर्शन की उत्कट अभिलाषा जागृत होते ही वह ज्योति हमें प्रतीत होती है। कुछ तथ्य हैं जिन्हें हम प्रकट करना चाह रहे हैं तथा जो प्रयोगात्मक हैं। मात्र व्यावहारिक हैं तथा अनुभूति का विषय है। विचार से नहीं मात्र कार्यान्वयन से प्राप्त होती है उसकी अनुभूति क्रियात्मक है, सैद्धान्तिक कदापि नही है उसके क्रियात्मक पक्ष को समझे।

जिस ज्योति का दर्शन हमने अपनी माता के गर्भ में किया था, उस ज्योति की स्मृति हमने विस्मृत कर दी है। इस विस्मृति का कारण है दर्पण का धूल या मल से आवृत हो जाना। सांसारिकता रूपी मल ने हमारी स्मृति को ढक दिया है। जिस प्रकार हम कई वर्षो पूर्व देखे गये भव्य भवन की स्मृति अपने मष्तिष्क में सुरक्षित कर लेते हैं तथा ऑखें बंद करके उस पूर्व में देंखे गये भवन की स्मृति को खोलकर हम उसे देख लेते हैं। हमने जगन्नाथपुरी के भव्य मंदिर की स्मृति सुरक्षित की है। ऑखें बंद करके उसको हम जब चाहे देख सकते हैं। इस क्रिया में स्मृति को खोलना पड़ता है।

सामन्यतः खुली ऑखेां से संसार को देखते हैं पर ऑखें बंद करके भी स्मृति के सहारे उसे देख लेते हैं। हम खुली ऑखों से हजारों मील दूर के दृश्य को नहीं देख सकते, पर बंद ऑखें उसे सहजता से देख लेती हैं। ये ऑखों की दर्शनीय शक्ति की दिव्यता है। ऑखें खुली रहकर बहुत कम देख पाती हैं और बंद रहकर दिव्य वस्तुएं देख सकती हैं। महाकवि सूरदास ने इसी दिव्यता का आभास कर लिया था। यद्यपि ऑखों की दर्शनीयता में मन बुद्धि का आधारभूत सहयोग रहता है। इसी प्रकार हम उस हृदयाकाश में परमात्मा की नित्य निरन्तर ज्योति को देख सकते हैं। बंद ऑखों से उसके दर्शन कर सकते हैं। वह दिव्य ज्योति हमें स्पष्ट प्रतीत होगी। इस क्रिया में तीन वस्तुएं कार्य में लानी पड़ती हैं। मन, बुद्धि और नेत्र। नेत्र की क्षमता बाह्य पदार्थो कों देखने की है तथा वह पूर्व में देखी गई वस्तुओं को भी स्मृति के सहारे देख लेती है। मन द्वारा कल्पित वस्तुओं के सहारे वस्तुओं की स्थिति का आंकलन भी कर लेती हैं।

परमात्मा हमारे हृदय में विराजमान है। वह ज्योति स्वरूप है। निरन्तर उसकी उपस्थिति रहती है। जैसी उपस्थिति माता के गर्भ में उसकी हमें प्रतीत हुई थी वैसी ही यहॉ पर है। नेत्र बंद करके उस ज्योति का आभास करने का कार्य हमें करना चाहिए। इस प्रकिया में मन बुद्धि से संसार की विस्मृति करनी पड़ेगी। बिना विस्मृति के वह ज्योति हमें प्रतीत नहीं होती। हृदयाकाश वो स्थान है जहॉ से रक्त का संचरण सम्पूर्ण देह में होता है। रक्त जीवन का आधार है। हृदय में ज्योति का आभास प्रयत्नपूर्वक होता है। सहजता से नहीं होता। हृदय में जो गति है, धड़कन है वह उसी के कारण है। हमें उस ज्योति का आभास करने का प्रयत्न उसी प्रकार करना चाहिए। जिस प्रकार हम बंद ऑखों से दूरस्थ बस्तुओं को सहजता से देख लेते हैं। इस दर्शन के कार्य में मन तथा बुद्धि का सहयोग रहता

है। यह आन्तरिक दर्शन है। हमारे शरीर में यन्त्रों का एक विशाल साम्राज्य है तथा उनमें निरन्तर गति रहती हैं। यन्त्रों के साम्राज्य में, समुच्य में जो गति है उसमें ध्वनि भी होती है जिसे कर्ण के आन्तरिक श्रवण से सुना जा सकता है। इसी प्रकार बंद ऑखों से हृदय में उपस्थित ज्योति के दर्शन भी होते हैं। यह नेत्रों की आन्तरिक दर्शनीयता है। ये सबका सब प्रयोगात्मक विषय है। जिसे प्रयोग से समझा जा सकता है और देखा जा सकता है।

## 9–परमात्मा का ब्रह्माण्ड पर निश्चित नियंत्रण है –

परमात्मा का ब्रह्मण्ड पर निश्चित नियंत्रण है।वह सम्यक् प्रकार से है। सम्यक् प्रकार का अर्थ है कि परमात्मा का नियंत्रण ठीक–ठीक प्रकार से होना तथा किसी प्रकार की रंच मात्र की त्रुटि का न होना। हम इस जगत में असंख्य मनुष्यों को देखते हैं। देश–विदेश में एक ही प्रकार के मानव की उपस्थिति है। समस्त मानव जाति को परमात्मा नियन्त्रित करता है। वह सब पर दृष्टि रखे है। उसकी अचूक दृष्टि सभी पर है। वह प्रतिपल हमारी निगरानी करता है। उस विषय में मानव के एक ही प्रकार के निर्माण को दृष्टिगत रखना पड़ेगा। प्रत्येक मानव की रचना और शरीर की आन्तरिक तथा बाह्य अंगों का निर्माण एक ही प्रकार का है। प्रत्येक मानव के शरीर में शरीर के तीन प्रकार है। 1. स्थूल शरीर 2. सूक्ष्म शरीर 3. कारण शरीर। जो पृथक्–पृथक् तीन अवस्थाओं 1. जागृत अवस्था 2. स्वप्नावस्था 3. सुषुप्ति अवस्था में प्रतीत होता है। ये एक उदाहरण है मानव शरीर के अंगों, उनकी क्रिया विधि, चेष्टा, प्रकिया, निर्माण, भाव–भंगिमा, प्रस्तुति आदि सभी में एकरूपता है। उस परमात्मा ने एक ही प्रकार के मानव शरीर को लाखों–करोड़ों वर्षों पूर्व निर्मित किया था। वैसा ही आज भी है। इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन या संशोधन नहीं हुआ है। मानव शरीर एक प्रकार का है तथा वह परमात्मा के द्वारा नियन्त्रित है, पर उसके बाह्य स्वरूप में भिन्नता है। एक भी मनुष्य एक प्रकार का नहीं है। प्रत्येक के रूप में पर्याप्त विषमता है। ये परमात्मा की विलक्षणता का एक उदाहरण है तथा समस्त मानव शरीरों पर उसका नियन्त्रण है। ये उसकी विशिष्टता है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है।

परमात्मा ने मानव शरीर पर नियन्त्रण के साथ ही समस्त जीवों पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया है। शास्त्रों में नौ प्रकार की सृष्टि का वर्णन आता है। जैसा शास्त्रों में कहा गया है वैसा ही हम वर्णन कर रहे हैं ये वर्णन मात्र परमात्मा की शक्तिमानता, दिव्यता, अलौकिकता के दर्शनार्थ है। चूंकि ये सृष्टि का विषय है

तथा परमात्मा की चराचर को उत्पन्न करने की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रस्तुतीकरण से मात्र ये समझें की वह परमात्मा इन सभी पर नियन्त्रण स्थापित किये हुए है। उसकी सत्ता सर्वत्र है। देव योनि का दर्शन हमें साधारणतया नहीं होता। अन्य सभी को हम नित्य प्रति देखते है। जिस प्रकार के जीवों को हम देखते हैं तथा जिस प्रकार के जीवों को हम नहीं देख पाते हैं। जिस सृष्टि तक हमारी पहुॅच नहीं है उस पर भी परमात्मा का नियन्त्रण है। यह नियन्त्रण स्थापित रहा है, स्थापित है, और भविष्य में स्थापित रहेगा। वह परमात्मा सबके भरणपोषण की व्यवस्था करता है। एक दृष्टि परमात्मा के द्वारा रचित सृष्टि पर डालें।

## 10–सृष्टि नौ प्रकार की है–

1.**महातत्व**–सत्त्वादि गुणों में पर्याप्त भिन्नता का होना इसका स्वरूप है।

2.**अहंकार**–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति।

3.**भूत सर्ग**–गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द तन्मात्र वर्ग की उत्पत्ति।

4.**इन्द्रियॉ**–ज्ञान तथा क्रिया शक्ति की उत्पत्ति।

5.**सात्त्विक अहंकार**–देव सर्ग, मन की उत्पत्ति।

6.**अविद्या**–1–तामिस्त्र 2–अन्धतामिस्त्र 3–तम 4–मोह 5–महामोह।

**वैकृत सृष्टि**– ज्ञान शक्ति शून्य आन्तरिक रूप से स्पर्श का आभास होता है।

7.**स्थावर वृक्षों की –**

**क–वनस्पति**– बिना मौर के फल देते हैं–जैसे गूलर, बड़पीपल।

**ख–औषधि–** फलों के पकने पर स्वयं नष्ट हो जाते हैं–जैसे गेहूॅ, चना, धान आदि।

**ग–लता**– किसी अन्य के सहारे वृद्धि पाते हैं –जैसे गुर्च ,ब्राह्मी आदि।

**घ–त्वक्सार**– जिसकी छाल अत्यन्त कठोर होती है–जैसे बॉसै

**ड़–वीरूध–** नीचे पृथ्वी पर फैलने वाली लताएं–जैसे तरबूज, ककड़ी आदि।

**च–द्रम–** पहले फूल आता है इसके उपरान्त फूल के स्थान पर फल लगते हैं।–जैसे आम, जामुन ।

**8.तिर्यग योनि–** पशु–पक्षी अट्ठाइस प्रकार की है।

**विशेषताएं–**

**1.–काल ज्ञान से शून्य तथा अनभिज्ञ।**

**2.–तमो गुण की अधिकता।**

**3.–भोजन–निद्रा का ज्ञान।**

**4.–सूंघ कर वस्तुओं का ज्ञान कर लेते हैं।**

**5.–ज्ञान विवेक की शून्यता।**

**9–मनुष्ययोनि–रजोगुण की प्रधानता,कर्मआश्रय, दुख स्वरूप विषयों में दुख की प्रतीति।**

**वैकृत सृष्टि–**

**क– देव सर्ग – आठ प्रकार का है।**

**1. देवता 2. पितर 3. असुर 4. गन्धर्व व अप्सरायें 5. यक्ष– राक्षस**

**6. सिद्ध–चारण–विद्याधर 7. भूत–प्रेत–पिशाच 8. किन्नर–किम पुरूष।**

**वैकृत प्राकृत प्रकार की–**

**ख– कौमार्य सर्ग–** सनत सनन्दन, सनत कुमार आदि ऋषियों का।

परमात्मा समस्त प्रकार के जीवों की सृष्टि करता है अर्थात् रचना करता है, बनाता है तथा उन पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किये हुए है। कोई चराचर जीव उसके नियन्त्रण से परे नहीं है । प्रत्येक जीव परमात्मा के नियन्त्रण में रहता है । उसके अधीन कार्य करता है और उसका समापन भी उसी के अधीन होता है। प्रत्येक जीव परमात्मा के प्रसादपर्यन्त ही पृथ्वी तथा अन्य लोकों में रहता है। उसी की कृपा से उसमें चेष्टा तथा गति होती है। ये सबका सब परमात्मा के नियन्त्रणाधीन है। हम जो कुछ देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं, इसके अतिरिक्त हम जो नहीं देख सकते हैं तथा जो हमारे कल्पना से अतीत है और हमारे अनुभव में नहीं है वह सबका सब परमात्मा के नियन्त्रण में है। उसकी दृष्टि से, निर्देशों से संचालित है तथा उसके द्वारा पूर्ण नियन्त्रित है।

ब्रह्माण्ड की व्यवस्था बहुत बृहद् व्यवस्था है। ये तथ्य तो आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं। रात्रि–दिवस का समान रूप से होना अर्थात सूर्य चन्द्र पर नियन्त्रण, मौसम का समय से आना अर्थात सर्दी, गर्मी, बरसात का समय पर होना, जीवों का जन्म और मरण तथा कर्मानुसार उसकी व्यवस्था ये सबका सब हिसाब–किताब आदि आदि की एक बृहद् व्यवस्था है। इस व्यवस्था को परमात्मा विभिन्न प्रकार के देवताओं के माध्यम से संचालित करता है। समस्त प्रकार के देवताओं को इसके लिए सुव्यवस्थित रूप से उत्तरदायित्व सौंपे गये हैं। वे सबके सब देवगण परमात्मा की नियन्त्रण व्यवस्था में परमात्मा का सहयोग करते हैं तथा उसके द्वारा प्रदान किये गये अधिकारों का उपभोग भी करते हैं। समस्त अव्यक्त देवगणों को परमात्मा ने ही अधिकार प्रदान कर रखे हैं। ये व्यवस्था किसी राष्ट्र की व्यवस्था की तरह समझी जा सकती है। प्रत्येक राष्ट्र में जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के अधिकारी होते हैं और उनके अधिकारों को संविधान के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। उसी प्रकार परमात्मा भी विभिन्न देवगणों को ब्रह्माण्ड की समस्त व्यवस्था सौंपे हुए है तथा उसे अपने पूर्ण नियन्त्रण में रखे हुए है। इस प्रकार परमात्मा का ब्रह्माण्ड पर पूर्ण नियन्त्रण है।

## 11– परमात्मा की विधि व्यवस्था –

परमात्मा की विधि व्यवस्था, सम्यक् त्रुटिविहीन ,पूर्ण पारदर्शी, साक्ष्यों पर आधारित नितान्त स्पष्ट धर्मयुक्त विधि व्यवस्था है। विधि व्यवस्था पारदर्शी हो इसके लिए घटना के साक्ष्यों का प्रकट होना तथा उनका प्रस्तुतीकरण आवश्यक होता है। विधि व्यवस्था का सम्पूर्ण ढॉचा तथा प्रक्रिया घटना के साक्ष्यों पर ही आधारित है। घटना के साक्ष्यों के अभाव में तर्क संगत न्याय नहीं हो सकता है। साक्ष्यो के आभाव में जो विधि के आदेश पारित होते हैं वे कल्पना पर आधारित कहे जा सकते हैं। बिना ठोस आधार वाले साक्ष्यों के अभाव में कोई न्याय संगत आदेश पारित ही नही किया जा सकता। इस कारण साक्ष्यों का विधि व्यवस्था में आधारभूत महत्व है। प्रत्येक न्यायालय साक्ष्यों के आधार पर अपनी न्यायिक प्रक्रिया को स्थापित किये हुए है तथा उसी के आधार पर विधि व्यवस्था बनाये हुए हैं। इस प्रकार विधि व्यवस्था में किसी घटना की पुष्टि के लिए साक्ष्यों का विशिष्ट एवं अनिवार्य स्थान है।

परमात्मा ने अपनी सुचारू तथा पारदर्शी न्याय व्यवस्था के लिए चौदह साक्षियों की नियुक्ति की है। चौदह साक्षियों को विस्तार देने से बत्तीस साक्षी हो जाते हैं। ये चौदह साक्षी हैं जिन्हें कर्म का साक्षी कहा जाता है। जो निम्न प्रकार है–

## कर्म के साक्षी–

**1–सूर्य 2–अग्नि 3–आकाश 4–वायु 5–इन्द्रियॉ 6–चन्द्रमा 7–संध्या 8–रात्रि 9–दिवस 10–दिशायें 11–जल 12–पृथ्वी 13–काल 14–कर्म। इन्द्रियॉ दस है तथा दिशायें भी दस हैं इस प्रकार साक्षियों की संख्या बत्तीस हो जाती है।**

मनुष्य जो भी कर्म करता है उन सब कर्मों के साक्षी उक्त चौदह तत्त्व हैं। मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा कर्म करता है मनसा का अभिप्राय है कि जो विचार मन में आता है वह उचित हो अथवा अनुचित उस विचार के लिए चौदह साक्षी हैं। वाचा कर्म का अभिप्राय है कि हम जो कुछ कहते हैं अथवा जो कुछ बोलते हैं वह सबका सब वाचा कर्म कहा जाता है। इस वाचा कर्म के भी चौदह साक्षी है। कर्मणा कर्म वो है जो मन से विचारे गये के आधार पर अथवा वाणी से कहे गये के आधार पर अथवा अचानक ही कर्मेन्द्रियों द्वारा सम्पादित कर दिया जाता है। इस प्रकार मनुष्य जो भी प्रत्यक्ष –अप्रत्क्ष, प्रकट–अप्रकट रूप से कर्म करता है उन कर्मों के उपर्युक्त चौदह साक्षी हैं।

इस प्रकार प्रत्येक घटना के सम्पादन के साक्ष्य के लिए उक्त चौदह साक्षी साक्ष्य के रूप में प्रकट रहते हैं। जाग्रत अवस्था में जो कुछ भी कार्य होता है वह सबका सब चौदह साक्षियों की देखरेख में होता है।

यहॉ पर एक तथ्य विषय से हटकर कहा जा रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी असामाजिक कार्य का सम्पादन एकान्त में करना चाहता है यदि वह ये जान लें कि हमारे असामाजिक कर्म को चौदह लोग देख रहे हैं तो वह कदापि असामाजिक कर्म को नहीं करेगा। आसामाजिक कर्म अधिकांशतः एकान्त में होते हैं और मनुष्य उनका साक्ष्य भी नहीं रखना चाहता। मनुष्य यदि यह जान ले कि हमारे प्रत्येक कर्म को परमात्मा के द्वारा नियुक्त साक्षी देख रहे हैं तो वह कदापि असामाजिक कार्य नहीं करेगा।

मनुष्य द्वारा सम्पादित प्रत्येक कर्म का स्पष्ट अंकन होता है। उसके पल–प्रतिपल, क्षण प्रतिक्षण कार्यो को अंकित किये जाने की एक विशाल व्यवस्था परमात्मा ने की है। उस परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य को पृथ्वी लोक में एक भूमिका दी है। चाहें वह कोई व्यक्ति हो, कुछ भी हो, किसी स्थिति में हो अथवा उच्च पदस्थ हो ।सबकी कुछ न कुछ एक निश्चित भूमिका है। उस भूमिका से उसके

कर्तव्यों का निर्धारण किया है। भूमिका में कर्तव्यों के निर्वहन के अतिरिक्त वह एक मानव है। परमात्मा का अंश है तथा स्वयं परमात्मा प्रत्येक जीव में उपस्थित है। इस कारण प्रत्येक मानव का प्रत्येक मानव से तथा प्रत्येक जीव से सहधर्मिता है। सहधर्मिता का अभिप्राय है कि मानव जीवन का जो आधार है वो एक समान है। प्रत्येक जीव में परमात्मा है इस कारण प्रत्येक जीव प्रत्येक जीव का सहधर्मी है।

मनुष्य पहले तथा आधारभूत रूप से मानव है तत्पश्चात् वह अपनी भूमिका में जो परमात्मा द्वारा उसे सौंपी गई है उस रूप में है। एक राष्ट्र का अध्यक्ष पहले एक मानव है तत्पश्चात् राष्ट्र के अध्यक्ष की भूमिका परमात्मा के द्वारा प्रदान की गई है। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि वह मानव है उसी प्रकार से जिस प्रकार से अन्य मानव हैं । तत्पश्चात् उस परमात्मा के द्वारा सौंपी गई व्यवस्था के बारे में विचार करना चाहिए। इस प्रकार हमारा पहला कर्तव्य मानव के रूप में है जिसका हमें निर्वहन करना पड़ता है। इसके पश्चात् हमें अपनी भूमिका निर्वहन भी करना पड़ता है। मानव के कर्मो की दोहरी व्यवस्था तथा कर्तव्यों के निर्वहन के दोहरे प्रारूप को हमें स्पष्ट समझना चहिए । हमें ये जान लेना चाहिए कि हमें मानव के रूप में कार्य करने के साथ परमात्मा द्वारा प्रदत्त भूमिका का निर्वहन भी करना चाहिए।

हम जो भी कार्य करते हैं वह चाहे नीतिगत, धर्मसम्मत, नैतिक हो अथवा न हो सबका सब अंकन करने की परमात्मा की विशाल तथा अति संवेदनशील व्यवस्था है। नीतिगत धर्मसम्मत, नैतिक कार्यों का पृथक् अंकन होता है। उनसे प्रतिकूल का पृथक् प्रकार से होता है। एक तो नीले पेन से तथा दूसरे का लाल पेन से अंकित किये जाने की कल्पना कर लें। नीतिगत, धर्मसम्मत तथा नैतिक कार्यों के अंकन के पश्चात् उसके शुभ तथा सुखद परिणाम् का लाभ मनुष्य को अवश्य होता है। उसी प्रकार अनीतिगत, अधार्मिक तथा अनैतिक कार्यों का अशुभ एवं दुखद परिणाम भी मनुष्य को अवश्य भुगतना पड़ता है। ये निश्चित, अटल, स्थिर, ध्रुव सत्य तथ्य है इसमें रंच मात्र भी परिवर्तन नही होता है। शुभाशुभ कर्म का फल शुभाशुभ है। यह विषद तथा तार्किक व्यवस्था परमात्मा की ओर से सम्यक्रूपेण की गई है। इस स्थल पर उसकी व्याख्या नहीं की जा रही है क्योंकि ये फल के परिणाम का विषय है। इस स्थल पर इतना ही समझना चाहिए की परमात्मा की समस्त न्याय व्यवस्था हमारे अपने कर्मो पर आधारित है जो अचूक है। इसमें किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं होती है। इस व्यवस्था मे कोई त्रुटि न हो इसके लिए

ही परमात्मा ने चौदह साक्षी नियुक्ति किये हैं जिनके आधार पर परमात्मा की न्यायिक व्यवस्था अबाध रूप से चलती रहती है।

## 12– परमात्मा द्वारा ब्रह्मण्ड की रचना–

ये संशयरहित तथ्य है कि परमात्मा द्वारा इस ब्रह्माण्ड की रचना की गई। पहले रचना हुई तत्पश्चात् उस पर नियन्त्रण स्थापित हुआ। रचना तथा नियन्त्रण साथ–साथ चलते रहें। हम पृथ्वी पर रहते हैं। उसकी विशालता को विविधता को आश्चर्यजनक रूप से देखते हैं। पृथ्वी पर जो निर्माण कार्य हुआ वो मेरे विचार से अतुलनीय है तथा आश्चर्यजनक है। लगभग तीन चौथाई भाग में जल की रचना, एक चौथाई भाग में थल का निर्माण और उसमें विशाल पर्वत, पहाड़, नदियॉ, वन, रेत, सुरम्य घाटियॉ, झीले आदि का निर्माण एक कल्पनातीत कार्य है। खनिज लवण, गैस तेल के भण्डार भरने का कार्य भी परमात्मा द्वारा किया गया। इन सबका ऐसा भण्डार है कि जो लाखों वर्षों से मनुष्य के कल्याण हेतु उपयोग किया जा रहा है पर उसका अभी तक अन्त नहीं हुआ। सम्भवतः क्या निश्चितरूपेण मनुष्य के जीवन तक इन अच्छे स्रोतों का समापन नहीं हो सकेगा। ये परमात्मा की विशिष्ट व्यवस्था है। यह हम मात्र पृथ्वी लोक की बात कर रहे हैं जिस पर मानव जाति रहती है।

शास्त्रों में नीचे सात लोकों का वर्णन आता है जिन्हें 1. अतल 2. वितल 3. सुतल 4. तलातल 5. महातल 6. रसातल तथा 7. पाताल कहा जाता है। इसी प्रकार शास्त्रों में सात उर्ध्व लोकों का भी वर्णन आता है जिन्हे 1. भू–लोक 2. भुवर्लोक 3.स्वर्लोक 4. महर्लोक 5. जनलोक 6.तपलोक 7 सत्य लोक कहा जाता है।

इन लोकों के अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, राहु नक्षत्रों का भी वर्णन आता है। राहु के नीचे के लोकों में सिद्ध चारण तथा विद्याधर के निवास स्थान कहे गये हैं। वायु की गति जिस उॅचाई तक रहती है तथा बादल भी प्रतीत होते हैं वह अंतरिक्ष लोक कहा जाता है। अंतरिक्ष लोक में यक्ष, राक्षस, प्रेत तथा भूतों का विचरण होता है। इसकी सीमा तक हंस, गिद्ध, बाज तथा गरूड़ पक्षी उड़ सकते हैं।

ये प्रस्तुति ब्रह्माण्ड की स्थिति के स्पष्टीकरण हेतु एक सूक्ष्म विवरण है, जैसा की शास्त्रों में वर्णित है, वैसा कुछ वर्णन किया गया है। बह्माण्ड के बारे में जो कुछ कहा गया है उसके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड एवं अंतरिक्ष के विषय में खगोलशास्त्रियों ने भी खोज का कार्य किया है। जो कुछ अब तक कर पाया गया

है उसे बहुत नहीं कहा जा सकता। निरन्तर इस दिशा में शोध कार्य किया जा रहा है। शास्त्रों में ब्रह्माण्ड के विषय में जो वर्णन है उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त हमारे समक्ष कुछ विकल्प भी नहीं है। हमारे इस वर्णन का एक मात्र उद्देश्य ये है कि हम इस ब्रह्माण्ड को परमात्मा के द्वारा रचित किया गया स्वीकारें। उस परम सत्ता ने ही इस विचित्र ब्रह्माण्ड को आकार प्रदान किया है। इस ब्रम्हाण्ड की रचना की स्थिति को समझकर हम उस परमात्मा के अतुलनीय, सर्वशक्तिमान स्वरूप को स्वीकार करने को बाध्य होते हैं। वह परमात्मा ही हमारे हृदय में विराजमान है इससे मनुष्य अपनी विशिष्टता को समझ सकता है।

इस ब्रह्माण्ड की रचना उस परमात्मा ने लाखों वर्षों पूर्व की थी, तब से यह ब्रह्माण्ड अस्तित्त्व में है। निरन्तर गति कर रहा है। उस परमात्मा के नियन्त्रण में निरन्तर रह रहा है। बह्माण्ड का वह रचनाकार परमात्मा तब भी था और आज भी है इसी कारण उसे परम अविनाशी कहा जाता है। उसका कभी विनाश नहीं होता है। प्रलय–महाप्रलय में जगत तो नष्ट हो जाता है पर ब्रह्माण्ड का वह रचनाकार नष्ट नहीं होता है। प्रलय–महाप्रलय के पश्चात् वह पुनः सृष्टि करता है। नव निर्माण करता है। ये तथ्य उसी प्रकार का है जिस प्रकार भूकम्प में नष्ट हुए किसी शहर को सृजित किया जाना। उसका नव–निर्माण होता है । ये सृजन कौन करता है? इस विशाालतम निर्माण की प्रकिया क्या है? ये भी हमें समझना पड़ेगा।

## 13– परमात्मा ब्रह्माण्ड का निर्माण कैसे करता है?–

परमात्मा इतने विशाल आश्चर्यप्रद ब्रह्माण्ड की रचना–निर्माण कैसे करता है? इसमें कौन सहयोगी है? ये तथ्य महत्वपूर्ण है तथा विचारणीय भी है। परमात्मा जिसके द्वारा इस सम्पूर्ण बह्माण्ड की रचना करता है उस महाशक्ति को प्रकृति कहा जाता है। प्रकृति अव्यक्त होकर इस विशालतम ब्रह्माण्ड को बनाती है। ब्रह्माण्ड की रचना का, निर्माण का दायित्व परमात्मा ने प्रकृति को सौंपा है ब्रह्माण्ड की रचना में परमात्मा तो अध्यक्ष है और उसकी रचना शक्ति प्रकृति सृजनकर्ता है। प्रकृति ने अव्यक्त रहकर इतनी सुव्यवस्थित और विशाल रचना को प्रकट किया है ये एक अत्यन्त आश्चर्यजनक तथ्य है। प्रकृति की विलक्षणता, दिव्यता, अलौकिकता उसके द्वारा किये गये कार्यों को देखकर की जा सकती है। जैसे किसी भव्य भवन को देखकर रचनाकारों की स्थति का अनुमान लगाया जाता है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड को देखकर उसकी रचनात्मक शक्ति प्रकृति की दिव्यता का आभास सहज किया जा सकता है।

परमात्मा के आदेश से प्रकृति इस ब्रह्माण्ड का एक रेखाचित्र बनाती है। सूर्य, ग्रह, उपग्रह, तारा मण्डल तथा लोकों आदि का एक खाका खींचती है। यह रेखाचित्र परमात्मा की संज्ञानता में आकर उसके द्वारा स्वीकृत किया जाता है। ग्रहों, उपग्रहों, सूर्य, चन्द्र ,नक्षत्रों की गति किस प्रकार से होगी? किस प्रकार से उनका निर्माण होगा? तथा वे अपनी स्थिति में किस प्रकार से बने रहेंगे? कौन–कौन ग्रह उपग्रह किस प्रकार गति करेगा? किस प्रकार किसके मध्य कितना आकर्षण होगा ? ये सब सम्पूर्ण व्यवस्था सुव्यवस्थित रूप से प्रकृति सुनिश्चित करती है। परमधाम जिसे परमात्मा का आवास कहा जाता है वह नित्य– निरंतर वहॉ वास करता है, वहॉ रहता है। उस परमधाम को सूर्य, चन्द्र,अग्नि प्रकाशित नहीं करते हैं। उस परमधाम से प्रकृति समग्र ब्रह्माण्ड की रचना का कार्य करती है। प्रकृति और परमात्मा का सम्बन्ध माता पिता के सम्बन्ध जैसा है। प्रकृति परमात्मा की सहचारिणी होने के कारण विशिष्ट है। परमात्मा अव्यक्त है इसी प्रकार प्रकृति भी अव्यक्त है। अव्यक्त रह कर इस विशाल ब्रह्माण्ड को विशिष्ट तथा आश्यर्यजनक प्रकार से व्यक्त करती है। ये उसकी विशिष्टता और श्रेष्ठता है। जिस प्रकार विद्युत अव्यक्त रूप में रहती है तथा विभिन्न विद्युत यन्त्रों के रूप मे अपना अभास कराती है। विद्युत रहने या न रहने का आभास हम विद्युत यन्त्रों से कर लेते है। विद्युत का उदाहरण प्रकृति की अव्यक्त सत्ता को समझाने के लिये है पर उसमे कोई समानता नही है।

## 14– प्रकृति का स्वरूप–

पूर्व में प्रकृति के प्रकार अर्थात् उसके भेदों के विषय में स्पष्ट किया गया था। इस स्थल पर भी प्रकरण वश प्रकृति के प्रकारों का पुनः कथन किया जा रहा है। ये वर्णन प्रकृति को समझाने के लिये किया जा रहा है। प्रकृति के दो रूप है–

## 1– अपरा प्रकृति तथा 2– परा प्रकृति।

अपरा प्रकृति आठ भेदों वाली है जिन्हें 1 भूमि 2 जल 3 अग्नि 4 वायु 5 आकाश 6 मन 7 बुद्धि 8 अहंकार कहा जाता हैं।

परा प्रकृति जीव रूप है जिससे समग्र जगत धारण किया जाता है। जीव के रहने पर ही प्राणियों के शरीर मे चेतनता आती है। उपरोक्त प्रकार से परा और अपरा प्रकति दोनों के 9 रूप है। परमात्मा के प्रकृति के समस्त नौ स्वरूप अत्यन्त विशिष्ट हैं। इसे हमें समझना चाहिये। इनमें प्रथम पॉच तत्व जिन्हें पंचमहाभूत कहा

जाता है भूमि, वायु ,जल, अग्नि, आकाश के रूप मे व्यक्त हैं। प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं। तीन तत्त्व मन, बुद्धि, तथा अंहकार अव्यक्त रहते हैं। किसी न किसी रूप में व्यक्त हैं। अपरा प्रकृति के तीन तत्त्व मन,बुद्धि, अंहकार विशिष्ट तत्त्व है इसे सूक्ष्म सृष्टि भी कहा जाता है। जीव तो अत्यन्त विलक्षण है। प्रकृति अव्यक्त रहती है पर वह अपने अंगो के रूप में व्यक्त रहती है। उसका आभास उसके अंगो के रूप में किया जा सकता है तथा उसकी विलक्षणता का आभास उसके द्वारा निष्पादित कार्य के रूप में किया जा सकता है।

इस स्थल पर पंचमहाभूतों का प्रकरण है इस कारण पंचीकृत महाभूतों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। पंच महाभूतों के आकाश तत्त्व में आधा आकाश तथा शेष आधे में वायु अग्नि, जल तथा भूमि का बराबर –बराबर भाग है। वायु में आधा भाग वायु का तथा शेष आधे भाग में आकाश, अग्नि, जल तथा भूमि का बराबर बराबर भाग है। अग्नि में आधा भाग अग्नि का तथा शेष आधे भाग में आकाश, वायु ,जल तथा भूमि का बराबर बराबर भाग है। जल में आधा भाग जल का शेष आधे में आकाश, वायु, अग्नि तथा भूमि का आधा भाग बराबर बराबर है। भूमि में आधा भाग भूमि का शेष आधे में आकाश, वायु,अग्नि तथा जल का आधा भाग बराबर बराबर है। अपंचीकृत महाभूत में भाग नहीं होता है। आकाश की तन्मात्रा शब्द है। वायु की तन्मात्रा स्पर्श है। अग्नि की तन्मात्रा रूप है। जल की तन्मात्रा रस है। भूमि की तन्मात्रा गन्ध है। भूमि में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध सभी गुण होते हैं। जल में रस, रूप, स्पर्श शब्द गुण होते हैं। अग्नि में रूप, स्पर्श तथा शब्द गुण रहते है, वायु में स्पर्श तथा शब्द गुण हैं तथा आकाश में शब्द ही एक मात्र गुण है। उपरोक्त विवेचना प्रकृति के पॉच विशिष्ट तत्त्वों भूमि, जल ,अग्नि, वायु तथा आकाश के ज्ञान हेतु प्रस्तुत की गई है।

## 15–अपरा प्रकृति के तीन विशिष्ट तत्त्व–मन, बुद्धि, अहंकार–

पंचमहाभूतों भूमि,जल, अग्नि, वायु आकाश के अतिरिक्त तीन शेष तत्व मन, बुद्धि, अंहकार अपरा प्रकृति के अंग होने के कारण अतिविशिष्ट हैं। अव्यक्त एवं अप्रत्यक्ष हैं परन्तु आभास एवं अनुभव से व्यक्त तथा प्रत्यक्ष हो जाते हैं। एक सामान्य व्यक्ति इन तीन विशिष्ट तत्वों का आभास नहीं करता है। साधक आभास करता है और उत्कृष्ट साधक इनकी गति को समझता है और इन पर नियन्त्रण स्थापित कर लेता है। सिद्धि का यही एक मात्र मूल मंत्र है कि मन, बुद्धि पर नियन्त्रण स्थापित कर लेना । परमात्मा के साक्षात्कार के जितने भी साधनों का

उल्लेख ब्रह्म की अनुभूति के ग्रन्थों में होता है उन सब में मन, बुद्धि तथा अहंकार को नियन्त्रित करने का तथ्य ही व्यख्यापित किया जाता है।

अनियंत्रित मन, बुद्धि, अहंकार से साधना रूप कार्य का प्रथम चरण भी आरम्भ नहीं होता है। इस कारण अपरा प्रकृति के इन तीन विशिष्ट तत्त्वों को सैद्धातिक रूप से जानना ,उनकी कार्य विधि का ज्ञान होना, उनकी गति को परखना और उनकी अनावश्यक गति को रोक कर नियंत्रण स्थापित करना आवश्यक तथा अनिवार्य है। यदि हम किसी तत्व के बारे में नहीं जानेंगे, उसका अनुभव नही करेंगे, उसकी गति को नही परखेंगे, उसकी क्रिया विधि का आभास नही करेंगे तो हमें उस तत्व के बारे में विशिष्ट ज्ञान नहीं हो सकेगा। मन, बुद्धि, अहंकार जैसे विशिष्ट तत्त्व को सरलतम रूप मे वर्णित किया जाये क्योकि मन, बुद्धि, अहंकार गूढ. एवं रहस्यप्रद है पर इनको समझ कर अगूढ. एवं सरल बनाया जा सकता है। रहस्यप्रदता समाप्त की जा सकती है। किसी भी जाल को उसके सुलझाने के उपाय से सुलझाया जा सकता हैं। उसी प्रकार मन, बुद्धि, अहंकार को परख कर हम उस पर नियन्त्रण स्थापित करके सिद्ध हो सकते हैं।

**16– अपरा प्रकृति का छठा तत्त्व मन–** मन प्रत्येक मानव शरीर में अव्यक्त तत्त्व है जो प्रतीत नहीं होता है तथा उसकी गति से उसे जाना जा सकता है। उसका आभास हम कर सकते हैं। प्रातः जब हम सो कर जागते हैं तब से मन का कार्य आरम्भ हो जाता है और रात में सोने तक आरम्भ रहता है। दिनभर में हजारों विचार मन से होकर गुजरते हैं अर्थात् मन उनके बारे में विचार करता है। मन के कार्यों को हम वर्गीकृत नहीं कर सकते हैं । मात्र समझने के लिये उसके कार्य का प्रस्तुतीकरण यहॉ किया जा रहा है–

## क– मन पूर्व घटनाओं के विषय में विचार करता है–

जो जिस आयु सम्वर्ग का व्यक्ति है वह अपने जीवन के बारे अर्थात् अपने अतीत के विषय में संज्ञान रखता है। लगभग समग्र प्रमुख घटनायें उसकी स्मृति में सुरक्षित रहती हैं। कब क्या हुआ? ये घटना किस प्रकार घटित हुई? ये सम्पूर्ण तथ्य संज्ञान में आता रहता है। स्मृति में संचित होने के कारण जैसे ही मन चाहता है उस अपने स्मरण में ले लेता है। ये तथ्य उसी प्रकार है जिस प्रकार हमारी अलमारी मे कोई वस्तु वर्षों से संचित हो, रखी गई हो तो साधारणतया उस वस्तु को जानते हैं पर भूल भी जाते हैं। उसे देखते ही हमें उस वस्तु के विषय में स्मरण

हो जाता है। इसी प्रकार मन भी पूर्व घटनाओं को अतीत के घटनाक्रम को स्मृति में रखता है। अवसर आने पर कतिपय कारणों से परिस्थितवश वे हमारे मन में आ जाते है। इसके लिये हमें कोई प्रयास नहीं करना पड.ता है। परिस्थिति के अनुरूप उसका उदय–उद्भव हो जाता है। जैसे हमारे समक्ष कोई व्यक्ति किसी घटना को बता रहा हो तो हम उस घटना से अपनी पूर्व की घटनाओं से सामंजस्यता स्थापित करते हैं। हो सकता है उस घटना से मिलती जुलती कोई घटना हमारी स्मृति में हो तो वह तत्काल मन में प्रकट हो जाती है। अमुक–अमुक घटना हमारे साथ भी घटी थी। ये सब स्वतः स्पष्ट हो जाता है। अतीत के विषयों के बारे में चिन्तन करना मन का एक विशिष्ट कार्य है।यह अपरा प्रकृति के छठे अंग मन की विलक्षणता है।

## ख–मन वर्तमान समस्याओं के बारे में सोचता है–

हम जिस स्थिति में रह रहे हैं उस स्थिति में कुछ समस्यायें रहती हैं। उन समस्याओं के बारे में मन विचार करता है। वे समस्यायें कैसी हैं? और उनका क्या प्रारूप है? चूँकि समस्यायें मानव के जीवन में अवश्य रहती हैं, इस कारण समस्याओं के विषय में विचार भी अवश्य रहता है। आर्थिक रूप से विपन्न व्यक्तियों कि मूलभूत समस्यायें भोजन, वस्त्र, आवास की होती हैं। इस कारण वह मूलभूत समस्याओं के विषय में विचार करता है। मध्यम वर्ग की समस्यायें पृथक् प्रकार की है इस कारण वह अपने स्तर की समस्याओं पर विचार करता है। जो वस्तु उसे अपने स्तर के अनुरूप प्राप्त हो चुकी है और जो प्राप्त नहीं हुई है उस विषय पर मन विचार करता है

आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति अपनी स्तर के उच्चीकरण हेतु विचार करता है , उसका जो उच्च स्तर समाज में स्थापित है वह निरन्तर स्थापित रहे ये भी एक समस्या है। इस कारण इस पर भी विचार करता है ये तो आर्थिक स्तर की समस्यायें हैं। इसी प्रकार समाज के विभिन्न स्तर के लोगों जैसे राजनीतिज्ञ, व्यवसायी, विधिवेत्ता, न्यायाधीश, राजनेता, उच्चपदस्थ व्यक्ति, साहित्यकार आदि आदि अपनी अपनी समस्याओं के विषय में विचार करते हैं।

## ग–भविष्य में क्या करना है? इस विषय में मन विचार करता है–

अतीत तथा वर्तमान के अलावा मन भविष्य के बारे में भी बहुत विचार करता है। भविष्य में कल्पनाओं का तानाबाना बुनना भी मन का एक प्रमुख कार्य है।

भविष्य के बारे में मन बडी ही प्रबलता से ,तेजी से विचार करता है। एक तथ्य को विचारते–विचारते वह उस तथ्य के सैकडों तथा हजारों तथ्यों को क्षण मात्र में प्रकट कर देता है। ऐसा है, ऐसा होगा, पुनः ऐसा हो जायेगा आदि आदि विचार करते करते मन की प्रबलता का उसकी विचार करने की शक्ति का अनुभव किया जा सकता है।

पृथ्वी से आकाश तक मन भविष्य की क्रियाविधि की सीढियां लगा लेता है। भविष्य की संरचना में मन की क्रिया शक्ति बहुत तेज है। अत्यन्त प्रबल है। वह

कल्पना करने की क्रिया में तेज गति के वायुवान को भी बहुत पीछे छोड. देता है। भविष्य की कल्पनाओं में डूबा रहना मन का एक विशिष्ट कार्य है। जैसे हम अपने भवन की निर्माण की नीवं पर कार्य आरम्भ करते हैं तो हमारे मन में मन के विचार में उस भवन का रेखा चित्र उभरता है। एक,दो, तीन, चार आदि मंजिलों का कार्य मन में ही कर डालते हैं। इस निर्माण के लिए धन की व्यवस्था पर भी मन बहुत तीव्रता से विचार करता है। ये सबके सब विचार सेकेण्डों में ही प्रकट हो जाते हैं। भवन निर्माण के सम्बन्ध मे ये एक विचार है परन्तु इस प्रकार असंख्य विचार भविष्य के विषय में मन के द्वारा विचारित किये जाते हैं। ये अपरा प्रकृति के छठे अंग मन की विशिष्टता है।

## घ–सांसारिक भोगों के बारे में मन विचार करता है–

मन एक प्रमुख कार्य है भोगे हुये विषयों का चिन्तन करना। वैसे तो इन्द्रियॉ मन के सहारे अपने विषयों का भोग करती हैं। विषय भोगों में मन ही सहायक होता है, परन्तु मन को अकेले ही विषय भोगों के स्मरण मात्र से ही विषय भोगों के चिन्तन की शक्ति प्राप्त है। जैसे हमने किसी विशिष्ट स्थान पर अत्यन्त सुस्वाद मिष्ठान का पूर्व मे स्वाद चखा हो। उस स्वाद की स्मृति संचित रहती है। मन जब भी चाहता है तो मन उस मिष्ठान का स्वाद स्मरण मात्र से ही भोग लेता है। यद्यपि ये क्रिया काल्पनिक है फिर भी यथार्थ प्रतीत होती है। इसी प्रकार प्रत्येक विषय भोग के बारे मे विचार कर लेना चाहिए। मन अकेले ही विषय भोगों के बारे में बहुत चिन्तन कर लेता है और चिन्तन की गहनता की स्थिति में वह चित्त के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

भोगे गये विषयों के बारे में तथा सुने सुनाये विषयों के बारे में तथा कल्पना में आये विषयों के बारे में मन विस्तार से विचार कर लेता है। साधारण व्यक्ति का

अधिक समय इसी कार्य में बीतता है। जैसा मन भोगों का चिन्तन कर लेता है। तीन प्रकार के चिन्तन का जो वर्णन किया गया है उसे स्पष्ट समझे। जो विषय भोगे गये हैं वे साधक के मन मे सचिंत होने के कारण साधक को बहुत परेशान करते हैं। दूसरे प्रकार के सुने सुनाये विषयों के बारे में चिन्तन करना उनको भोगने की लालसा रखना भी मन का एक प्रमुख कार्य है। जब मनुष्य एकान्त में रहता है तब भोगों की कल्पना कर लेता है। ये क्रिया साधक व्यक्ति को बहुत उलझाती है। साधारण व्यक्ति भी इस बारें मे बहुत उद्विग्न हो जाता है ,परन्तु प्राथमिक साधक भी कल्पना मे आये विषयों को साधारणतया भोगना चाहता है। वह भी चाहता है कि ऐसा हो, वैसा हो, ऐसा मिले, वैसा मिले। यह विचार कल्पना से ही ज्ञात हो जाता है विषयों का चिन्तन करना अपरा प्रकृति के छठे तत्त्व मन का विशिष्ट गुण है।

## ङ–मन तात्कालिक विषयों का चिन्तन करता है–

जब कोई आकस्मिक अचानक घटना हो जाती है तब मन उस घटना के विषय में तात्कालिक चिन्तन करने लगता है। उस समय मन की गति बहुत तीव्र हो जाती है। मन पुनः पुनः उस आकस्मिक घटना के विषय में विचार करता है। इस प्रकार के चिन्तन के समय अन्य विषय गौण हो जाते हैं तथा प्रमुखता से चिन्तन उस तात्कालिक घटना के विषय में होता है। ये सब घटना पर आधारित है कि घटना किस प्रकार की है? यदि घटना काफी गम्भीर है जिससे मनुष्य को शारिरिक ,मानसिक ,सामाजिक ,आर्थिक क्षति होती है तो मन पुनः पुनः उस पर ही विचार करता है। मन सहजता से हटता नहीं है। हटाने पर भी उसी विषय पर आरूढ. हो जाता है। घटना की तीव्रता मन के चिन्तन समय को तय करती है।

तात्कालिक घटनाओं का चिन्तन मन कुछ समय तक करता है और वह पुनः जिस गति से चल रहा था चलने लगता है। सामान्य हो जाता है। समय के साथ सामान्य स्थिति स्वतः ही आ जाती है। तात्कालिक घटनायें प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आती हैं इस कारण मन भी इस प्रकार के चिन्तन में समयानुसार सलंग्न हो जाता है और पुनः अपनी सामान्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उस घटना की स्मृति मन में संचित हो जाती है और वह समय पर प्रकट होती है।

## च– मन अन्तःकरण के अनुरूप चिन्तन करता है–

प्रत्येक मनुष्य का अन्तःकरण पृथक् पृथक् प्रकार का होता है। अन्तःकरण के अनुरूप ही उसकी श्रद्धा भी होती है। श्रद्धा के अनुरूप ही मन का चिन्तन चलता

है। उदाहरणार्थ यदि हमारी श्रद्धा देवी देवताओं में है तो उनकी उपासना का विचार मन में रहता है। यदि हमारी श्रद्धा अनेक प्रकार की सांसारिक वस्तुओं के एकत्रीकरण की है तो हम सांसारिक वस्तुओं के एकत्रीकरण के बार में विचार करते रहते हैं। अन्तःकरण मे जो विचार रहते हैं वैसा भी अथवा वैसा ही मन का विचार चलता है। हमारी श्रद्धा किसी वस्तु विशेष, व्यक्ति विशेष में हो तो हम उस वस्तु विशेष तथा व्यक्ति विशेष के बारे में विचार करते रहते हैं। इसके प्रतिकूल हमारी श्रद्धा किसी वस्तु के विषय में नहीं हैं, किसी व्यक्ति में नही हैं तो हम उसके बारे में यदा कदा नकारात्मक विचार भी करते हैं। तभी व्यक्ति कहता है अमुक स्थान में, अमुक व्यक्ति में, अमुक वस्तु में हमारी श्रद्धा ही नहीं है। इस प्रकार अधिकांशता मन का चिन्तन अन्तःकरण के अनुसार चलता है।

## छ– मन प्रकृति के अनुरूप विचार करता है–

मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार ही विचार करता है। प्रकृति के तीन प्रकार हैं– सात्त्विक, राजसी तथा तामसी। सात्त्विक प्रकृति का मनुष्य सात्त्विक मन से विचार करता है। वह कर्तव्य अकर्तव्य, नीति अनीति, धर्म अधर्म पर विधिवत् विचार करता है। उसका मन कर्तव्य, नीति, धर्म का समर्थक होता है और वैसा ही आचरण करना चाहता है।ये चिन्तन प्रकृति के अनुरूप है। राजसी प्रकृति का मनुष्य सांसारिक भोगों की वस्तुओं के एकत्रीकरण के बारें में अधिक विचार करता है। उसके मन में स्पर्हा की भावना प्रबल होती है। उसका मन संसार में रहना चाहता है। रमना चाहता है तथा उसी में अमोद प्रमोद मानता है। वह अपने मन में धन,सम्पदा,ऐश्वर्य, कीर्ति, प्रतिष्ठा, पद के संकलन के बारें में विचार करता रहता है। जैसा विचार करता है, वैसा करने का प्रयास भी करता है।

मन द्वारा संकल्पित वस्तुओं की प्रप्ति के प्रयास में संलग्न रह कर उसमें सुख का आभास करता है। तामसी प्रकृति के मनुष्यों का चिन्तन समाज में दूसरों को कष्ट देने, दूसरे के अधिकार की वस्तुओं को छीनने, लोगों को प्रताडि.त करने जैसे अज्ञानजनित कार्यों के बारें में होता है। वे ये विचार करते रहते हैं कि हम किस प्रकार से किसी व्यक्ति का अहित कर दें अथवा किस प्रकार से किसी व्यक्ति की सम्पत्ति प्राप्त हो जाए। ये जो विचार मन में रहता है उस विचार को मन के सकंल्प के आधार पर उसे पूरा करने का प्रयास भी होता है। तामसी प्रकृति का मनुष्य विशेषकर दूसरों को दुख देकर स्वयं सुख प्राप्त करना चाहता है। ये प्रकृति के अनुरूप ही करता हैं इस प्रकार मन अपनी प्रकृति के अनुरूप ही विचार करता है।

## ज–मन अनावश्यक विषयों को विचारता है–

मन का जो समग्र चिन्तन है वह अनावश्यक विषयों के बारे में अधिक है। अनावश्यक चिन्तन के कारण ही इसे अत्यन्त प्रमथनशील तथा चंचल स्वभाव वाला कहा जाता है। जिस परिस्थिति में, जिस वातावरण में, जहां भी रहता है उसके बारें में तत्काल विचार करता है। यद्यपि अधिक चिन्तन अनावश्यक होता है इस कारण इसका तात्कालिक प्रभाव हो सकता है परन्तु उसका आधारभूत परिणाम नहीं होता है। प्रातः से रात्रि तक हजारों विचार ऐसे आते हैं जो आवश्यक नहीं कहे जा सकते। चूँकि कल्पना करना और सहजता से चले जाना तथा कल्पना लोक में भ्रमण करना इसका प्रमुख धर्म है। इस कारण अनावश्यक चिन्तन अधिक होता है। अनावश्यक चिन्तन का अभिप्राय है कि मन ऐसे विषयों पर विचार करता है कि जो मनुष्य के लिए किसी भी प्रकार कल्याणकारक नहीं कहे जा सकते।

मनुष्य स्वयं का मित्र है तथा स्वयं का शत्रु अनावश्यक चिन्तन के कारण ही है। मन का आवश्यक चिन्तन व्यक्ति को कल्याण के पथ पर ले जाता है, परन्तु साधारणतया मनुष्य का मन अनावश्यक चिन्तन की आदत डाल लेता है। इस कारण वह अधिक समय अनावश्यक चिन्तन करता है। विचार मन में आये तो वह दूसरों का हित करने वाला हो तथा उससे समाज का भी हित हो ,ऐसा विचार आवश्यक कहा जाता है। इसके प्रतिकूल मनुष्य का मन जब अनेक सांसारिक भोगों में प्रवृत्त होकर अनावश्यक कल्पनायें करता हैं तो उस चिन्तन को अनावश्यक चिन्तन कहा जाता है। अधिकांश मनुष्य अधिक समय तक अनावश्यक बातों पर ही विचार करते रहते है। इसप्रकार अनावश्यक चिन्तन मन का एक विशिष्ट कार्य है।

## झ– मन आशंकाओं के बारे में विचार करता है–

मन में आशंकाऐं रहती हैं। मनुष्य चूँकि अल्पज्ञ है। वह अतीत को देख चुका है और वर्तमान के प्रत्येक पल को देख रहा परन्तु वह भविष्य के बारें में कुछ नहीं जानता है। इस कारण वह अल्पज्ञ है।मन में आशकाऐं अल्पज्ञता के कारण ही रहती हैं। जो हमने आज तक प्राप्त किया है अर्थात् जो भी हमारे पास है वह सब का सब सुरक्षित रहे। हमारी सम्पत्ति परिवार, सम्पर्कित लोग,सगे सम्बन्धी भी सुरक्षित रहे ये विचार मानव की स्वाभाविक प्रवृति है जो मन में रहती है। मन में उनके कुशल क्षेम की इच्छा रहती है इस कारण मन में आंशका रहती है कि कहीं किसी का अहित न हो जाये। इस आंशका पर भी मन विचार करता है। इस प्रकार

के विचार समय –समय पर परिस्थिति के अनुसार आते रहते हैं। भविष्य में क्या कुछ अप्रिय हो सकता हैं, ये तथ्य मनुष्य से परे है। यदि वह ये जान पाता कि अमुक घटना होगी तो वह उनके बचाव का प्रयास करता। परन्तु ये अज्ञानता, भविष्य के विषय में जानकारी का अभाव ही आशंकाओं के विषय में मन के चिन्तन का आधारभूत कारण है। ऐसा हुआ तो ऐसा हो सकता है,अथवा ऐसा हो जायेगा अथवा ऐसी सम्भावना है आदि आदि विचार मन में आते रहते हैं ये सब आंशकाओं के बारें में मन का चिन्तन है।

## ञ– मन सम्भावनायें तलाशता है–

मनुष्य दिन रात कार्य करता है। उस कार्य का क्रियान्वयन उसके द्वारा मन में संकल्पित किया जाता है। एक कार्य पुनः दूसरा कार्य तत्पश्चात् तीसरा कार्य ये कार्यों की अनगिनत श्रृंखला चलती है। इस प्रकार सम्पूर्ण कार्यों का ताना बाना बुनना मन का कार्य है। इस कार्य में मन इतना तन्मय रहता है कि वह एक सम्भावना के पश्चात् दूसरी और दूसरी के पश्चात् तीसरी सम्भावना तलाशता है। ये सम्भावना तलाशने की खोजने की गति इतनी तीव्र है कि मन उसमें उलझ जाता है। किसी व्यस्त मनुष्य को आप देखे और उसकी मनः स्थिति का आकलन करें। जैसे राजनेता,अधिकारी,उच्चपदस्थ व्यक्ति, ख्याति प्राप्त व्यक्ति, व्यावसायी,उद्योगपति आदि। ऐसे मनुष्यों की मनः स्थिति सम्भावनायें तलाशती रहती हैं। वे दिन रात इतना व्यस्त रहते हैं कि वह अपने कार्यों के विषय और अपने क्षेत्र के बारें में मन को बहुत दौड.ाते हैं ,अथवा इसको इस प्रकार कहें कि ये मन के सहारे बहुत दौडते हैं।

अनेक समस्याओं का निराकरण खोजते–खोजते जान नहीं पाता कि कितनी शीघ्रता से समय हाथ से निकल गया। सम्भावनायें तलाशने और उनको पूरी करने में उन्हें सुखानुभूति होती है। वह क्षणिक आनन्द का मानसिक अनुभव करता है। सम्भावनायें तलाशने की ये उलझन बहुत विशाल और विस्तृत है। इसमें जब मन उलझता है तो वह मायिक प्रपंच के जाल से निकल नही पाता है। सम्भावनायें तलाशने की मनःस्थिति की निरीक्षण किसी अतिव्यस्त राजनेता को देखकर आप करे। उससे मिलने को आतुर लोग भीड. लगाये रहते हैं। ऐसे लोगों की मनःस्थिति बहुत वेगवती होती है।

## ट–सामान्य व्यक्ति की मनःस्थिति –

एक सामान्य व्यक्ति का मन क्या विचार करता है? उसकी क्या स्थिति होती है? ये भी विचारणीय है। एक सामान्य व्यक्ति अपने मन को साधारणतया अपने परिवार, कार्य, व्यवसाय, सम्पर्कित लोगों, सम्बन्धियों के विषय में विचार कर लेने में लगाता है। इन सबसे प्रमुख तथ्य ये है कि वह सांसारिक भोगों, सुखों को आनन्दप्रद समझ कर उन्हें पाना चाहता है। उपरोक्त प्रकार से सामान्य व्यक्ति अपने मन को संलग्न रखता है। उसके मन की गति प्रातः से रात्रि तक अपने परिवार के दायित्वों के निर्वहन तथा अपने कर्म क्षेत्र में उलझी रहती है। यदा कदा वह समाज में प्रचलित पूजा–उपासनाओं को वह सम्पादित कर लेता है। जो जैसा बताता है वह वैसा ही मानता है। उसका मन यथार्थ के विचार से पृथक् रहता है। किसी समस्या के निराकरण के लिए जो जैसा बताता है वह वैसा करने का प्रयास करता है। उसके मन में अपनी स्थिर विचार शक्ति नहीं रहती है। सामान्य व्यक्ति साधारणतया अस्थिर मन का व्यक्ति रहता है जो कार्य उसे प्राप्त होता है वह उसे करता रहता है। विचारहीनता उसके मन का प्रमुख लक्षण है। कर्तव्य अकर्तव्य के सामान्य बोध से रहित वह अपनी जीवन यात्रा पूरी करता है। ये कहना उचित होगा कि वह अपने मन को सामान्य प्रकार से रखता है । नित्य प्रति होने वाले क्रियाकलापों में संलग्नता उसके मन के चिन्तन का प्रमुख विषय रहता है। सामान्य व्यक्ति सामान्य चिन्तन ही किया करता है। इसी प्रकार उसकी जीवन यात्रा समाप्त हो जाती है।

## 17–मन असंयमित क्यों रहता है ? –

हमारा मन असंयमित क्यों रहता है? मन के असंयमित रहने के क्या कारण हैं? इस पर विचार करना परम आवश्यक है। वे क्या कारण है? जिनके कारण हमारा मन चलते रहकर हमें व्यस्त रखता है। मन के असंयमित रहने के कुछ प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं–

**1. कामना–** विभिन्न प्रकार की सांसारिक कामनायें मनुष्य के मन को संयमित नहीं होने देती। हम जब कामनाओं के संजाल में रहते हैं, तो मन निंरतर कामनाओं के कारण चलायमान रहता है। चूँकि कामनायें अंसख्य हैं इस कारण मन भी असंख्य कामनाओं के घेरे में रहकर विभिन्न प्रकार के चिन्तन में लगा रहता है। इस कारण कामनायें मन के असंयमन का कारण है।

**2. क्रोध–** मनुष्य की कामनाओं में किसी प्रकार की बाधा अथवा अवरोध आ जाने के कारण क्रोध की उत्पत्ति हो जाती है । क्रोध के प्रकट हो जाने के कारण मनुष्य का मन असीमित रूप से चंचल हो जाता है। चूँकि क्रोध में मनुष्य की विवेक रूपी शक्ति समाप्त हो जाती है इस कारण मनुष्य अत्यन्त तीव्रता से अनावश्यक चीजों का चिन्तन आरम्भ कर देता है।

**3.अहंकार–** मनुष्य शरीर में जब अहंकार प्रकट हो जाता है, तो मनुष्य का मन अहंकार के अधीन हो कर परिस्थिति के अनुसार समग्र चिन्तन करता है। अहंकार के अधीन मनुष्य के रहने पर जिस कारण से अहंकार की उत्पत्ति होती है, उसी के विषय में मन चिन्तन करके असंयमित हो जाता है। इस स्थिति में अहंकार के कारण तथा प्रस्तुतीकरण के विषय पर मन का विचार चलता है।

**4. लोभ–** लोभ मनुष्य का परमशत्रु है। जब मनुष्य लोभ के अधीन हो जाता है तो वह नाना प्रकार की कल्पनायें करता है। चूँकि लोगों में लोभ किसी सांसारिंक वस्तु या भोग के विषय की होती है इस कारण लोभी मनुष्य के मन का चिन्तन उसी विषय का होता है, जिसके विषय में लोभ किया जाता है। इस प्रकार लोभ भी मन के असंयमित रहने का एक प्रमुख कारण है।

**5.मोह**– मनुष्य जब किसी सांसारिक वस्तु या व्यक्ति के मोह से ग्रसित हो जाता है ,तो उस विषय के बारे में या व्यक्ति के बारे में मन से विचार करता है, जिसके सम्बन्ध में मोह किया गया है। मोहग्रस्त व्यक्ति का विवेक शून्यता की ओर अग्रसर हो जाता है। वह मोह संकल्पित वस्तु को प्रत्येक स्थिति में पाना चाहता है। उसी के बारे असंयमित चिन्तन करता है। इस प्रकार मोह से भी व्यक्ति का मन असंयमित रहता है।

**6.दम्भ–** जो वास्तविक स्थिति है उससे अधिक का प्रस्तुतीकरण करना दम्भाचरण कहा जाता है। जब मनुष्य दम्भ नामक दोष के अधीन हो जाता है, तो वह वास्तविक रूप से अधिक का प्रस्तुतीकरण कैसे किया जाए ? इस विषय पर विचार करके अपना मन असंयमित कर लेता है। धन ,बल, ज्ञान जो है,जैसा हमें प्राप्त है, उससे अधिक का प्रस्तुतीकरण हेतु मन जब असंयमित होकर विचार करता है, तो वह दम्भ के अधीन असंयमित विचार करता है।

**7. मिथ्या–** वास्तविक घटना तथा वास्तविक वस्तु को छिपाकर बनावटी तथ्य को प्रकट करना मिथ्या कहलाता है। मिथ्या व्यवहार में मन को बहुत असंयमित रहकर

कार्य करना पड.ता है। यह सत्य नहीं है अर्थात् सत्य के प्रतिकूल असत्य की प्रस्तुति करने का प्रयास जब भी होता है तो मन असंयमित होकर नाना प्रकार के प्रंपच प्रस्तुत करता है। मन के असंयमन का एक प्रमुख कारण मिथ्याचरण भी है।

**8. दर्प–** जब हम अपने प्राप्त बल, शक्ति ,धन ,जनबल, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, पद के वशीभूत हो जाते हैं, तो भी हम उन तथ्यों के बारें में ही असंयमित रूप से चिन्तन करते हैं। विचार करते रहते हैं। जैसे हमें धन की पर्याप्त उपलब्धता हो, तो उसी की शक्ति के विषय में विचार चलता रहता है। दर्प से ग्रसित व्यक्ति दर्प के उपलब्ध तत्त्व पर असंयमित रूप से विचार करता रहता है। इस प्रकार दर्प भी मन के असंयमित रहने का एक मूल कारण है।

**9. ईर्ष्या–** किसी व्यक्ति के विकास को देखकर अथवा उसके द्वारा स्वयं का अहित करना समझ कर अथवा अन्य कारणों से ईर्ष्या का जो भाव हमारे मन में प्रकट हो जाता है, उस भाव को मन असंयमित रूप से चिन्तन करने लगता है। ईर्ष्या से ग्रसित मनुष्य ईर्ष्या पर विचार करता है तथा असंयमित रहकर व्यवहार करता है। उसकी वाणी में, मुखाकृति में ये चिन्तन झलकता है।

**10. अन्याय–** जब हम किसी के साथ अन्याय करते हैं , तो न्याय के विरूद्ध कर्म में प्रवृत्त होते हैं, तो भी मन का चिन्तन अन्याय के विषय में विचार करता रहता है। अन्याय कैसे करना है? अन्याय के कार्य में हम कैसे सफल होगे? अन्याय का कार्य कैसे सम्पादित होना चाहिए? आदि आदि कारणों से मन असंयमित हो जाता है। अन्यायी व्यक्ति अन्याय से ग्रस्त हो कर अन्याय से उपार्जित लाभ के बारे में असंयमित रूप से विचार करता है।

**11. द्रोह–** शत्रुता या द्रोह के कारण ही मन असंयमित रूप से विचार करता है। द्रोह ऐसा अवगुण है जो प्रत्येक मनुष्य के मन में अनायास या कारणवश आ जाता है। द्रोह के समापन से मन से संयमित होता है और द्रोह के विकास से मन पूरी तरह असंयमित होकर शत्रुपक्ष के अहित के विषय में विचार करता है।

**12. अक्षमा–** जब हमारा कोई अहित विचारता है अथवा कर देता है ,तो हम उसके प्रति उसके नुकसान करने का विचार करते हैं। अपना अहित करने वाले को हम क्षमा करके मन को संयमित कर सकते है और उसके नुकसान करने के भाव अर्थात् अक्षमा से मन को असंयमित कर लेते हैं। मन का संयमन क्षमा में है तथा उसके प्रतिकूल अक्षमा से मन पूरी तरह व्यथित होकर उसके अहित के बारे में विचार

करता रहता है, जिसने हमारी हानि की है। ऐसी स्थिति में मन असंयमित हो जाता है।

**13. उग्रकर्म–** किसी प्राणी को अत्यन्त कष्ट देना, उसका शोषण करना, उसको मारने के लिए उद्वत होना या उसकी हत्या का प्रयास करना आदि कर्म उग्रकर्म की श्रेणी में आता है। जब मनुष्य उग्रकर्म करने का विचार करता है, उग्रकर्म के लिए उद्वत होता तो उसके मन की स्थिति अत्यन्त असंयमित हो जाती है। उग्रकर्म करने से पूर्व भी मन असंयमित रहता है तथा निष्पादन करके उसका मन अधिक असंयमित हो जाता है। इस प्रकार उग्रकर्म भी मन के असंयमित रहने का एक प्रमुख कारण है।

**14. शोक–** शोकग्रस्त मनुष्य के मन के चिन्तन की स्थिति बडी दयनीय होती है। शोक से ग्रस्त मनुष्य अपने मन को शोक में निमग्न देखता है। वह दुखः के कारण तथा उसके निवारण पर असंयमित होकर विचार करता है। मन में शोक रख कर वह भॉति–भॉति की संकल्पनायें करता है। हम सभी जब शोकग्रस्त होते हैं , तो हम अपने मन की स्थिति का स्वयं आंकलन कर सकते हैं।

**15. भोगवृत्ति–** इन्द्रिय विषयों को मनमाने ढंग से भोगने की इच्छा रखना तथा उसके संपादन हेतु प्रयत्नशील होना ही भोगवृत्ति कहा जाता है। ये वृत्ति साधारणयता प्रत्येक मनुष्य में होती है परन्तु भोगवृत्ति से आवृत व्यक्ति में विशेष होती है। भोगवृत्ति से आवृत व्यक्ति का मन असंयमित होकर इन्द्रिय विषयों के बारे में विचार करता रहता है। प्रबल कामना होने पर मन का असंयमन स्पष्ट प्रतीत होता है। कामना की यदि पूर्ति न हो तो मनुष्य क्रोध के वशीभूत होकर गम्भीर रूप से असंयमित मन का हो जाता है।

**16. असूया–** जब मनुष्य में असूया रूपी दोष आ जाता है, तो वह अन्य लोगों के दोषों पर ही विचार करता है। किसी व्यक्ति या वस्तु के अवगुण के विषय में चिन्तन करता है। उसके मन की स्थिति असंयमित हो जाती है। आलोचक लोगों में ये दृष्टि बहुलता से रहती है। ऐसे लोग गुणों में अवगुणों पर विचार कर लेते हैं। किसी वस्तु में या किसी प्रस्तुति में क्या कमी है ये जानने का विचार करते हैं और अपने मन को असंयमित कर लेते हैं।

**17. पाखण्ड–** जब हम किसी कार्य के बारे में या ज्ञान के बारे में वास्तविक ज्ञान नही रखते हैं तो ज्ञान के रूप में असत्य को सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते

हैं। ये कार्य पाखण्ड कहा जाता है। सत्य को असत्य के रूप में रखना तथा ज्ञान को अज्ञान के रूप में रखना ही पाखण्ड का प्रमुख लक्षण है। इस पाखण्ड के सम्पादन में मन असंयमित रूप से कार्य करता है। चूँकि पाखण्डी व्यक्ति यथार्थ ज्ञान से परिचित नहीं होता इस कारण यह अपरिचित का संशय उसके मन को असंयमित रखता है। इस प्रकार पाखण्ड भी मन के असंयमित रहने में एक प्रमुख कारण है।

**18. अमर्यादा–** मर्यादा में रहने वाले मनुष्य का मन संयमित हो जाता है और वह मर्यादा के कारण अपने को नियंत्रित करता है।अमर्यादित मनुष्य अमर्यादित कार्य के कारण ही मन से बहुत असंयमित रहता है। समाज में अमर्यादित कर्मों की प्रतिष्ठा नहीं है। प्रतिष्ठा तथा सम्मान मर्यादा पूर्ण कर्मो के कारण होती है। इस कारण मर्यादा में न रहने से भी मनुष्य का मन असंयमित हो जाता है।

**19. अतिमानता–** मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति है कि वह प्रतिष्ठा व सम्मान चाहता है। सम्मान की आशा रखना,प्रतिष्ठा की इच्छा रखना ही अतिमानता कहा जाता है। जो व्यक्ति अपने को सम्मानित रखना चाहते हैं उनके मन में मान तथा अपमान के विषय में बहुत विचार चलता है। ये विचार ही उन्हें असंयमित रखता है। इस प्रकार मन की स्थिरता अतिमानता के भाव के कारण भी प्रभावित होती है।

**20. व्यर्थ आशा–** विशेषकर आज का मनुष्य अनेक प्रकार की व्यर्थ आशाओं में जी रहा है। तो वह अनावश्यक प्रकार की आकांक्षायें करता है। कभी न पूरी होने वाली इच्छायें रखता है। इसी को व्यर्थ आशा कहा जाता है। व्यर्थ आशा रखने वाला

मनुष्य कभी भी सयंमित नहीं हो पाता है। वह असंयमित हो कर नानाप्रकार की इच्छा करता रहता है। ऐसी स्थिति में उसका मन निरन्तर असंयमित ही रहता है।

मन के असंयमित रहने के अन्य कारण भी हो सकते हैं। उपरोक्त प्रकार से कुछ विशिष्ट प्रकार के कारणों का उल्लेख किया गया है। साधारणतया मन की प्रवृत्ति ही चंचल है और उसके पीछे हमारे दोष ही विशिष्ट और आधारभूत कारण हैं। हमें अपने दोषों पर विचार करके उनके समापन का तथा उनके शमन का प्रयास करना चाहिए। मन को यदि हम वास्तविक रूप से संयमित करना चाहते हैं तो अनेक प्रकार की,अनावश्यक प्रकार की कामनाओं का तत्काल त्याग कर देना चाहिए। कामनाओं के परित्याग से मन का संयमन आरम्भ हो जाता है। धीरे–धीरे सम्पूर्ण कामानाओं के त्याग से मन पूरी तरह से संयमित हो जाता है।

## 18–मन का संयमन आवश्यक क्यों है?–

परमात्मा की अपरा प्रकृति के छठे महत्वपूर्ण तत्त्व मन मानव शरीर में विशिष्ट तत्त्व है। इसकी विशिष्टता के प्रतिपादन हेतु ये कहा जाता है, कि संयमी मन वाला साधक सिद्धि को प्राप्त हो जाता तथा असंयमित मन वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है तथा नाना प्रकार की आसुरी –नारकीय योनियों में भ्रमण करके कष्ट सहता रहता है। इस प्रकार से संयमित मन वाला मनुष्य अपने कल्याण का मार्ग खोज कर सुखानुभूति करता है और परम पद की प्राप्ति करके मुक्त हो जाता है तथा असंयमित मन वाला मनुष्य दुखः सहता है। अपने कल्याण तथा हित की इच्छा वाले मनुष्यों ने मन को संयमित किया है, और उसे उस तत्त्व के चिन्तन की ओर उन्मुख किया है जिधर जाकर मनुष्य को परम सुख की, आनन्द की, परमानन्द की अनुभूति होती है। हम मन को संयमित करके सुख प्राप्त कर सकते हैं और दुःखों का कारण मन का असंयमित रहना ही माना गया है। इस कारण मन का संयमन–नियंत्रण आवश्यक है।

साधारणतया प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है और आनन्द चाहता है। चाहें वह किसी भी प्रकृति का व्यक्ति हो। अपराधी स्वभाव के व्यक्ति तथा दुष्कर्मी मनुष्य भी सुख चाहते हैं और सुख की चाहना में वे दुष्कर्म और अपराध करते हैं। ये एक साधारण तथ्य है। यद्यपि उन्हें दुष्कर्म के परिणामस्वरूप सुख की प्राप्ति तो नहीं होती, बल्कि वे दुखों के भंवर में अवश्य फॅस जाते हैं। मनुष्य दुष्कर्म और अपराध क्यों करता है? उसके मूल कारण पर जब आप विचार करेगें तो पायेगें की दुष्कर्मो और अपराधों का कार्यान्वयन असंयमित मन वाले व्यक्ति ही करते हैं। अवांछनीय कामनाओं और भोगवाले व्यक्तियों के मानसिक विचार ही मनुष्य को इस अज्ञानता

में ढकेल देते हैं। फिर मनुष्य अपने मन को संयमित कर ले तो वह अपराध ओर दुष्कर्मों का पूरी तरह से त्याग कर देगा। इस कारण भी मन का संयमन और नियंत्रण आवश्यक है।

मनुष्य के समस्त कर्मों के क्रियान्वयन का दायित्व मन के चिन्तन पर ही आधारित है। अर्थात् हम नित्य– प्रति ,पल– प्रतिपल जो कुछ भी करते हैं वह सब का सब मन के चिन्तन पर ही आधारित होता है। वैसा ही मनुष्य कार्य करता है। यदि मनुष्य अच्छे कर्मों के बारे में विचार करता है, तो वह शुभ कर्म ही करता है और यदि अशुभ कर्मो के बारे में विचार करता है तो मन के विचार के आधार पर

अशुभ कर्म आरम्भ कर देता है। अर्थात् समस्त कार्यों का सम्बन्ध और आधार में मन का चिन्तन ही कारण होता है। अब आप मन के चिन्तन की महत्ता को सहजता से समझ गये होगें।

मानव जीवन का सारा का सारा कार्य ही मन के चिन्तन पर आधारित है। असंयमित मन ऐसे विचार करता जो परिणामतः मनुष्य के लिए बहुत ही दुःखदायी सिद्ध होते हैं। तत्काल इस का कोई प्रभाव अथवा परिणाम प्रतीत नहीं होता है पर असंयमित मन ने जो विचार किया है उसे क्रियान्वित करके हम अनेक प्रकार के दुःखों को झेलते हैं और अन्ततः दुखी होते हैं। इस कारण मन का पूर्ण संयमन और नियंत्रण आवश्यक है। यह आवश्यकता मानव जीवन के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है । इस प्रकार यदि हम मन को संयमित करते हैं तो मानव जीवन के परम उद्देश्य मुक्ति को सहजता से प्राप्त कर सकते है और मन को असंयमित रखकर जीवनपर्यन्त दुख भोगते हैं तथा मृत्यु के उपरान्त नरकगामी होते हैं।

## 19—मन को कैसे सयंमित करें?—

अपरा प्रकृति के छठे तत्त्व मन को संयमित करने के दो उपाय है, जिन्हें अभ्यास तथा वैराग्य कहा जाता है। इस दोनों का विधिवत् अवलोकन करें —

### 1—अभ्यास क्या है?—

मन बड.ा ही चंचल और प्रमथनशील कहा जाता है, तथा अनुभव में इसकी चंचलता तथा प्रमथनशीलता परखी जा सकती है। वह कहॉ विचरता है? ये तथ्य प्रत्येक मनुष्य जानता है। अर्थात् हमारा मन किन किन विषयों में घूम रहा है, विचर रहा है, ये हम जानते है। सांसारिक विषय, कामनायें तथा भोग असंख्य है। इस कारण मन के विचरण के कारण भी विषयानुसार असंख्य है। उन सभी को वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता सकता है कि जिन जिन कामनाओं में, भोगो में, विषयों में मन घूम रहा है उन उन से हटा कर हम उसे परमात्मा में लगावे। आप प्रमनथनशील मन को अपने इष्ट में भी लगा सकते हैं। मुख्य तथ्य ये हैं कि कामनाओं का, इन्द्रिय विषयों का चिन्तन हमें समाप्त करना पडे.गा। जिस प्रकार एक चंचल शिशु पुनः पुनः घर से बाहर भागने का प्रयास करता है और हम उस पर दृष्टि रख कर सुरक्षित स्थान में पकड. लाते हैं। वह यदि रोता है तो भी उसके रोने पर दृष्टि न रख कर उसे उसके हित के लिए पकड. कर घर में बन्द कर देते हैं। इसी प्रकार हम मन को सांसारिक विषयों से जबरदस्ती हटाकर परमात्मा में लगाते हैं।

मन तो पुनः पुनः भागता है और हमें उसे पुनः पुनः पकड. कर लाने की क्रिया करनी पडती है। आपने देखा होगा, अनुभव किया होगा कि मन इतना चंचल है कि वह एक ही पल में अनेक विषयों पर विचार कर डालता है। विचारों की नयी श्रृखंला निकलती जाती है और वो समाप्त नही होती। यदि विचारो कि श्रृखंला को हम स्वयं विराम न दे अर्थात् उसे न रोके तो वह जल के प्रवाह के भॅाति बहती जाती है। चलती जाती है। हमें उसे रोकने के लिए बन्धन देना पड.ता है। मन की चंचलता तथा प्रमथनशीलता को पुनः पुनः सांसारिक विषयों से हटा कर पुनः पुनः परमात्मा तथा अपने इष्ट में लगाने का कार्य ही अभ्यास कहलाता है। इसके नियन्त्रण अनुपालन से, सेवन से, अभ्यास में दृढ.ता से साधक परिपक्वता की ओर उन्मुख हो जाता है। अभ्यास के दृढ. हो जाने पर मन संयमित हो जाता है और हम अनावश्यक चिन्तन से बच जाते हैं।

**2– अभ्यास के कुछ सहज उपाय– क–** मन को निरूद्ध करने के अभ्यास के अनेक उपाय हो सकते हैं। कार्य, परिस्थिति , वातावरण की सुविधा के अनुसार साधक उन्हें अपनाता है, परन्तु प्रंसग वश सहज उपाय के सम्बन्ध मे चर्चा प्रस्तुत करना चाहॅूगा–

परमात्मा के नाम का जप, किसी मंत्र का जप वाणी से शान्तिपूर्वक करना चाहिए। उस नाम जप अथवा मन को वाणी से कहने पर उसकी लिपि पर ध्यान रखा जा सकता है। वाणी से मंत्र जप तथा मन को लिपि पर रखने से धीरे धीरे चंचल मन स्थिर होने लगता है। परमात्मा चॅूकि हमारे ह्रदय में रहता है, इस कारण वह हमारे द्वारा वाणी से किये गये मंत्र जप को सुनता है। जैसे हम किसी व्यक्ति को पुकारने के लिए आवाज देते हैं, तो वह अपने नाम का सम्बोधन सुन कर अपना सम्बन्ध जान कर हमारी ओर आकर्षित हो जाता है। वाणी से नाम जप की महिमा इसी कारण है। वैसे तो परमात्मा सबका मित्र है। सबके प्रति समभाव वाला है परन्तु जो उसे पुनः पुनः पुकारता है, वह उसकी ओर निश्चित रूप से आकर्षित हो जाता है। पुकारने वाले कि आवाज सुनता है। उसकी प्रार्थना स्वीकार करता है।जिस मंत्र का जप करें उसकी लिपि पर मन को संलग्न किया जा सकता है।

**ख–**मनुष्य में पॅाच ज्ञानेन्द्रियॅा हैं जिन्हें कर्ण, नेत्र, जिह्वा, नासिका तथा त्वचा कहा जाता है। कर्ण अर्थात् कान का गुण शब्द है। जिह्वा अर्थात् जीभ का विषय रस है। नेत्र अर्थात् आखों का विषय रूप है। त्वचा का विषय स्पर्श है और नासिका का विषय गन्ध है। जैसे हम आखों से किसी मनोहारी दृश्य को देखते हैं तो मन भी

वहॉ जाता है। दृश्य को देखने तथा मन के वहॉ पहुचनें में एक सेकेण्ड का अन्तर रहता है। इस अन्तराल को हम तत्काल कह सकते हैं। मनोहारी दृश्य हम देखते हैं तो हमारा  मन भी वहॉ जाता है। अर्थात् मन का सहयोग रहता है। इस प्रकार मन भी आखों के साथ मनोहारी दृश्य का आनन्द लेता है। प्रत्येक  ज्ञानेन्द्रिय के विषय में मन साथ रहता है। इन्द्रिय विषयों में फंसा मन अनियन्त्रित हो जाता है और असंयमित आचरण करता है। इन्द्रिय विषयों में मन जब फंस जाता है तो उसकी स्थिति पूर्णरूप से असंयमित हो जाती है। ऐसी स्थिति में मन की गति इन्द्रिय विषयों के सहारे हो जाती है। ये मन का असंयमन और अनियन्त्रण है। मन को यदि अभ्यास से नियन्त्रित करना है तो हमें विषयों से पृथक् करने का अभ्यास करना चाहिए। स्पष्ट तथ्य ये है कि जब तक इन्द्रिय विषय नियंत्रित नहीं किये जायेगें जब तक हमारा मन अनियन्त्रित रहेगा। इस प्रकार इन्द्रिय विषयों के नियंत्रण से भी मन नियन्त्रित हो जाता है।

**ग–** मनुष्य में श्वांस प्रश्वांस अर्थात प्राण वायु का अंदर जाना और बाहर आना एक स्वतः एवं स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया निरंतर गतिशील रहती है। तीनों अवस्थाओं अर्थात जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति काल में इस क्रिया का कभी समापन नहीं होता। जागृत अवस्था में हम इसका अनुभव कर सकते हैं। श्वासं प्रश्वांस शरीर की चेतनता का आधार माना जाता है और इससे मन को नियंत्रित किया जा सकता है। श्वांस प्रश्वांस की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए हम ये कहना चाहेंगे कि यदि आप सोना चाहते है ंतो श्वांस प्रश्वांस की गति के साथ मन को संलग्न कर दें। पांच से दस मिनट के अंतराल में आपको प्रगाढ़ निद्रा आ जाएगी और आप तत्काल सो जाएंगे। इस प्रक्रिया में आपका मन श्वांस प्रश्वांस की गति से हटना नहीं चाहिए।

बहुत से साधक मन को श्वांस प्रश्वांस की गति पर रोके रखने के लिए संख्या अर्थात गिनती का सहारा लेते हैं। जैसे श्वांस के बाहर आने पर एक और श्वांस के अंदर जाने पर दो कहते हैं। इसी क्रम में गिनती बढ़ती जाती है। यदि आपने मन को श्वांस प्रश्वांस की गति पर स्थापित कर दिया है तो आप सौ की गिनती के पूर्व ही सो जाएंगे। बहुत से साधक पचास–साठ की गिनती के पहले सो जाते हैं। इस प्रकार मन को नियंत्रित करने के लिए श्वांस प्रश्वांस भी एक विशिष्ट साधन है जिसकी गति पर हमें मन को लगाना पड़ता है। इस साधन से भी मन नियंत्रित हो जाता है। इस प्रकार के साधन के कई अन्य लाभ भी हैं। जैसे शरीर में आलस्य और प्रमाद को हटा देना। उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करना तथा सिरदर्द

का समापन आदि भी इस क्रिया से संयमित किए जाते हैं। श्वांस परश्वांस की गति पर मन लगाकर साधक को मन के नियंत्रण का प्रयास करना चाहिए। इससे शारीरिक और आत्मिक दोनों ही लाभ होते हैं।

**3–वैराग्य से मन का नियंत्रण होता है–**

इस जगत की प्रत्येक वस्तु नाशवान, परिवर्तनशील है जो आज है वो कल नहीं रहेगी। ये निश्चित तथ्य है। नित्य परिवर्तन का नियम प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु पर लागू होता है। जब प्रत्येक वस्तु नाशवान है,तो इससे मोह करना और इससे अपने कल्याण की अपेक्षा करना त्रुटिपूर्ण है। ये निश्चित नियम है। हमारा भटकाव, हमारी शान्ति तभी होती है जब हम अनित्य और नाशवान वस्तुओं को नित्य और अविनाशी समझ कर उनमे आसक्त हो जाते हैं। ये आसक्ति हमारी मनःस्थिति को बहुत ही गति प्रदान करती है। परमात्मा एक मात्र हमारा सुह्रद है। जगत में जो भी है, वह नाश वान है। ये समझ कर जगत में स्नेह और सम्बन्ध का त्याग करना तथा परमात्मा से स्नेह करके उससे सम्बन्ध जोड. लेना ही वैराग्य कहा जाता है। वैराग्य की प्रकिया में हम जगत की सत्ता को निष्क्रिय मानकर उसे नकारते हैं। उससे सम्बन्ध तोड.ते हैं। संसार की सत्ता से सम्बन्ध तोडने से मन की चंचलता स्वतः समाप्त होती है। चूँकि मन की चंचलता का प्रमुख कारण ही जगत की सत्ता से संर्पक ररखना है। जगत की वस्तुओं से तथा मनुष्यों से जो आसक्तिपूर्ण स्नेह है, जिसमें हम सुख की आशा करते हैं वही हमारे मन को चंचल करता है। इसके प्रतिकूल कार्य करने से मन नियन्त्रित हो जाता है। इस कारण वैराग्य से भी मन धीरे धीरे नियन्त्रित होकर परमात्मा का आश्रय ग्रहण कर लेता है।

## 20– अपरा प्रकृति का सातवां तत्त्व बुद्धि–

परमात्मा की अपरा प्रकृति का सातवां तत्त्व बुद्धि है। मन तो विलक्षण तत्व है पर बुद्धि अत्यन्त विलक्षण तत्त्व है। परमात्मा द्वारा मानव को प्रदान की गई ये शक्ति मन को नियन्त्रित करने, मन की स्थिति जानने और निश्चयात्मक कार्य के रूप में प्रस्तुत है। प्रमुखता से बुद्धि के विषय में ये कहा जाता है, कि मन की वृत्ति संकल्प है तो बुद्धि की वृत्ति विकल्प है । मन द्वारा संकल्पित कार्यों को बुद्धि निश्चय का आकार प्रदान करती है। इसकी विलक्षणता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वह मन के अत्यन्त अनियन्त्रित हो जाने पर उसकी चंचलता को समझ कर उसे नियन्त्रित कर सकती है। बुद्धि ये जानती है। कि मन क्या कर रहा है? मन इस समय कहॉ है? मन के चिन्तन के प्रकार को भी बुद्धि जानती है जब

तक किसी कार्य की स्वीकृति बुद्धि नहीं प्रदान करती जब तक मन स्वेच्छा से उस कार्य को नहीं कर सकता है। मन कार्य का प्रस्ताव बुद्धि को प्रेषित करता है तथा बुद्धि उस कार्य के प्रस्ताव का अनुमोदन करती है तभी कार्य सम्पन्न होता है। कार्य के प्रेषण तथा अनुमोदन की क्रिया सेकेण्डों में होती है। साधारणतया मन द्वारा प्रेषित प्रस्तावों को बुद्धि अपनी स्वीकृति प्रदान कर देती है। कभी कभी मन द्वारा प्रेषित प्रस्ताव बुद्धि के द्वारा निरस्त कर दिये जाते हैं तथा अनावश्यक प्रस्तावों के बारे में बुद्धि मन को डाटतीं भी है । जैसे हमारी आंखे किसी सुन्दर मिष्ठान को देखती है तो मन उसके स्वाद को स्मृति में लेकर उसके खाने का, ग्रहण करने का प्रस्ताव बुद्धि को भेजता है। बुद्धि जानती है कि उक्त मिष्ठान हमारे शरीर और स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है तो वह मन द्वारा प्रेषित प्रस्ताव को सिरे से नकार कर उस मिष्ठान से दूर रहने का आदेश देती है। इस स्थिति में मन को विवश होकर बुद्धि का आदेश मानना पड.ता है। मन कभी कभी पुनः पुनः मिष्ठान खाने का प्रस्ताव भेजता है। दृढ. बुद्धि वाला व्यक्ति उसे निरस्त करता रहता है, परन्तु कभी कभी बुद्धि पुनः पुनः प्रेषित प्रस्तावों को अनुमोदित भी कर देती है। इस प्रसंग से आपने बुद्धि के विलक्षणता को समझ लिया होगा।

**क– बुद्धि क्या कार्य करती है?–**

**1–** मन पूर्व घटनाओं के बारे में जो विचार करता है उस सम्बन्ध में बुद्धि उन घटनाओं की स्मृति को संज्ञान में ले लेती है। पूर्व घटनायें जो घटित हुई थीं जैसी थीं ,वैसी बुद्धि जानती है। पूर्व घटनाओं के बारे में मन जो कुछ भी विचार करता है। उसे मन को बता कर उसका निश्चय करती है। मन पूर्व घटनाओं के बारे में विचार करता रहता है और बुद्धि उन विचारों को देखती रहती है और अधिकाशंता उन विचारे हुये विषयों का अनुमोदन करती है।

**2–**मन वर्तमान समस्याओं पर विचार करता है तथा बुद्धि को इससे परिचित कराता है, तब बुद्धि उन समस्याओं को अपने संज्ञान में लेकर उनके हलीकरण पर विचार करती है। मन समस्यायें प्रस्तुत करता है और बुद्धि उन समस्याओं का विकल्प खोजने में निरन्तर कार्य करती है। जैसे मन ने ये विचार किया कि हमारे समक्ष आर्थिक समस्या है, तो इस समस्या का प्रस्ताव मन बुद्धि को प्रेषित करती है । बुद्धि वह मार्ग खोजती है जिसमे आर्थिक समस्याओं का हल हो सकता है। बुद्धि विकल्प खोजती है, जिससे मन द्वारा संकल्पित समस्या का हल हो सके। इस प्रकार समस्या प्रस्तुत करने तथा उसके निवारण खोजने का कार्य चलता रहता है।

**3**—मन भविष्य के बारे मे जो भी चिन्तन करता है उस पर बुद्धि भी विचार करके अपनी सहमति प्रकट करती है। मन का भविष्य के बारे में अनावश्यक चिन्तन जब बुद्धि को प्रतीत होता है तब बुद्धि उसे अस्वीकार करती जाती है। इसी क्रम में जो उचित प्रतीत होता है वह स्वीकार करती जाती है। मन पुनः पुनः प्रस्तावों की, विचारों की नयी संरचना करके उसे बुद्धि के समक्ष प्रस्तुत करता है। बुद्धि उसे पुनः स्वीकार अथवा अस्वीकार करती है। ये प्रक्रिया चला करती है। भविष्य की विषय वस्तु चूँकि काल्पनिक ही होती है इस कारण कल्पना जगत में बुद्धि भी मन के साथ विचरती है।

**4**— सांसारिक भोगों के विषय में मन जो भी चिन्तन करता हैं उसकी अधिकांश सहमति बुद्धि के द्वारा ही होती है। सहमति को आप संलग्नता भी कह सकते हैं। अर्थात् सांसारिक भोगों में सुख का अनुभव इन्द्रियॉ करती है उसके साथ ही मन भी सलंग्न हो कर मन भी भोगों में रत हो जाता है। बुद्धि भी इस स्थिति में उस सुख का अनुमोदन करके उसे शान्तिपूर्वक देखा करती है। भोगों में इस प्रकार इन्द्रियों और मन के साथ बुद्धि की भी संलग्नता रहती है। बुद्धि साधारणतया भोगों से इंकार नही करती है, परन्तु जब साधक का विवेक जाग्रत हो जाता है और भोगों की अनित्यतता को वह समझ जाता है तो वह इन्द्रियों ,मन को सांसारिक भोगों से पृथक् करती है। उसे बार—बार धिक्कारती है और फटकारती है। इस प्रकार सांसारिक भोगों पर नियंत्रण बुद्धि ही करती है ,और वह मन को संयमित करके भोगों से पृथक कर देती है।

**5**— किसी तात्कालिक घटना पर आदेश देना बुद्धि का विशिष्ट कार्य है ंजैसे हमारे सामने कोई हिंसक पशु आता प्रतीत होता है तो आखें उस हिंसक पशु को देख लेती है तथा रात्रि में कान उस हिसंक पशु की आवाज से जान लेते हैं और उसकी दूरी का अनुमान लगा लेते है। इस स्थिति में मन भी तत्काल उस हिंसक पशु के विषय में विचार करता है तथा बुद्धि निश्चय करती है कि उस हिसंक पशु से मुकाबला किया जाये अथवा भागा जाये। ये सब निश्चय करना बुद्धि का कार्य है। यदि बुद्धि हमें परिस्थिति का आंकलन करके मुकाबला करने का आदेश देती है तो हम मुकाबले के लिए तत्काल आवश्यक कार्यवाही कर लेते हैं। यदि बुद्धि परिस्थिति का आंकलन करके हमे भागने का आदेश देती है तो हम भाग लेते है। ये सब निश्चय सेकेण्डों में होता है।

बुद्धि का एक प्रमुख कार्य है किसी प्रश्न का तत्काल उत्तर प्रस्तुत करना आपने देखा होगा की जब किसी सभा में, न्यायालय में अथवा किस प्रतियोगिता में वाद विवाद होता है तो बुद्धि बहुत तेज गति से कार्य करती है। एक व्यक्ति जो तथ्य प्रस्तुत करता है कान उसे सुन कर उस तथ्य को मन को प्रेषित करते है। मन के माध्यम से ये तथ्य बुद्धि ग्रहण कर लेती है और तत्काल उसका उत्तर मन के माध्यम से वाणी से प्रस्तुत करने का आदेश देती है। मन जब किसी विषय पर वाणी के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत करता है तो बुद्धि ही तर्क का भी निश्चय तत्काल ही करती है। मन के माध्यम से वाणी में वह तथ्य जाता है और वाणी उसे पृथक् करती है ये सब प्रक्रिया सेकेण्डों में होती है। इस कारण हम इस तथ्य से बुद्धि की विशेषता का अनुमान लगा सकते हैं।

**ख–बुद्धि के विशिष्ट प्रकार–**

हम पूर्व मे ये कह चुके हैं कि परमात्मा द्धारा प्रदत्त बुद्धि मानव शरीर में एक अत्यन्त विशिष्ट तत्त्व है पर बुद्धि श्रेष्ठता की ओर कैसे उन्मूख हो? ये कार्य हमें करना पड.ता है। यदि हमने बुद्धि को साधना में लगा दिया तो वही बुद्धि विशिष्ट हो जाती है और यदि सांसारिक भोगों में लगा दिया तो वह बुद्धि मध्यम होकर निकृष्ट हो जाती है। इसलिए बुद्धि श्रेष्ठ रहे इस हेतु हमें साधना करनी पड.ती है। अन्यथा बुद्धि रूपी अति महत्वपूर्ण तत्त्व धूमिल हो जाता है और बुद्धि रूपी यह हीरा साधारण शीशे के टुकडे. में परिवर्तित होकर निकृष्ट हो जाता है। बुद्धि को हम तीन प्रकारों में बांट सकते है–

**1.श्रेष्ठ अथवा उत्तम बुद्धि 2.मध्यम बुद्धि 3.निकृष्ट बुद्धि ।**

इन तीनों प्रकार की बुद्धि के पृथक् पृथक् कार्य हैं तथा उनकी अलग अलग स्थिति है। उक्त तीनों प्रकार की बुद्धि का विवरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर रहे हैं–

**1. श्रेंष्ठ अथवा उत्तम बुद्धि–** इस प्रकार की बुद्धि निम्न विशेषतायें होती हैं–

**क– कर्म तथा अकर्म के विषय को जानती है –**

श्रेष्ठ बुद्धि कर्म क्या है? और अकर्म क्या है? इसमें क्या अन्तर है? इस तथ्य को जानती है। कर्म और अकर्म के अन्तर को साधारण व्यक्ति नहीं जान सकता है। शास्त्र के अनुकूल कार्यों को कर्म कहा जाता है और शास्त्र के प्रतिकूल कार्यों को विकर्म कहा जाता है। श्रेष्ठ बुद्धि इस तथ्य को शास्त्र के अध्ययन से, साधुजनों से

और विद्वान मनुष्यों की संगत से तथा उनके द्वारा दिये गये उपदेशों से दोनों के अन्तर को जान जाती है । लोग शास्त्रों का निरन्तर अध्ययन करते हैं और निरन्तर प्रयास करते हैं कि हमे उचित और अनुचित का ज्ञान हो जाये। बुद्धि का इस ज्ञान के प्रति जिज्ञासा का होना विशिष्ट बुद्धि का आरम्भिक लक्षण है। प्रयत्न के द्धारा मनुष्य ये जान जाता है कि कर्म क्या है और विकर्म क्या है? इसमें इन दोनों में अन्तर क्या है? तो ऐसे मनुष्य की बुद्धि श्रेष्ठ हो जाती है और उसे उत्तम बुद्धि कहा जाता है।

**ख– कर्तव्य और अकर्तव्य को सयक्रूपेण जानती है–**

श्रेष्ठ बुद्धि अपनी स्थिति, आश्रम, पद के अनुकूल हमें क्या करना है? क्या नहीं करना है? ये तथ्य जानती है। मनुष्य जब अपने वर्ण, आश्रम के अनुसार अपने कर्तव्य को जान जाता है तो वह अकर्तव्य से पृथक् रहना चाहता है। उससे दूर रहना चाहता है। हटना चाहता है। कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान ही न हो तो कर्तव्य और अकर्तव्य के अन्तर को मनुष्य जान नहीं पाता है और उसका आचरण व्यवहार कैसे कर सकता है? इस कारण श्रेष्ठ बुद्धि क्या करणीय है क्या अकरणीय है? इस तथ्य से भली प्रकार परिचित हो जाती है। कर्तव्य कर्म के आचरण से मनुष्य का कल्याण हो सकता है और अकर्तव्य के व्यवहार से मनुष्य पतित हो जाता है। अपने श्रेय साधन से गिर कर बहुत दुख भोगता है। इस कारण श्रेष्ठ बुद्धि वही है जो कर्तव्य कर्म और अकर्तव्य कर्म को यथावत् जानकर कर्तव्य कर्म का आचरण करने को प्रेरित करती है और अकर्तव्य कर्म की आचरण से दूर कर देती है। साधारणतया मनुष्य जब संकट में होता है तो वह अपने कर्तव्य कर्म को भूल जाता है और अकर्तव्य कर्म के आचरण को उद्धत होता है। इसके अतिरिक्त भोगवृत्ति के कारण भी मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान से भटक कर दुष्कर्मों का अनुगामी हो जाता है। इस कारण वह बुद्धि श्रेष्ठ है जो कर्तव्य तथा अकर्तव्य को यथावत् जानती है।

**ग– भय और अभय को यथावत् जानती है–** अभय विशिष्ट लोगों का लक्षण है। भयभीत रहना निकृष्ट लोगों लक्षण है। मनुष्य भयभीत क्यों होता है? और भयहीनकैसे होता है? ये जानना परम् आवश्यक है। हम जब अनैतिक, आसामाजिक दुष्कर्मो का प्रतिपादन करते हैं तो अन्तःकरण में स्वाभविक रूप से भय रहता है कि इसका दुष्परिणाम अवश्य होगा। चाहें जितने ही शक्तिशाली व्यक्ति क्यों न हो ?उसे दुष्कर्म करने में भय होता है। ये अन्तःकरण की स्वाभविक वृत्ति है ,जो मनुष्य

अनैतिक कार्य नहीं करता तो दुष्कर्मों के आचरण न करने के कारण उसे नैतिक बल प्राप्त होता है और वह भयहीन रहता है। इस तथ्य को अर्थात् भय को अभय को जो मनुष्य जानता है उसकी बुद्धि तेज हो जाती है। भयहीन मनुष्य की बुद्धि में सम्यक् विनिश्चय रूपी कर्म स्वतः प्रकट होता है। वह ठीक ठीक रूप से बुद्धि को प्रयुक्त करता है। इस प्रकार भय युक्त मनुष्य की बुद्धि ठीक प्रकार से कर्म का निश्चय नहीं कर पाती है। अतएव भय और अभय को जानने वाली श्रेष्ठ कहलाती है।

**घ– बन्धन और मोक्ष को जानती है–** मनुष्य शरीर में बन्धन किस प्रकार होता है? और मोक्ष अर्थात् मुक्ति कैसे प्राप्ति होती है? ये तथ्य श्रेष्ठ बुद्धि जान लेती है। साधारणतया व्यक्ति सांसारिक प्रपंचों में फंस जाता है और सांसारिक प्रपंचों में फंस कर बन्धन को प्राप्त हो जाता है। बन्धन का अभिप्राय है कि मनुष्य पुनः मुत्यु और पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। मुक्ति कैसे प्राप्त होती है? इस तथ्य को जो मनुष्य जान जाता है उसकी बुद्धि श्रेष्ठ कहलाती है। मुक्ति के लिए हमें क्या आचरण करने चाहिए? और मुक्ति के लिए क्या मार्ग है? इस तथ्य को सहजता से नहीं जाना जा सकता है। इसको जानने के लिए ब्रह्मविद्या के ग्रन्थों का अध्ययन करना पड.ता है। अध्ययन करके संशय से निवृत होना पड.ता है। मुक्ति के मार्ग के ज्ञान में अर्थात् उसके जानने में संशय का रहना ही सबसे घातक है। श्रेष्ठ बुद्धि मुक्ति के मार्ग के ज्ञान को संशय रहित जान जाती है। मुक्ति के मार्ग को जानने के कारण ही उसे श्रेष्ठ कहा जाता है।

**2– मध्यम बुद्धि–** मध्यम बुद्धि में तीन तथ्य प्रमुखता से रहते हैं। उसमे श्रेष्ठता का अभाव हो जाता है इस कारण उसे मध्यम कहा जाता है मध्यम बुद्धि तीन तथ्यों को नहीं जानती है। वे निम्न प्रकार से है–

**क– धर्म तथा अधर्म को यथावत् नहीं जानती–**जो बुद्धि धर्म क्या है? और अधर्म क्या है? उसे ठीक ठीक नहीं जानती है, उसे मध्यम बुद्धि कहा जाता है। वस्तुतः धर्म क्या है? इस तथ्य को सामान्य व्यक्ति नहीं जान पाता है। मनुष्य को इस जगत् में अनायास ही उत्पन्न नहीं किया गया है। उसका लक्ष्य है, अर्थात् मानव जीवन का एक निश्चित उद्देश्य है इस उद्देश्य को धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष कहा जाता हैं। इन चारों उद्देश्यों में पहला उद्देश्य धर्म है, अर्थात् सर्वप्रथम मनुष्य को धर्म का ज्ञान होना चाहिए और दूसरे धर्म के आचरण और उसके व्यवहार का ज्ञान होना एक प्रमुख तथ्य है।

यदि धर्म का तथ्य प्रमुख न होता तो धर्म शब्द को पहले नहीं कहा जाता। धर्म को जीवन के उद्देश्य से जोड.ने के पीछे विशिष्ट तथ्य है कि हम धर्म को जानें तथा आचरण करें। जो बुद्धि मनुष्य जीवन के इस प्रथम सोपान धर्म को तथा उसके प्रतिकूल अधर्म को नहीं जान पाती है तो बुद्धि मध्यम श्रेणी की होती है। ऐसी बुद्धि के मनुष्य संसार में भोग वृत्ति में संलग्न रहते हैं। उनके लिए सांसारिक भोग ही सब कुछ हैं। सांसारिकता में रहकर उनका जीवन समाप्त हो जाता है। ऐसे लोगों को आलसी पुरूष कहा जाता है।

**ख– कार्य और अकार्य को यथावत् नहीं जानती–** मध्यम श्रेणी की बुद्धि कार्य और अकार्य के अन्तर को नहीं जानती। मनुष्य जब कार्य और अकार्य के अन्तर को जान जाता है तो वह कार्य का व्यवहार एवं आचरण करता है तथा अकार्य को त्याग देता है। मनुष्य जीवन में कर्म ही आधारभूत तथ्य है। बाल्यावस्था से आरम्भ होकर वृद्धावस्था तक हम कार्य करते हैं। जिस कर्म को हम करते है उसके बारे में ये हमें ये जानना आवश्यक है उक्त कर्म करना हमे यथेष्ट है अथवा नहीं। अधिकतर लोग साधारणतया अकार्य को कार्य समझ कर ही करते रहते है जिससे उन्हें भविष्य में बडी कठिनाईयां होती हैं। इस प्रकार जो बुद्धि कार्य और अकार्य के अन्तर को नहीं जानती वह मध्यम बुद्धि कही जाती है।

**ग– कर्तव्य और अकर्तव्य को सम्यक्रूपेण नहीं जानती**– मनुष्य अपने कर्तव्य और अकर्तव्य के विषय में संशयग्रस्त रहता है। हमें किस कार्य का प्रतिपादन करना चाहिए? और किसका नहीं करना चाहिए? इसमें संदेह रहना ही मध्यम बुद्धि का प्रमुख लक्षण है। पूर्व में ये कहा जा चुका है कि प्रत्येक मनुष्य के वर्ण और आश्रम के अनुकूल ही आचरण होते हैं जिनका आचारण का यथेष्ट होता है। कर्तव्य कर्मों को समयक्रूपेण निष्पादित न करने से हमें पाप लगता है जिसका परिणाम दुख के रूप में हमारे सम्मुख आ जाता है।

कर्तव्य को अकर्तव्य समझ कर करना ही पाप के उदय होने का कारण है। हमारे जो कर्तव्य कर्म है उन्हें ठीक समझकर हमें करना चाहिए और जो हमें नहीं करना है वही हमारे अकर्तव्य कर्म हैं। इसका भी ज्ञान हमें होना चाहिए। जो बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान से पृथक् रहती है वह मध्यम बुद्धि कहलाती है। एक उदाहरण है कि आज के समाज में और व्यवहार में,परिवार में विघटन है। भाई भाई, पिता–पुत्र, पति–पत्नी तक में सामंजस्यता नहीं है। इस कारण से परिवारों में बिखराव है। यदि हमारा पिता दुखी है तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसे सुख दें

और उसकी सेवा करें। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम अपना कर्तव्य सम्यक् रूप से नही कर रहे हैं।

ये स्थिति हमें पाप का अनुगामी बनाती है। वैसे ही एक भाई सुखी है, सम्पन्न हैं और दूसरे भाई असम्पन्न हैं। दुखी हैं। उसकी यथोचित सहायता करना हमारा धर्म है ये कर्तव्य यदि हम नहीं करते हैं तो हम दुख के भागी होंगे। इस प्रकार की बुद्धि को मध्यमवर्गीय बुद्धि कहा जाता है। ये बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य के अन्तर को सम्यक् रूप से नहीं जानती है।

**3–निकृष्ट बुद्धि**–निकृष्ट बुद्धि के दो प्रमुख लक्षण हैं। 1–निकृष्ट बुद्धि अधर्म को धर्म मानती है। 2–समस्त तथ्यों का प्रतिकूल अर्थ निकालती है। दोनों की विवेचना निम्न प्रकार है।

**क– अधर्म को धर्म समझती है–** जो हमारे कर्तव्य कर्म हैं उनका शास्त्रों में उल्लेख किया गया है तथा श्रुति जिन कर्मों को धर्म बताती है उन कर्मों का प्रतिपादन किया जाना धर्माचरण कहा जाता है। उसके प्रतिकूल कार्यों को अधर्म के नाम से जाना जाता है। निकृष्ट बुद्धि को श्रुति सिद्धान्त का ज्ञान नहीं होता इस कारण वह जो प्रतिकूल कार्य करता है उसे ही उचित मानता है। अधर्मसंगत कर्मो को धर्मसंगत समझता है। जैसे हिंसा करना अनुचित और अधर्म है, परन्तु निकृष्ट बुद्धि हिंसा को धर्म समझकर इसका निष्पादन करती है। इसी प्रकार मद्यपान करना धर्म संगत नहीं है पर निकृष्ट बुद्धि उसे धर्म संगत बताकर उसका सेवन करता है, और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करता है। इस कार्य से स्वयं तो वह अकल्याण के पथ का अनुगाामी हो जाता है और अपनी निकृष्ट बुद्धि के कारण दूसरों को भी उस अधार्मिक कार्य पर चला कर दोहरा पाप कमाता है। निकृष्ट बुद्धि का प्रमुख लक्षण है अधर्म को धर्म समझ लेना। जो श्रुति के सिद्धान्त तथा शास्त्रों के वचनों को नहीं मानता और उसके प्रतिकूल कर्म करता है उसे निश्चित ही निकृष्ट बुद्धि वाला ही समझना चाहिए। ऐसे निकृष्ट बुद्धि के लोगों का निश्चितरूपेण पतन हो जाता है।

**ख– समस्त तथ्यों का प्रतिकूल अर्थ निकालती है–** निकृष्ट बुद्धि से युक्त व्यक्ति संशयग्रस्त रहता है। संशयग्रस्तता इसका प्रमुख अवगुण है । किसी भी तथ्य का प्रतिकूल अर्थ निकाल लेना उसका कार्य है। निकृष्ट बुद्धि प्रतिकूल अर्थ तो निकालती ही है साथ ही किसी अधार्मिक कार्य के सम्पादन का विकल्प भी खोजती है। यदि ऐसे व्यक्ति शास्त्रों का अध्ययन भी करते हैं तो भी शास्त्रों के अर्थो में उसके विषयों में भोगवादी विषय के बारे में बार–बार विचार करके उसका प्रतिकूल

अर्थ निकालते हैं और अपने जीवन में उसे ग्रहण भी कर लेते हैं। एक तो निकृष्ट बुद्धि वाले मनुष्य शास्त्रों का अध्ययन नहीं करते हैं और यदि उन्हें कोई शास्त्रों के बारे में, धर्म संगत नियमों के बारे में कुछ बताता है तो उसकी उपेक्षा करके उसके गलत अर्थ का सम्पादन करते हैं। जैसे मद्यपान करने वाले ये कहते हैं कि शास्त्रों में सोमपान का विषय आता है। सोम को मदिरा का ही रूप कहा जाता है। आयुर्वेद में भी मद्यपान व मदिरा के प्रकारों का उल्लेख आता है । इस कारण वे उस विषय को अपने हितार्थ समझकर अनुचित अर्थ लेकर उसका पालन करते है। ऐसे कई प्रसंग है जिनका उल्लेख निकृष्ट बुद्धि वाले करते हैं। कथन का अभिप्राय है कि उचित तर्कसंगत, तथ्यपूर्ण विषयों को अनुचित रूप से अतार्किक विधि के रूप में प्रस्तुत करना निकृष्ट बुद्धि का लक्षण है।

## 21–शरीर के तीन प्रकार और उनमें बुद्धि की स्थिति–

पूर्व में भी यह कहा जा चुका है कि शरीर के तीन प्रकार हैं– 1. स्थूल शरीर 2. सूक्ष्म शरीर 3. कारण शरीर। इस प्रकार तीन अवस्थाएं हैं– 1. जाग्रत अवस्था 2. स्वप्नावस्था 3. सुषुप्तिवस्था। स्थूल शरीर का संबंध जाग्रत अवस्था से है, सूक्ष्म का स्वप्नावस्था से है और कारण शरीर का संबंध सुषुप्तिवस्था से है। शरीर के इन प्रकारों तथा अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है। बुद्धि की तथा मन की इन तीन शरीरों के प्रकारों तथा अवस्थाओं में क्या स्थिति है? इसके स्पष्टीकरण हेतु ये प्रकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

**1– स्थूल शरीर–** मानव शरीर में सात धातुएं होती है जिन्हें– 1. मज्जा 2. अस्थि . मेद 4. मांस 5.रक्त 6.चर्म तथा 7. त्वचा कहते हैं। इन सात धातुओं का विस्तृत विवरण आयुर्वेद ग्रन्थों में आता है। मानव शरीर के निर्माण में उक्त सात धातुओं का आधारभूत कार्य है । मानव शरीर हमें हाथ, पैर, उदर, पीठ, मुख, ग्रीवा, मस्तक के रूप में प्रतीत होता है। ऊपर से दिखने वाला ये मानव शरीर हमें ऑखों से प्रतीत होता है और जो शरीर प्रतीत होता है अर्थात् दिखाई पड़ता है उसे स्थूल शरीर कहा जाता है। इस शरीर के निर्माण के आधारभूत तत्त्व हैं– आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी। इन्हे पंचमहाभूत कहा जाता है। इन पंचमहाभूतों के भागों के आपसी संयोंग से ये स्थूल शरीर बनता है। उक्त पंच महाभूतों की तन्मात्राएं क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध हैं। ये तन्मात्राएं ही ज्ञानेन्द्रियों के विषय हो जाते है। ये इस कारण है क्योंकि पंचमहाभूतों से ही शरीर निर्मित होता है ।

स्थूल शरीर जो हमें प्रतीत होता है उसमें कर्मेन्द्रियॉ तथा ज्ञानेन्द्रियॉ हमें दिखाई पड़ती हैं हम उन्हें स्पष्टरूप से देख सकते है। मन, बुद्धि, अहंकार प्रतीत तो नहीं होता वह अव्यक्त रहता है। अव्यक्त रहकर भी उसका आभास किया जा सकता है। इन्द्रियों के परे मन है और मन के परे बुद्धि है। मन इन्द्रियों का स्वामी है तथा बुद्धि से मन को नियंत्रित किया जाता है इस कारण बुद्धि को मन का स्वामी जानना चाहिए। इस प्रकार जाग्रत अवस्था में बुद्धि की प्रतीति होती है। बुद्धि मन को जानती है तथा इसको नियंत्रित भी कर सकती है। इस प्रकार जाग्रत अवस्था में बुद्धि पूर्णरूपेण सजग रहकर मन को नियंत्रित रखती है तथा पल–प्रतिपल किये जा रहे मानव कार्यों में सहयोग करती है। बुद्धि जाग्रत अवस्था में विशिष्ट तत्त्व है जिस पर मनुष्य का सम्पूर्ण कार्य भी आधारित है। बुद्धि की जो शक्ति मानव जीवन के कार्यों को सुचारूरूप से सम्पादित करती है उसे विवेक कहा जाता है। यही बुद्धि की शक्ति विवेक जब विकृत हो जाती है तब मानव असामाजिक कार्यों को स्वतः ही प्रवृत्त हो जाता है और समाज उसे कहता है कि मनुष्य विवेकहीन हो गया।

जागृत अवस्था में इस प्रकार आप बुद्धि की महत्ता को समझ गये होगें। इस संबंध में ये तथ्य स्पष्ट कहना चाहूँगा की जाग्रत अवस्था में बुद्धि के बिना मनुष्य कोई भी कार्य सम्पादित नहीं कर सकता है। उसका सम्पूर्ण कार्य ही बुद्धि की क्रियाशीलता पर आधारित है। मानव जो भी करना चाहता है उसमें बुद्धि की स्वीकृति होती है, उसकी स्वीकृति के बिना कोई कर्म नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रत्येक कार्य के लिए बुद्धि की स्वीकृति तथा उसके दिशा निर्देश की आवश्यकता होती है। जैसे हम किसी स्थान पर जाते हैं तो पथ का विनिश्चय बुद्धि ही करती है। ये मार्ग सही है ऐसा बुद्धि ही बताती है। इसी प्रकार किसी भी कार्य के सम्पादन में बुद्धि ही पथ प्रदर्शक का कार्य करती है। जागृत अवस्था में बुद्धि की क्रियाशीलता और उसके अस्तित्त्व को स्वीकार किया जा सकता है।

**2– सूक्ष्म शरीर–** मानव शरीर का दूसरा प्रकार सूक्ष्म शरीर है। ये स्वप्नावस्था में प्रतीत होता है, भासता है। इस शरीर में निम्न तत्त्व होते हैं–

**1. मन 2. बुद्धि 3. अहंकार (पांच कर्मेन्द्रिया ) 4.वाक् 5. हस्त 6.पाद 7.उपस्थ 8.पायु (पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ) 9.कर्ण 10. नेत्र 11.जिह्वा 12. त्वचा 13.नासिका (पंच महाभूत) 14. आकाश 15. अग्नि 16. जल 17. वायु 18 पृथ्वी (पंच प्राण)–19 प्राण 20. अपान 21.उदान 22. ब्यान 23. समान 24 अज्ञान** जो भासता है पर वस्तुतः नहीं

होता तथा 25.कर्म जो होता प्रतीत हेाता है पर वस्तुतः नहीं होता। चित्त को भी विद्वान लोग इसी शरीर का अंश मानते है। क्योंकि स्वप्नावस्था में चिंतन का अर्थात् ये कार्य उचित है अथवा अनुचित है ऐसा चिंतन हो जाता है।उसी चिंतन के अनुकूल मनुष्य स्वप्नावस्था में कार्य भी करने लगता है, ऐसा प्रतीत होता है

स्वप्नावस्था में बुद्धि जाग्रत अवस्था की भॉति कार्य करती है। जब आप स्वप्नावस्था के कार्य होने का, आभास होने का अनुभव करें तथा उस पर विचार करें। स्वप्नावस्था के संबंध में निम्न तथ्य प्रस्तुत हैं जो विचारणीय है–

**क–** पैरों से चलने का कार्य होता है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि हम जाग्रत अवस्था की भॉति अनुगमन कर रहे हैं । पैरों से चलने की क्रिया तथा भयभीत होकर पैरों द्वारा भागने की क्रिया होती है। इस कारण पाद नामक कर्मेन्द्रिय कार्य कर रही है, ऐसा स्पष्ट है। स्वप्नावस्था में पैर कार्य करते हैं।

**ख–** पैरों की तरह हाथ भी स्वप्नावस्था में कार्य करते हुए प्रतीत होते हैं। हम जो जाग्रत अवस्था में हाथों से कार्य करते हैं, वैसा ही स्वप्नावस्था में भी कार्य करते हुए प्रतीत होते हैं। इस कारण हस्तरूपी कर्मेन्द्रिय भी स्वप्नावस्था में कार्य करती है ऐसा आभास होती है।

**ग–** वाक् नामक कर्मेन्द्रिय भी स्वप्नावस्था में जाग्रत अवस्था की भॉति ही कार्य करती है। हम बोलते हैं, बातचीत करते हैं, भयभीत होने पर चीखते हैं। सोते हुए व्यक्ति अचानक कुछ कहने, चीखने लगता है। ये स्वप्नावस्था में जो हमें प्रतीत हो रहा है वैसा हम वाणी से कहते हैं। अधिकांशतः तो वाणी शांत रूप से रहती है कभी–कभी वाकेन्द्रिय स्वप्न की बात–चीत को प्रकट कर देती है। इससे स्पष्ट है कि स्वप्नावस्था में वाकेन्द्रिय भी कार्य करती है और शेष कर्मेन्द्रियॉ भी अपने–अपने गुणों के अनुरूप कार्य करती हैं।

**घ–** स्वप्नावस्था में कर्मेन्द्रियों की तरह ज्ञानेन्द्रियॉ भी कार्य करती हैं। कानरूपी ज्ञानेन्द्रिय से घटनाओं का और बातचीत का स्पष्ट श्रवण होता है। जो घटनाएं होती हैं उनके शब्द हमें स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ते हैं। शब्दों को सुनकर ही हम स्वप्नावस्था में कार्यो का सम्पादन करते है, अर्थात् बातचीत से उसका स्पष्ट उत्तर देते है। इस प्रकार श्रवणेन्द्रिय भी स्वप्नावस्था में कार्य करती है।

**ड़–** स्वप्नावस्था की विलक्षण प्रतीति है देखना। नेत्र बहुत स्पष्ट रूप से वैसा ही देखते है, जैसा हम जाग्रतवस्था में देख सकते हैं। स्वप्नावस्था में ऑखें दूर की

वस्तुओं को भी देख लेती है। नेत्र का कार्य जाग्रत अवस्था से कम स्वप्नावस्था में नहीं होता है। वातावारण, परिस्थिति, घटनाओं के आधार पर नेत्र कार्य करते है। वैसे ही कार्य करते हैं, वैसी ही प्रतीति होती है जैसी जाग्रतवस्था में होती है।

**च–** हम जाग्रत अवस्था में भोजन करते हैं, वैसा ही भोजन करने का आभास हमें स्वप्नावस्था में भी होता है। स्वाद का भी अनुभव हमारी जिह्वा उसी प्रकार कर लेती है जैसी जाग्रत अवस्था में करती है। एक विशेष बात ये है कि भोजन आरम्भ करने का भूख के समाप्त होने का और भोजन के समापन के कार्य की प्रतीति भी स्वप्नावस्था में जाग्रत अवस्था की भॉति होती है।

**छ–** त्वचा से स्पर्श का आभास होता है, क्योंकि स्पर्श ही त्वचा का गुण है। मुलायम वस्तु, कठोर वस्तु, गर्म और ठण्डी वस्तुओं का और वातावरण का आभास हमें त्वचा कराती है। जाग्रत अवस्था की तरह स्वप्नावस्था में भी त्वचा वैसा ही कार्य करती हौ और उसी प्रकार तरह से वस्तुओं के गुणों का आभास करती है जैसा की जाग्रत में करती है।

**ज–** जाग्रत अवस्था जैसी गन्ध का आभास हमारी नासिका करती हैं वैसी ही गंध का आभास हमारी नासिका स्वप्नावस्था में भी कर लेती है। इस गंध के अनुभव में अंतर की प्रतीति हमें नहीं होती है। फूलों अथवा सुगन्धित द्रव्यों की गंध का आभास करके प्रशंसा का स्पष्ट अनुभव करना स्वप्नावस्था का विलक्षण कार्य है।

**झ–** स्वप्नावस्था में पंच महाभूतों अर्थात् आकाश, अग्नि, जल, वायु तथा पृथ्वी की प्रतीति वैसी ही होती है जैसी जाग्रत अवस्था में होती है। स्वप्नावस्था में आकाश प्रतीत होता है तथा उसकी तन्मात्रा शब्द का अनुभव रहता है। अग्नि का आभास और उसकी तन्मात्रा रूप का आभास रहता है। इसी प्रकार जल की तन्मात्रा रस का आभास रहता हैं और उसके ग्रहण कर लेने से पिपाशा का भी अंत हो जाता है। इस प्रकार हम जाग्रत अवस्था की तरह स्वप्नावस्था में भी शब्द रूप रस का आभास करते हैं। वायु के झकोरों तथा उसकी तन्मात्रा स्पर्श का अनुभव स्पष्ट रूप से हमें स्वप्नावस्था में होता हैं। पृथ्वी पर चलने का आभास तथा उसकी तन्मात्रा गंध का आभास भी हमें स्वप्नावस्था में होता है। पूर्व में यह वर्णित किया जा चुका है कि पंच महाभूतों के मिश्रण से ही इस शरीर का निर्माण होता है और स्थूल और सूक्ष्म शरीर में सहधर्मिता होने के कारण पंच महाभूतों की वैसी प्रतीति स्वप्नावस्था में भी होती है जैसी की जाग्रत अवस्था में होती है। यह विशेष बात है कि पंच महाभूतों से निर्मित पदार्थ भी दोनों अवस्थाओं में एक समान ही प्रतीत होते हैं।

**ट– मानव शरीर में मुख्य प्राण पांच प्रकार के होते हैं** – जिन्हें प्राण, अपान, उदान, ब्यान, समान कहा जाता है। प्रत्येक का पृथक्–पृथक् कार्य और स्थिति है। उपरोक्त पंच प्राण स्वप्नावस्था में भी प्रतीत होते हैं। जैसे हम स्वप्नावस्था में ये अनुभव करते हैं कि हम जीवित हैं और हमारी प्राणवायु निरंतर अबाध और अविरल गति से चल रही है। उक्त वायु का और उसकी क्रियाविधि का आभास हमें होता रहता है। यहॉ पर एक तथ्य प्रसंगवश कह देना आवश्यक हैं कि प्राण के छः प्रकार के धर्म है जिनका जाग्रत अवस्था में हम आभास करते हैं। ये धर्म हैं–

**1. कम्पन अर्थात् शरीर का कांपना 2. छींक का आना 3. जम्हाई का प्रकट होना 4. श्वांस–प्रश्वास की अबाध गति रहना 5. उछलकूद आदि की चेष्टाएं 6. क्षुधा–पिपाशा** अर्थात् भूख प्यास का होना भी प्राणों के कारण होता है। यह समग्र प्रक्रियाएं जाग्रत अवस्था में हमें स्पष्ट रूप से हमें प्रतीत होती है, वैसी ही हमें स्वप्नावस्था में भी प्रतीत होती हैं।

**ठ–** जाग्रत अवस्था तथा स्वप्नावस्था में क्या अंतर है। यह तथ्य विचारणीय है । वैसे तो स्वप्नावस्था में जो कार्य होता है वैसा ही जाग्रत अवस्था में होता है पर जाग्रत अवस्था में जो कार्य होता हैं वह अस्तित्त्व में आता है पर स्वप्नावस्था का कार्य स्वप्नावस्था में हुआ प्रतीत तो होता है पर उसका अस्तित्त्व जाग्रत अवस्था में नहीं रह पाता हैं। हमें स्वप्नावस्था में जिस कार्य की प्रतीति जाग्रत अवस्था की तरह होती है। उसका कारण अज्ञान है। अर्थात् अज्ञान के कारण ही स्वप्नावस्था में जाग्रत अवस्था की तरह आभास करते हैं। मृग मरीचिका के जल की प्रतीति की तरह से अज्ञान ही ये कार्य करता है। इस कारण अज्ञान या अविद्या जो वस्तुतः नहीं है पर उसका हमें आभास होता हैं । ये सूक्ष्म शरीर का अंग है।

**ड–** जाग्रत अवस्था की भॉति स्वप्नावस्था में भी कर्म होते हैं। साधारणतया इस तथ्य को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि कर्म का सम्पादन होता है। कार्य तो स्वप्नावस्था में सभी प्रकार से होता है पर उस कार्य का अस्तित्त्व नहीं रहता है। स्वप्नावस्था के कार्य का हम आभास करें तो पाते हैं कि स्वप्न सूक्ष्म शरीर की एक विलक्षण प्रक्रिया है। सोने की स्थिति में जब हमारा स्थूल शरीर शांत हो जाता है, अक्रिय हो जाता है, तब हम सूक्ष्म शरीर से स्वप्न की अर्थात् एक विशिष्ट स्थिति की प्रतीति करते हैं। यह प्रतीति एकदम स्पष्ट होती है। सम्पूर्ण कार्य जाग्रत अवस्था की भॉति सुस्पष्ट होता रहता है। ये परमात्मा का शरीर निर्माण का एक विलक्षण कार्य हैं, जो है नहीं उसे आभास करा देना, जो कल्पित है उसकी प्रतीति करा देना

एक दुष्कर एवं विलक्षण कार्य हैं। जादू की तरह से है। स्वप्नावस्था में हमारा स्थूल शरीर कहीं नहीं जाता और स्वप्न मे जाग्रत अवस्था की तरह समस्त कार्य होते हैं इसे आश्चर्यजनक ही कहा जाएगा।

**ढ–** परमात्मा की अपराप्रकृति के छठे तत्त्व मन के विषय में पूर्व में भी वर्णन किया जा चुका है। इसकी विलक्षणता का वर्णन हम पूर्व में भी कर चुके हैं। मानव शरीर में मन एक विशेष तत्त्व हैं जिसकी अलौकिकता, प्रमथनशीलता, चंचलता, कल्पनाशीलता और तीव्र गति का हम स्पष्ट आभास करते हैं। मन जो–जो कार्य जाग्रत अवस्था में करता हैं वह वह स्वप्नावस्था में भी कर देता है। किसी विषय को जानना, उसे संज्ञान में ले लेना, उसके संबंध में प्रतिक्रिया व्यक्त कर देना, किसी वस्तु की कल्पना कर लेना, इन्द्रियों के सहयोग से या अकेले ही विषयों के सुख का अनुभव कर लेना जैसा जाग्रत अवस्था में होता है वैसा ही स्वप्नावस्था में भी होता है।

**ण–** हम कामना, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह, दंभ, मिथ्याचारिता, दर्प, ईर्ष्या, अन्याय, अक्षमा, उग्रकर्म, शोक, भोगवृत्ति, अनुसूया, पाखंड, अमर्यादा, अतिमानता, व्यर्थाशा, शत्रुताभाव आदि अवगुणों की जिस प्रकार की अनुभूति जाग्रत अवस्था में हमें होती हैं वैसी ही स्वप्नावस्था में भी रहती है। हमने स्वप्न की अवस्था में स्वयं आभास किया होगा की हम यदि कोई भी कार्य करते हैं तो मन का पूर्ण सहयोग उस स्वप्न की अवस्था में लगातार रहता हैं। अनुकूल और प्रतिकूल कार्यो का व्यवहार और आचारण का सभी प्रकार के तथ्यों को मन वैसा ही विचार करता है, जैसा की जाग्रत अवस्था में विचार करता है। उदाहरण के लिए जब हम किसी व्यक्ति से बातचीत करते हैं तो हमारा मन स्वप्नावस्था में बातचीत में पूरा सहयोग करता है। हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि हम स्वप्नावस्था में हैं। मन के सम्पूर्ण संकल्प यथावत् होते रहते हैं । सामान्य व्यक्ति तथा साधक के मन की स्थिति जाग्रत और स्वप्न में सामान्य रहती है तथा उत्कृष्ट साधक एवं सिद्ध की मन की स्थिति का परिवर्तन स्वप्नावस्था में हो जाता है। ऐसा उसे आभास होता है। नियंतित्रत और अनियंत्रित मन ही स्वप्न की अवस्था में पृथक्–पृथक् परिणाम देता हैं। ये सबका सब अनुभूति का विषय है, जिसे उत्कृष्ट साधक जान लेता है और आभास कर लेता है।

**त–** स्वप्नावस्था में बुद्धि वैसे ही कार्य करती है जैसे की जाग्रत अवस्था में हो , इन्द्रिय तथा मन जो कुछ भी विषय भोगों के बारे में, सांसारिक चेष्टाओं के बारे में जो भी विचार करते हैं उसका विनिश्चय बुद्धि कर देती है। जैसे हम स्वप्नावस्था

में कोई बातचीत करते हैं तो कान के माध्यम से मन उस कहें गये शब्दों को स्वीकार कर लेता हैं और बुद्धि मन के सहयोग से वाणी द्वारा उसका सम्यक् उत्तर प्रस्तुत कर देती है। इससे स्पष्ट हैं कि बुद्धि की निश्चयात्मक शक्ति अर्थात् विकल्प प्रस्तुत करने के जैसे कार्य जाग्रत अवस्था में बुद्धि करती है, ठीक वैसा–वैसा ही स्वप्नावस्था में भी करती है । यहॉ पर एक तथ्य उल्लेखनीय है कि स्वप्नावस्था के कार्य की स्मृति उतनी प्रबल नहीं होती है, जैसे की जाग्रत अवस्था के कार्यों की होती है। स्वप्नावस्थ के कार्य धीरे–धीरे स्वतः अस्पष्ट होने लगते हैं और उनके सम्पादन की स्मृति धीरे–धीरे मिटने लगती है। ये मन बुद्धि के कार्य का जाग्रत एवं स्वप्न की अवस्था का अंतर है। स्वप्नावस्था के समस्त कार्यो का नियंत्रण निरीक्षण, अनुमति का कार्य बुद्धि के द्वारा पूर्णरूपेण किया जाता है। यदि ऐसा न किया जाता तो स्वप्नावस्था के कार्य्रो का अज्ञान जनित सम्पादन सम्पन्न नहीं होगा।

**थ–** स्वप्नावस्था में अहंकार की प्रतीति रहती है। आभास होता रहता है हमें कोई अपशब्द कहता है तो तत्काल हमारा स्वाभिमान जाग्रत हो जाता है और अहम भाव के कारण उसे हम तत्काल उसका उचित प्रतिकार प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार जब हम किसी वस्तु के स्वामित्व के विषय में विचार करते हैं तो अहम् भाव भी स्वप्नावस्था में वैसे ही प्रतीत होता हैं जैसे की जाग्रत अवस्था में रहता है। मैं और मेरा का भाव, तू और तेरा का भाव स्पष्टरूपेण स्वप्नावस्था में जाग्रत अवस्था की भॉति रहता है। इससे अहंकार की प्रतीति होती है।

**द–** सुषुप्ति अवस्था में व्यक्त होने वाला कारण शरीर– जाग्रत तथा स्वप्नावस्था का वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से किया जा चुका है। इन दोनों अवस्थाओं के अतिरिक्त शरीर की तीसरी अवस्था सुषुप्ति है। अर्थात् जब हम सोते हैं तो उस अवस्था को सुषुप्ति अवस्था कहा जाता है। सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीर की अभिव्यक्ति होती है। जब हम न तो जागते हैं और न ही स्वप्न देखते हैं तो सोते हैं। इस सोने की अवस्था को सुषुप्ति अवस्था कहा जाता है। सोते समय बुद्धि का सम्पूर्ण कार्य शांत हो जाता है। अर्थात् बुद्धि की निश्चयात्मक शक्ति समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में मन के द्वारा संकल्प न होने के कारण बुद्धि के द्वारा विकल्प भी नहीं किया जाता हैं। बुद्धि की समस्त वृत्तियॉ तथा विचार की कार्य शक्ति निष्क्रिय हो जाती है। सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि रहती है परन्तु उसकी चेष्टा, कार्य, वृत्ति चेष्टा विहीन हो जाती है। मनुष्य सुषुप्ति में किसी तथ्य को संज्ञान में नहीं ले सकता क्योंकि संज्ञान में लेने वाली दो प्रमुख शक्तियॉ मन और बुद्धि की ये अक्रिय अवस्था

आ जाती है। किसी भी वस्तु, विचार, तथ्य, विषय को संज्ञान में हम इन्द्रियों तथा मन बुद्धि से लेते हैं। ये संज्ञानता के प्रमुख आधार है परन्तु सुषुप्ति अवस्था में संज्ञानता के तीनों आधार भूत तत्त्व इन्द्रियॉ, मन तथा बुद्धि कार्य करना ही समाप्त कर देते हैं। ऐसी स्थिति में जगत में जो कुछ हो रहा है वो हमे आभास नहीं होता। यही स्थिति कारण शरीर की कही जाती है।

**ध–** सुषुप्ति अवस्था एक प्रकार की शरीर की अवचेतन अवस्था है। सुषुप्ति के पश्चात् जब शरीर जागता है अर्थात् जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है तो बुद्धि ये तथ्य जानती है कि हम सोए थे अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में रहे थे। इस कारण ये स्पष्ट है कि सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि बीज रूप में उपस्थिति रहती है। तभी वह सुषुप्ति अवस्था को संज्ञान में लेती है। सुषुप्ति अवस्था में जगत में क्या कार्यकलाप हो रहे हैं यह हम नहीं जानते हैं। तभी तो किसी घटना के हमारे सोने के समय घट जाने पर हम ये कहते हैं कि हम तो सो गये थे इस कारण हम जान नहीं पाये। इससे ये स्पष्ट है कि सुषुप्ति अवस्था में अर्थात् कारण शरीर में बुद्धि की पूर्ण निचेष्टता रहती है।

**न–**बुद्धि का कार्य न तो जाग्रत अवस्था में समाप्त होता है और न ही स्वप्नावस्था में। उसका नियंत्रण दोनों अवस्थाओं में समाप्त नहीं होता है। इन्द्रियों तथा मन के कार्य पर बुद्धि पूरी तरह से नियंत्रण रखती है तथा उनके कार्यों को स्वीकृति तथा अनुमोदन प्रदान करती है। बुद्धि जब अनियंत्रित इन्द्रियों तथा मन को अपना मूक समर्थन देती है तभी मनुष्य असामाजिक और अनैतिक कार्यों की ओर उन्मुख हो जाता है। ये सबका सब प्रपंच सुषुप्ति अवस्था में पूर्णरूपेण समाप्त हो जाते हैं। परमात्मा ने सुषुप्ति अवस्था की व्यवस्था इस कारण की है क्योंकि शरीर, इन्द्रियॉ, मन तथा बुद्धि नित्यप्रति के कार्यों से थक जाते हैं। ये प्रातः से रात्रि तक कार्य करके विश्राम की इच्छा रखते हैं। इस विश्राम के समय में शरीर जब सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है तो उसे कार्य करने की एक नई ऊर्जा प्राप्त हो जाती है।

**प**–परमात्मा की सुषुप्ति अवस्था के प्रकटीकरण का एक ही उद्देश्य प्रतीत होता है कि वह मनुष्य को प्रातः तरोताजा करके कर्म में लगाने की ऊर्जा प्रदान करता है। मनुष्य जड. मशीन की तरह बिना रूके कार्य नहीं कर सकता। इस कारण इसके लिए परमात्मा ने ऊर्जा संग्रहण हेतु सुषुप्ति अवस्था की व्यवस्था की है। सुषुप्ति में जहॉ हम अपने अगले दिवस के कार्य करने के लिए उर्जा प्राप्त कर लेते हैं वहीं हमारा शरीर दिन–प्रतिदिन क्षीण भी होता जाता है। यह दोनों विरोधी कार्य हैं तथा

प्रतिकूल परिस्थितियॉ हैं। सुषुप्ति अवस्था में जहॉ एक ओर शरीर नवीन उर्जा प्राप्त करता है वहीं समय के साथ वह विनाश अर्थात् वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होकर मृत्यु की ओर बढ़ जाता है। ये प्रतिकूल व्यवस्था परमात्मा की प्रकृति द्वारा रचित है जिसे हम प्रकृति के अधीन रहने के कारण मानने के लिए बाध्य हैं। हम नित्य प्रति विनिष्ट हो रहे हैं इसके रोक पाने का कोई उपाय हमारे पास नहीं है। कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं।

## 22–बुद्धि के संबंध में कुछ विशिष्ट तथ्य–

**क– मूढ़ बुद्धि मनुष्य अपनी मुक्ति हेतु यत्नशील नहीं होता–** जिस मनुष्य की बुद्धि सांसारिक प्रपंचो में फंस जाती है और मात्र इन्द्रिय विषयों का ही चिंतन करती है उस बुद्धि को मूढ़ बुद्धि कहा जाता है। इस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति अपने परिवार में ही फंसकर अपना जीवन काट देता हैं उसी प्रकार मूढ़ बुद्धि पुरूष को नाना प्रकार के इन्द्रिय विषय अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। ऐसे में वह उन्हीं में फंसकर अपनी बुद्धि का ही विनाश कर लेता है। इस प्रकार की बुद्धि से युक्त मनुष्य सांसारिक विषयों को इन्द्रियों और मन से भोगता रहता है। नियंत्रण कर्ता –

बुद्धि उन्हें इस कार्य में सहमति प्रदान करती हैं । इस प्रकार की बुद्धि को भ्रष्ट बुद्धि समझे।

**ख– सांसारिक भोगों में घृणा बुद्धि से वास्तविक कल्याण–** जिस बुद्धि में ये भाव प्रबल हो जाता है कि सांसारिक भोग हमें पतन की ओर ले जाएंगे तो उसका ये विचार सांसारिक भोगों के प्रति घृणा उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार घृणा बुद्धि से युक्त मनुष्य अपने वास्तविक कल्याण का पथ खोज लेता है। इस प्रकार की बुद्धि यर्थाथ को, सांसारिक क्षणभंगुरता को तथा उसकी नाशवान प्रकृति को जान लेती है और इस कारण वह सांसारिक भोगों के प्रति घृणा का भाव प्रबल कर लेती है। जब तक मनुष्य सांसारिक भोगों में घृणा का भाव दृढ़ता से नहीं रखता तब तक अपना वास्तविक कल्याण नहीं कर सकता।

**ग– बुद्धि को परमात्मा में स्थापित करने से मुक्ति–** यद्यपि परमात्मा अचिंत्यस्वरूप है अर्थात् मन और बुद्धि के चिंतन का विषय नहीं है परन्तु फिर भी वह बुद्धि के द्वारा जाना भी जाता है। बुद्धि परमात्मा के अनुभव का अंतिम द्वार है। वाणी रूपी कर्मेन्द्रिय का मन में विलय करना पड़ता है। मन को बुद्धि में विलय करना पड़ता है और बुद्धि को आत्मा में विलय करना पड़ता है। तथा आत्मा को परमात्मा में विलय

करना पड़ता है। इस प्रक्रिया से ही उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में अव्यक्त बुद्धि व्यक्त होकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लेती है और ज्योति से ज्योति मिलाकर परमात्मा के अस्तित्त्व का आभास करती है।

**घ– बुद्धि आत्मा द्वारा प्रकाशित तत्त्व है–** साधारणतया परमात्मा ही समस्त शक्तियों का प्रदाता है। बुद्धि को भी परोक्ष रूप से शक्ति प्रदान करता है, परन्तु बुद्धि को जो शक्ति आत्मा से प्राप्त होती है वह प्रत्यक्ष या अपरोक्ष कही जाती हैं। आत्मा ही प्रत्यक्ष रूप से बुद्धि की शक्ति को प्रकाशित करती है। आत्मा का यह विशिष्ट कार्य है कि वह शरीर के समस्त अंगों में चेतनता प्रदान करे। बुद्धि में जो शक्ति है, कार्य करने का जो प्रकाश है वह आत्मा द्वारा प्रदान किया जाता है। ये तथ्य हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

**ड़– साधारण मनुष्य की बुद्धि का विषय सांसारिक भोग हैं–** एक साधारण व्यक्ति संसार में रहता है वह बुद्धि की विलक्षणता को तथा उसके कार्य को नहीं जानता है। संसार को बुद्धि के द्वारा देखता हैं। इन्द्रियों, मन, शरीर, आत्मा–परमात्मा आदि के विषय में अनभिज्ञ रहता है। बुद्धि के बारे में सामान्य व्यक्ति नहीं जानता और वह अपनी बुद्धि को संसार में ही फंसायें रखता है। एक सामान्य व्यक्ति अपने हित को अहित को कल्याण को अकल्याण को नहीं विचारता। उसकी बुद्धि सांसारिक प्रपंचों में ही फंस जाती है। सांसारिक प्रपंचों में फंसकर अन्ततः उसकी मृत्यु हो जाती है।

**च– साधक मनुष्य की बुद्धि परमात्मा के विषय में चितंन करती है–** परमात्मा की अतिशय कृपा से अथवा किसी परिस्थितिवश जब साधारण मनुष्य परमात्मा के विषय में विचार करके कुछ परमात्मा प्राप्ति के साधन करने लगता है तो उसे साधक कहा जाता है। साधक प्रारम्भिक स्तर पर अनेक जिज्ञासाओं को मन और बुद्धि में रखकर संशयग्रस्त रहकर उनके निवृत होने का प्रयास करता है। ये प्रयास साधक को सांसारिक प्रपंचों से निवृत्ति कराने में सहायक होते हैं। एक साधक के रूप में मनुष्य बहुत कुछ जानने का, अध्यात्मिक जगत के बारे में ज्ञानवान होने का प्रयास करता है। साधक बुद्धि इस प्रकार अपने कल्याण की ओर अग्रसर हो जाती है।

**छ–उत्कृष्ट साधक की बुद्धि विषयों को त्यागकर तत्त्व के समीप जाती है–**उत्कृष्ट साधक की बुद्धि अध्यात्मिक विषयों के संशयों से निवृत हो जाती है। वह परमात्मा की सत्ता का अनुभव कर लेती है। इन्द्रियों के भोगों में घृणा बुद्धि का आ जाना सांसारिक क्रिया कलापों से निवृत्ति हो जाना, सांसारिक विषयों के बारे में कम से

कम चिंतन करना, सांसारिक विषयों के बारे में जहां बाते हो रही हैं उनसे अपने को पृथक् करने का प्रयास करना तथा अपने कल्याण के लिए आत्म चिंतन करना, जगत के आश्रय का त्याग करके परमात्मा की शरण ग्रहण कर लेना, अपने वास्तविक कल्याण के मार्ग का ज्ञान हो जाना, परमात्मा की सत्ता की अनुभूति कर लेना ये सब के सब उत्कृष्ट साधक की बुद्धि के लक्षण हैं।

**ज– सिद्ध की बुद्धि परमात्मा में समाहित हो जाती है–** सिद्ध पुरूष की बुद्धि में सांसारिक विषयों के प्रपंचों की शून्यता आ जाती है। उसे परमात्मा की नित्य प्राप्ति हो जाने का कारण परमात्मा की सानिध्यता के कारण, परमात्मा की विशाल, अद्वितीय और अलौकिक सत्ता का अनुभव होने लगता है। वह संसार में रहकर भी नहीं रहता है। इस कारण उसकी बुद्धि संसार के बारे में कुछ विचार नहीं करती। बुद्धि के विकल्प का विषय समाप्त हो जाता है। कामना, स्पर्हा, अहंकार का सर्वथा समूल विनाश हो जाने के कारण उसकी बुद्धि का कार्य ही समाप्त हो जाता है। जगत की सत्ता की मिथ्या सत्ता स्पष्ट भासती है। इस कारण वह उसमें नहीं फंसता हैं। बुद्धि पूर्ण शांत होकर परमात्मा में ही विलीन हो जाती है।

## 23– अपरा–प्रकृति का आठवां तत्त्व अहंकार–

परमात्मा की अपरा प्रकृति का आठवां तत्त्व अहंकार बड़ा ही विलक्षण तत्त्व है जो मानव शरीर में विषवत् व्याप्त है। इसकी विशिष्टता का अनुमान इसी से लगा सकते हैं कि इस विलक्षण तत्त्व से बहुत ज्ञानीजन, सन्तजन, प्रख्यात विद्वान भी निवृत नहीं हो पाते हैं। अहंकार नामक तत्त्व से मात्र सिद्धजन ही निवृत्ति पा पाते हैं। उत्कृष्ट साधक को ये अहंकार रूपी तत्त्व बहुत तंग करता है, परेशान करता है। यद्यपि हम इसे पहचान नहीं पाते इस कारण इसकी निवृत्ति का प्रयास भी नहीं करते और ये सहजता से निवृत भी नहीं होता। यह ही अहंकार की विलक्षणता है। अहंकार बुद्धि से भी सूक्ष्म तत्त्व है।

### 1. अहंकार का कारण तत्त्व बुद्धि–

बुद्धि को अहंकार का कारण तत्त्व माना जाता है। परमात्मा ने बुद्धि को मन तथा अहंकार के मध्य रखा है इस कारण उत्कृष्ट, शुद्ध और सात्विक बुद्धि मन शमन कर सकती है और अहंकार का दमन कर सकती है। बुद्धि मन की गति को जानती है। मन की स्थिति को परखती है तथा मन के असामाजिक कार्यो की ओर प्रवृत होने पर उसे डांट– फटकार कर वापस बुला सकती है। इसी प्रकार बुद्धि

अहंकार रूपी तत्त्व को भी जान सकती हैं तब स्वयं उत्कृष्ट,शुद्ध एवं पूर्ण सात्विक हो जाती है। इस प्रकार की बुद्धि अहंकार को परख कर उसका दमन कर देती है अथवा प्रकट ही नहीं होने देती है। अहंकार प्रकट हो गया तो उसे तत्काल परख कर समाप्त कर देती है।

बुद्धि को अहंकार का कारण इसलिए माना जाता है क्योंकि बुद्धि अहंकार को जानती है। शास्त्रों में महतत्त्व का वर्णन आता है, जिससे अहंकार की उत्पत्ति बताई जाती हैं। इस विषय को प्रस्तुत करना प्रकरण संगत नहीं है। हम इस स्थल पर इतना ही कहना चाहते हैं कि चूंकि बुद्धि श्रेष्ठ है और मन की गति, स्थिति चेष्टा तथा अहंकार की गति, स्थिति चेष्टा को जान सकती है, इस कारण बुद्धि अहंकार का कारण तत्त्व है। एक माता अपने पुत्र की गति, स्थिति, चेष्टा को जान लेती है क्योंकि वह पुत्र का कारण है। यह उदाहरण प्रकरण को समझने के लिए प्रस्तुत किया गया है इसकी सामानता बुद्धि और अहंकार से नहीं करनी चाहिए। बुद्धि से ही अहंकार की स्थिति, गति, चेष्टा समझी जा सकती है। इस कारण बुद्धि को अहंकार का कारण मानना चाहिए तथा अभ्यास से शरीर में विषरूप स्थित अहंकार से निवृत होने का उपाय करना चहिए।

## 2.अहंकार के प्रकार–

एक ही अंहकार रूपी तत्व पृथक्–पृथक् रूप में विभिन्न प्रकार से शरीर में प्रकट हो जाता है। ये एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि एक अहंकार विभिन्न रूपों में शरीर में प्रकट होकर अपना कार्य करता है। उत्कृष्ट साधक प्रत्येक प्रकार के अहंकार को जान जाता है और सामान्य व्यक्ति उसके वशीभूत होकर अपना सर्वनाश कर लेता है। अहंकार पृथक्–पृथक् प्रकार से मानव शरीर में प्रकट होता है तथा हम जान नहीं पाते हैं और वह अपने प्रभाव दिखाता रहता है। उसके प्रभाव के कारण से मनुष्य की बड़ी हानि भी हो जाती है। अनेक प्रकार के दुष्कर्म, हत्याएं इसी के कारण हो जाती हैं। मनुष्य शरीर में प्रकट होकर मनुष्य को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करके असामाजिक मार्ग पर चलने को विवश कर देता है।

अहंकार से ग्रसित होकर मनुष्य अपना ही अहित करता है। इस कारण अहंकार के प्रकार को प्रस्तुत करके हम मानव जाति को इससे सचेत करने का प्रयास कर रहे हैं। जब तक किसी दोष की संज्ञानता हमें नहीं होती तब तक हम

उसकी पहचान नहीं कर सकते है। दोष की परख से ही हम उस दोष से निवृत होने का उपाय कर सकते हैं। इस प्रकार किसी व्याधि–रोग के लक्षण शरीर में प्रकट होते हैं और हम लक्षणों के आधार पर ये जान लेते हैं कि ये रोग अमुक प्रकार का है। लक्षण से रोग के प्रकार को जाना जाता है तथा उसकी समुचित चिकित्सा की जाती है। इन सब तथ्यों को दृष्टिगत रखकर ही अहंकार के प्रकारों का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

**क–बलाहंकार–** मनुष्य चाहे कुमारावस्था में अथवा युवावस्था या वृद्धावस्था में हो उसे अपने शरीर में उपस्थित बल का बोध रहता है। इस बल के बोध से वह अपने को बलशाली समझता है। अवसर आने पर उसका प्रदर्शन भी तत्काल कर देता है। प्रसंगानुकूल हम जब बल का प्रदर्शन करते हैं तो इस भाव से करते हैं कि प्रतियोगी को परास्त करने का बल हमारे शरीर में उपस्थित है। इसी भाव से हम अपने शरीर के बल को प्रदर्शित करते हैं अथवा वाणी द्वारा उसका बखान भी करते है, कि हमारे शरीर में शक्ति है। हम अमुक कार्य कर सकते हैं। अमुक को परास्त कर सकते है। जैसे–जैसे शरीर की क्षमता समाप्त होती जाती है वैसे–वैसे इस बलाहंकार का समापन तो होता हैं पर अतीत के बल का स्मरण करके हम ये कहते हैं कि हमारे शरीर में इतना बल था कि मैंने अमुक–अमुक बलशाली व्यक्ति को परास्त किया था। इस भाव का अंतः करण में प्रकट होना, अनायास आ जाना, प्रकरणवश अथवा प्रसंगानुकूल उद्‌भवित हो जाना भी एक प्रकार के बलाहंकार की प्रस्तुति है। आप विचार करें की वर्तमान में हमारे शरीर में रोग अथवा वृद्धावस्था के कारण बल नहीं रहा पर इसका अहंकार अवशेष रह गया। वस्तु नहीं है पर विचार से ही अहंकार का प्रकटीकरण हो रहा है। यह भगवान की अपरा प्रकृति अहंकार की प्रबलता ही कही जायेगी।

**ख– ऐश्वार्याहंकार–** मनुष्य के पास जब विपुल सम्पदा सम्पत्ति आ जाती है तो उसका समाज में दूर–दूर तक ऐश्वर्य व्याप्त हो जाता है। लोग चर्चा करते हैं कि

अमुक व्यक्ति के पास विपुल सम्पदा है। असंख्य सम्पत्तियॉ हैं। ऐश्वर्यवान व्यक्ति भी अपनी सम्पदा–सम्पत्ति के संबंध में जानता है, अथवा सम्पर्कित सहयोगी या अन्य माध्यम से भी उसे यह ज्ञात हो जाता है कि मेरे पास विपुल सम्पदा–सम्पत्ति है। ऐसा मनुष्य ऐश्वर्यवान कहा जाता है। उस ऐश्वर्य के सम्बंध में उसे ज्ञान रहता है। वह संज्ञान में रखता है कि हमारे स्वामित्व में कितनी सम्पत्ति और प्रतिष्ठान हैं। उसकी ये संज्ञानता उसके मन में रहती है साथ ही वाणी में भी प्रकट होती है और

पुनः पुन विचारों में आती रहती है। वाणी से प्रकट होने पर, विचारों में रहने पर वैसा ही व्यवहार वह लौकिकता में करता है। अवसर आने पर, अवसर न आने पर भी अनायास ही ऐश्वर्याहंकार के वशीभूत होकर व्यवहार करता है। यह अहंकार की प्रबलता ही है । कोई विपुल सम्पदा, सम्पत्ति वाला व्यक्ति जब किसी कारणवश अपनी सम्पत्ति को खो देता है तो भी सम्पदा–सम्पत्ति के विनाश के उपरान्त भी उसके मन में ये भाव रहता हैं कि अमुक सम्पदा हमारे पास थी। अवसर आने पर अथवा न आने पर अनायास ही वह उसकी प्रस्तुति भी करता हैं कि अमुक–अमुक सम्पत्ति हमारे पास थी। ये भी ऐश्वर्याहंकार का एक प्रकार है जो प्रकट होता है।

**ग– प्रतिष्ठाहंकार–** समाज में अनेक प्रकार के क्षेत्र हैं। कला, साहित्य, विज्ञान, गणित, प्राद्यौगिकी, खगोल, खेल, संगीत, अध्यात्म, विधिसेवा, राजनीति आदि असंख्य प्रकार के विषय हैं जिनमें किसी न किसी क्षेत्र में कोई व्याक्ति या कई व्यक्ति अपने उत्कृष्ट कार्यो के फलस्वरूप प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। ये प्रतिष्ठा उनके उत्कृष्ट कार्यों से आ जाती है जिसके लिऐ उन्हें परिश्रम भी करना पड़ता है। प्रतिष्ठा प्राप्त मनुष्यों के मन में प्रतिष्ठा का अहंकार रहता है। वे समान्य लोगों की तरह नहीं रहते हैं तथा अपने को सामान्य समाज से पृथक् गिनते हैं और वैसा ही आभास करते हैं। यद्यपि मानव एक प्रकार का ही है परन्तु प्रतिष्ठा उन्हें पृथकता के लिए बाध्य करती है। सामान्य होकर प्रतिष्ठा प्राप्त मनुष्य अपने को असामान्य मानता है, समझता है। इस प्रतिष्ठा की उपलब्धता से जो अहंकार मनुष्य में प्रकट हो जाता है उसे प्रतिष्ठा का अहंकार कहते हैं।

सामान्य व्यक्ति होकर असामान्य व्यवहार करना अपने को व्यस्त स्वरूप में प्रकट करना ही उसका लक्षण हैं। ये लक्षण अनायास ही प्रकट रहता है । सामान्य बातचीत में व्यवहार में , चलने फिरने में उसकी प्रतीति होती रहती हैं। कतिपय कारण से यदि प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा खो देता है, जैसे राजनेता अपने पद से विलग हो जाने पर उसकी सुरक्षा व्यवस्था और स्थिति वैसी नहीं रहती जैसी पहले थी फिर भी अतीत की प्रतिष्ठा से वह ओत –प्रोत रहता है। समय आने पर वह कहता है कि हमें अमुक पद प्राप्त था और हमें अमुक–अमुक सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त थी तथा अमुक–अमुक सुविधाएं भी प्राप्त थी। ये सब अतीत की प्रतिष्ठा का अहंकार है जो प्रतिष्ठा के खो जाने पर भी प्रकट रहता है। यह अहंकार की प्रबलता है।

**घ–पद का अहंकार –**मनुष्य के पास पद चाहें छोटा हो अथवा बड़ा हो सामाजिक, राजनीति, शासकीय, प्रशासकीय जो पद मनुष्य को प्राप्त हो जाता है वह पद के अनुरूप ही व्यवहार करता है। एक अधिकारी के सुरक्षाधिकारी को भी अपने पद का अहंकार रहता है कि हम एक अमुक अधिकारी के सुरक्षाधिकारी हैं। इसी विचार के तहत वह पद के अहंकार में डूब जाता है। छोटे पद का अहंकार तो सामान्य लोगों में देखा जाता है परन्तु प्रतिष्ठित अधिकार प्राप्त पद का अहंकार तो विशाल होता है। उसमे मनुष्य पूरी तरह से डूब जाता है। किसी बड़े पद का चाहे वह सामाजिक हो, राजनीतिक हो, शासकीय हो, अथवा प्रशासकीय सभी का अहंकार प्रकट होता है। प्रत्यक्ष होता है। बड़े पद को धारण करने वाला मनुष्य वैसा ही आचरण करने लगता है, जैसा उसके पद अधिकार प्रदान करते हैं अथवा ख्याति प्रदान करते हैं। बड़े पद पर बैठे व्यक्ति का स्वाभाविक आचरण असामान्य हो जाता है। वे बाह्य व्यवहार से तो सामान्य रूप से रहते हैं पर आंतरिक रूप से वे पद के अहंकार से ओत–प्रोत रहते हैं ।

आप किसी उच्च पदस्थ व्यक्ति से ये कहें कि आपको अमुक अधिकार प्राप्त नहीं हैं तो वह आपकी प्रस्तुति का जोरदार विरोध करता है और यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि हमें अमु,क प्रकार का अधिकार प्राप्त है। भले ही वो उसे प्राप्त न हो। ये सब पद के अहंकार का एक रूप है। पद रहते तो व्यक्ति पद के अहंकार में डूबा रहता हैं पद के चले जाने के पश्चात् ही वह उस अतीत के पद के बारे में विचार करके उसमें अनावश्यक अहंकार की प्रस्तुति की चेष्टा करता है कि हम अमुक–अमुक पद पर रहे है। हमने अमुक–अमुक पद पर रहकर अमुक–अमुक कार्य किये हैं। अतीत का ये प्रस्तुतिकरण एक प्रकार से पद का अहंकार है। जो पद नहीं है, वर्तमान में उसका अस्तित्त्व नहीं है पर उस अतीत के पद के अहंकार का अस्तित्त्व है। ये अहंकार की प्रबलता है।

**च– सौन्दर्य का अहंकार–** परमात्मा ने मनुष्य को सौन्दर्य प्रदान किया है जिसके कारण मनुष्य में एक आकर्षण होता है। आपने एक से एक बढ़कर सुन्दर स्त्री–पुरूषों को देखा होगा। उन्हें देखते ही मनुष्य उनकी ओर आकर्षित हो जाता है और अनायास ये कह उठता है अतिसुन्दर। परमात्मा का मानव के लिए ये सुन्दरता रूपी वरदान है कि वह शारीरिक रूप से सुन्दर रखता है। आपने श्याम वर्ण अथवा काले वर्ण के लोगों में भी सुन्दरता का दर्शन किया होगा। ये सुन्दरता परमात्मा की ओर से प्रस्तुत भेंट हैं जो प्रत्येक मानव को प्राप्त होती है। आपने देखा

होगा की प्रत्येक मनुष्य में शरीर की रचना में पृथक्–पृथक् शरीर की सुन्दरता होती है। मस्तक, मुख के अंग ग्रीवा ,वच्छस्थल, उदर, हाथ–पैर और पंजे की उंगलियों में भी पृथक्–पृथक् प्रकार की सुन्दरता का हमें अनुभव होता है। यहॉ तक कि केशों में भी सुन्दरता का दर्शन हम करते है। शरीर के अंगों में सुन्दरता का दर्शन तो होता ही है परन्तु वाणी की मधुरता में भी सुन्दरता का आभास होता है और उसकी प्रस्तुति भी विलक्षण होती है। ये सब एक प्रकार का सौन्दर्य का अहंकार है जिसका हम नित्य आभास करते हैं।

सुन्दरता का आभास तो हम कर सकते हैं परन्तु उसकी चेष्टा में भी सुन्दरता को हम देख सकते हैं। इस प्रकार मनुष्य दूसरों के मुख से सुनकर अथवा स्वयं को देख कर, जानकर, बोध करके अपने रूप, सौन्दर्य पर अहंकार करता है। इस प्रकार के अहंकार को हम सौन्दर्याहंकार कहते हैं। सौन्दर्य के अहंकार की प्रबलता अति तीव्र होती है। सुन्दर व्यक्ति इस प्रकार के अहंकार से निरंतर युक्त रहता है। वह पल–पल उसे देखकर अपनी सुन्दरता से युक्त होने का व्यवहार करता है। समय के साथ सौन्दर्य का समापन मानव देह से हो जाता है। वृद्धावस्था में स्वतः ही सौन्दर्य मानव देह से लुप्त हो जाता है, पर हम सुन्दर थें इस भाव की प्रतीति हमें हुआ करती है। ये अतीत की सुन्दरता को हम अहंकार के रूप में प्रकट करते हैं। लोगों को आपने कहते हुए सुना होगा कि हम अपनी युवावस्था में बहुत सुन्दर थे, लोग हमें देखते ही रह जाते थे। अथवा हम बाल्यावस्था में बहुत सुन्दर थे जो हमें देखता था वह स्नेह करने लगता था, जो सुन्दरता नहीं है, बीत चुकी है उसके बारे में भी हम अंहकार करते हैं। यह अहंकार की प्रबलता है।

**छ– जन बल का अहंकार–** जन बल का अहंकार का महत्व पहले से ही है। अतीत काल से रहा है। महाभारत के युद्ध में गीता जी के प्रथम अध्याय में दुर्योधन ने अपने पक्ष के प्रमुख योद्धाओं के नाम गिनाये तथा पाण्डव पक्ष के प्रमुख योद्धाओं के नामों का उल्लेख किया है। ये विवरण जनबल के प्रदर्शन के लिए ही है। जन बल का अहंकार बड़ा ही व्यापक होता है इसका प्रभाव भी बड़ा व्यापक होता है। यदि हम ये जान जाये की हमारे पक्ष में बहुत से लोग हैं और जो हमारे लिए जान की बाजी लगा सकते हैं तो हमारा अहंकार अत्यन्त प्रबल रहता है। दुर्योधन महाभारत के युद्ध में इसी जनबल के अहंकार का शिकार हुआ था और उसने अपने सौ भाइयों सहित अपना विनाश कर डाला था। उसने अपने परिवार का, राज्य का

विनाश तो किया और लाखों लोगों का भी विनाश करवा डाला। उसे अज्ञानतावश एक ही अहंकार था कि कृपाचार्य ,अश्वत्थामा जैसे चिरजीवी योद्धा हमारे पक्ष में हैं। भीष्म पितामह, द्रोणचार्य,कर्ण जैसे महान शूरवीर है, जो अजेय हैं। ये हमारा जनबल है। इस आधार पर हम महाभारत का युद्ध जीत लेंगे। जनबल के घमण्ड मे चूर दुर्योधन का ये घमण्ड चूर–चूर हो गया और वह अपनी सम्पूर्ण सेना सहित मारा गया। अब आप जन बल के अहंकार की प्रबलता को समझ गये होंगे। कल हमारे साथ जनबल था और यदि आज नहीं हैं फिर भी अतीत के जनबल के अहंकार से हम युक्त रहते हैं और समयानुकूल कहते हैं कि हमारे साथ बहुत से व्यक्ति थे अमुक–अमुक लोग थे पर आज नहीं हैं। आज लोग तो नहीं हैं, जनबल का अभाव है पर अहंकार का तत्त्व अवशेष है। ये अहंकार की प्रबलता है।

**ज–सामर्थ्य का अहंकार** –समर्थ शब्द से सामर्थ्य की उत्पत्ति होती है। हम जब किसी कार्य में समर्थ होते हैं तो हममें सामर्थ्य रहती है। मनुष्य के अंतःकरण में सामर्थ्य रूपी दोष जब प्रबल हो जाता है तो वह समाज के अन्य लोगों की उपेक्षा करता है। वह समझता है कि हम प्रत्येक कार्य में समर्थ हैं। प्रत्येक कार्य कर सकते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समस्यायें हैं और समस्यायें हमारे द्वारा ही उपजाई जाती हैं। जब मनुष्य ये विचार कर लेता है कि हम प्रत्येक समस्या को हल करने की योग्यता रखते हैं और उसमें समर्थ हैं तो वह अनैतिक, असामाजिक कार्य का सम्पादन करता है, क्योंकि उसके अंताकरण में ये भाव रहता है कि हम अमुक अनैतिक कार्य करके उससे उत्पन्न समस्या का हल कर लेंगे। ये सामर्थ्य का अहंकार हमें दुष्कर्म, अनीति, अन्याय तथा अनैतिक कार्यों को सम्पादित करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार के अंहंकार से विशेष रूप से समाज वे ही लोग ग्रसित रहते हैं जिनके पास धनबल, जनबल तथा शासन बल रहता है। आज के समाज में जो अव्यवस्था व्याप्त है वो सामर्थ्य के अहंकार के कारण अधिक व्याप्त है। सामर्थ्य के अहंकार से ग्रसित व्यक्ति अपने को असीमित रूप से शक्तिशाली मान लेता हैं तथा वह प्रत्येक असामाजिक कार्य करने से नहीं हिचकता। रावण, कंस, शिशुपाल आदि को सामर्थ्य का अहंकार था जिसके कारण उन्होंने अनैतिक, असामाजिक कार्य करके शास्त्रों की मर्यादा का खण्डन किया था और अंत में अपने सहयोगियों सहित मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। सामर्थ्यवान व्यक्तियों में जब सामर्थ्य का अभाव हो जाता है फिर भी सामर्थ्य के अभाव से ये लोग पूरी तरह से निवृत नहीं हो पाते हैं। ऐसे व्यक्ति अतीत के सामर्थ्य के विचार से ग्रसित रहते हैं कि हमारे पास पर

सामर्थ्य था यदि आज होता तो हम अमुक–अमुक कार्य कर डालते। यह सामर्थ्य के अहंकार की प्रबलता ही है।

**झ–उपेक्षा का अहंकार–** आपने उच्च पदस्थ, राजनेताओं, अभिनेताओं, न्यायाधीशों को देखा होगा वे लोग जन सामान्य, गरीब, असहाय लोगों की बातों को उपेक्षित भाव से सुनते हैं। गरीब, असहाय, दीन–हीन व्यक्ति जब अपनी समस्या को ऐसे अधिकार प्राप्त लोगों को समक्ष रखते हैं तो वे इन समस्याओं को अनदेखा करते हैं अथवा सुनकर अनसुना कर देते हैं, या सुनने का नाटक करते हैं अथवा उस पर उचित ध्यान नहीं देते। प्रार्थना, अनुनय, विनय, याचना पर यह ध्यान क्यों नहीं दिया जाता इस पर सम्भवतः आपने विचार नहीं किया होगा। यह उच्च पदस्थ लोगों, अति सम्मानित नेताओं न्यायाधीशों का उपेक्षा अहंकार है जिससे वे ग्रस्त रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह उच्च पदस्थ हो अथवा बहुत शक्ति सम्पन्न हो वह परमात्मा की सत्ता में शासन में एक सामान्य व्यक्ति है। उसे उच्च पद परमात्मा द्वारा ही प्रदान किया गया है। इस विचार का अभाव होने पर उपेक्षा के अहंकार का प्रादुर्भाव हो जाता है। हमें उपेक्षित लोगों की तर्क संगत बातों का, उनकी समस्याओं का पूर्ण रूपेण ध्यान देकर समाधान का प्रयास करना चाहिए। हमें यह विचार रखना चाहिए कि परमात्मा की व्यवस्था में हमें जो अधिकार प्राप्त हुआ है हम उसकी अवहेलना न करें हमें ये ध्यान रखना चाहिए कि हमारे कार्यो पर परमात्मा की नित्य प्रति दृष्टि है। उसकी सत्ता से हम किसी प्रकार भी पृथक् नहीं हैं इसलिए हमें उपेक्षा अहंकार से ग्रसित नहीं होना चाहिए।

**ट–अज्ञानाहंकार–** मनुष्य पूर्ण ज्ञानी नहीं है परन्तु पूर्ण अज्ञानी भी नहीं है। शास्त्रों के अध्ययन से, सन्तों के साथ से, स्वाध्याय और परिश्रम से वह कुछ ज्ञान अर्जित कर लेता है,परन्तु अधिकांश लोग ज्ञान को अज्ञान समझकर उसका व्यवहार व आचरण करते रहते हैं। हम जो जानते हैं वह सही है, अन्य जो जानते हैं वह सही नहीं है हमारी विचार धारा उचित है, सही है, तर्क संगत है तथा दूसरों की विचार धारा सही नहीं है, अतार्किक है, अनुचित है ये मानना तथा ये मानकर वैसा व्यवहार करना ही अहंकार रूपी अज्ञान है। ये अज्ञान रूपी अहंकार से समाज का बहुत भाग ग्रसित है। प्रत्येक मनुष्य अज्ञान के अहंकार से आवृत प्रतीत होता है। वह जो कह रहा है वह सही है, ये विचारधारा बढ़ती जा रही है। सत्य क्या है? इसका कोई मतलब नहीं है और न ही हम सत्य को समझना चाहते हैं। हमारा मत, हमारा कथन सत्य है। उसकी प्रतिष्ठा है। उसी को सभी को मानना चाहिए। ये पूर्ण

अज्ञान रूपी अहंकार है। किसी भी विषय में मनुष्य को अपने मत को दूसरों पर थोपना नहीं चाहिए। यह प्रवृत्ति अज्ञान के अहंकार के कारण दृढ़ हो जाती है। आज के मानव की प्रवृत्ति अज्ञान के विषय में यहॉ तक बढ़ी हुई है जिस विषय में हम कुछ नहीं जानते हैं परन्तु हम उस विषय में अज्ञान के आश्रित होकर उसमें हस्तक्षेप करते हैं। यह अज्ञान का अहंकार ही है। मनुष्य को प्रत्येक विषय में सत्य का जानने का प्रयास करना चाहिए। जब तक सत्य का ग्रहण न हो तब तक उसके लिए स्वाध्याय करते रहना चाहिए। इससे अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है और अज्ञान का अहंकार भी समाप्त हो जाता है।

**ठ– कुल का अहंकार–** प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी कुल से संबंध अवश्य रखता है। अपने भारतवर्ष में ये व्यवस्था आज भी सुदृढ़ रूप से लागू है। विदेशों में लोग ये अवश्य कहते हैं कि हम अमुक व्यक्ति से संबंधित हैं। अर्थात् हमारे पूर्वज अमुक–अमुक थे। हमारे पूर्वज महान थे और हम उनकी सन्तान हैं, इस कारण हमें महान होना चाहिए। हम जब स्वयं कुछ अच्छे कार्य नहीं करते हैं और मात्र अपने पूर्वजों की विशेषता के आधार पर, उनके प्रख्यात होने के आधार पर उनका नाम लेकर अहंकार करते हैं तो उसे कुल का अहंकार कहा जाता है। गीता जी के प्रथम अध्याय अर्जुन विषाद योग में वर्णसंकर का वर्णन आता है। इसमें अर्जुन ने अपने कुल को स्वच्छ रखने की बात कही है। कुल के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न हो जाता है और वह कुल को तथा कुलघातियों को नरक में ले जाने के लिए होता है। कुल का इस कारण महत्व हमारे यहॉ बहुत रहा है, परन्तु अपने उच्च कुल को मन में रखकर स्वयं कुछ न करना कुल का अहंकार कहा जाता है।

**ड– पूज्यता का अहंकार–** हम कतिपय लोगों के लिए सम्मानित होते हैं। समाज में, परिवार में, संबंधियों में हमें पर्याप्त सम्मान इसी तरह प्राप्त होता है। ऐसे लोगों के मन में पूज्यता का अहंकार होता है। सम्मानित व्यक्ति ये चाहता हैं कि लोग हमारी पूजा करें, हमें पूज्य समझें। आपने सम्मानित लोगों को ये कहते सुना होगा कि उस स्थान पर उपस्थित सभी लोगों ने हमारे चरण स्पर्श किये पर अमुक व्यक्ति ने चरण स्पर्श न करके हमें मात्र नमस्कार ही किया। यह तथ्य पूज्यता के अहंकार के कारण मन में आता है। हमें कोई सम्मान देगा अथवा नहीं देगा यह उसका विषय है। हमें सम्मान की आशा कभी नहीं रखना चाहिए। सम्मान प्राप्त हो, पूज्यता प्राप्त हो अथवा न प्राप्त हो हमें इसकी आकांक्षा कदापि नहीं रखनी चाहिए। हम यदि सम्मानित हैं तो हमें सम्मान अवश्य मिलेगा और यदि नहीं हैं तो हमें सम्मान

नहीं मिलेगा। कतिपय मामलों में अधिकांश लोग हमारा सम्मान करें ये विचार ठीक नहीं है। कोई व्यक्ति दबाववश हमारा सम्मान न करे ये विचार ठीक है। आपने कई घटनाऐं सुनी होगीं कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान पर गया और उसका सम्मान न होने के कारण उसने उपस्थित लोगों को बहुत अपमानित किया। यह पूज्यता के अहंकार की निकृष्ट सीमा है। परिवार में, संबंधियों में भी हमारा ऐसा व्यवहार रहता है। हम चाहते हैं कि संबंधी जन, परिवारी लोग हमारा यथोचित सम्मान करें। अपेक्षित सम्मान न मिलने पर हमें कष्ट होता है क्योंकि हमारी सम्मान की अपेक्षा प्रभावित होती है। यह अहंकार की प्रबलता ही है।

**ढ–उच्च वर्ण का अहंकार**–भारतवर्ष में आदिकाल से चार वर्णों की स्थापना हुई, जिन्हे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कहा जाता है। ब्राह्मणों को अन्य वर्णों की अपेक्षा सम्मानित माना गया और पूज्य समझा गया। ब्राह्मणों को हमारा समाज आज भी पर्याप्त सम्मान देता है। ब्राह्मणों के चरण स्पर्श की परम्परा रही है। वह आज भी कायम हैं। लोग अनायास ही ब्राह्मणों के चरण स्पर्श करते हैं, अथवा करने को कहते हैं। प्रणाम् अभिवादन करते हैं। ब्राह्मण भी सदियों से पूज्य रहा है। ब्राह्मण को शम, दम, तप, मन वाणी की सरलता, ज्ञान, विज्ञान तथा आस्तिक भाव के गुणों के कारण ही पूज्य समझा जाता है। ये गुण ही उसे सम्मानित बनाये रखते हैं। समय के प्रभाव से उक्त गुणों का बहुत ह्रास हो गया है। इस कारण उनकी पूज्यता भी प्रभावित हुई है। समाज पूज्यता के तथ्य का आंकलन करता हैं और वह देखता है कि अमुक व्यक्ति को पूज्य माना जाना चाहिए अथवा नहीं। इस कारण यदि हम उच्च वर्ण से संबंधित हैं तो हमें सम्मान, आदर, पूज्यता स्वतः ही प्राप्त हो जाएगी। इसमें प्रयास की आवश्यकता नहीं है। यदि किसी उच्च वर्ण के व्यक्ति में ये भाव आ जाए कि हमें उच्च वर्ण के आधार पर लोग सम्मानित समझें, पूज्य मानें तो ये पूज्यता के अहंकार का प्रतीक है। यह उच्च वर्ण के लोगों में अथवा उन लोगों में रहता है जो अपने को वर्णाश्रम धर्म के आधार पर पूज्य मानते हैं।

**ण– आश्रम का अहंकार–** आश्रम के चार भेद हैं जिन्हे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास कहा जाता है। संन्यास आश्रम सभी आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है। संन्यास आश्रम में भी कई शाखाएं हैं उनका शास्त्रों में उल्लेख आता है। मनुष्य जब सांसारिक कार्यों से, जगत के प्रपंचों से अपने को निवृत करना चाहता है तो वह संन्यास धर्म की दीक्षा ले लेता है। संन्यास धर्म की दीक्षा लेकर मनुष्य स्वतः ही पूज्य हो जाता है। उसे पूज्यता की आवश्यकता नहीं रहती। साधु सन्तों को

हमारे समाज के लोग पर्याप्त सम्मान देते है। आपने देखा होगा की लोग पूज्य सन्तों को प्रातः स्मरणीय मानकर जागरण के समय स्मरण करते हैं। ऐसी मान्यता है कि पूज्य सन्तों के दर्शन से ही पापों का विनाश हो जाता है। ये परम्परा आदिकाल से रही है और आज भी जीवित है। जब तक संसार है तब तक जीवित रहेगी। सन्तों की पूज्यता का तथ्य सभी स्वीकार करते हैं। इनके कार्यो को अपने व्यवहार में लाते हैं। सन्तजन जो बताते हैं हम वैसा ही व्यवहार करने का प्रयास करते हैं और हमे ऐसा करना भी चाहिए। साधु–सन्त ही हमारे वास्तविक तथा कल्याण के मार्ग के पथ प्रदर्शक हैं। एक सन्त अपने को पूज्य समझकर श्रेष्ठ मानकर अपना सम्मान करवाना चाहता है तो वह आश्रम की श्रेष्ठता के अहंकार से आवृत हो जाता है। इस प्रकार की श्रेष्ठता का प्रदर्शन कभी–कभी समाज में भी होता रहता है। सन्तों का भी पारस्परिक विवाद श्रेष्ठता के लिए चलता रहता है। ये सब आश्रम की श्रेष्ठता का अहंकार है।

**त– ज्ञान का अहंकार–** ज्ञान का अहंकार एक विशेष प्रकार का अहंकार है जो लगभग प्रत्येक व्यक्ति के पास पाया जाता है। किसी भी क्षेत्र के विशिष्ट जानकार

लोगों में ये विशेषकर पाया जाता है। हम जब लौकिक ज्ञान के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेते हैं तो हम उस क्षेत्र के विशेष व्यक्तियों में गिने जाते हैं। हमारी ये विशेष गणना हमें ज्ञान के अहंकार से आवृत कर देती है। अपने क्षेत्र में जितनी विशेषता हमें प्राप्त होती है उतना ही हमारा ज्ञान का अहंकार तीव्र होता जाता है। इस कारण इस ज्ञान के अहंकार की विशेष चर्चा आवश्यक है। ज्ञान को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–क–लौकिक ज्ञान, ख– पारलौकिक ज्ञान ।

**1. लौकिक ज्ञान–** पुराने समय में लौकिक ज्ञान को श्रेणीबद्ध किया गया था उसकी कुछ प्रस्तुति हम यहां कर रहे हैं–

1.व्याकरण 2. साध्यकल्प 3. इतिहास 4. पुराण 5. कर्मकाण्ड 6. गणित 7. उत्पात ज्ञान 8. निधि शास्त्र 9. निरूक्त 10 शिक्षा 11. कल्प 12. तर्कशास्त्र 13. नीतिशास्त्र 14.छन्द 15. ज्योतिष 16. धनुर्वेद 17 गारूण 18. संगीत 19. आयुर्वेद तथा ऋक, साम, यजु ,अथर्ववेद आदि ।

वर्तमान समय में लौकिक ज्ञान को श्रेणीबद्ध किया जाना असंभव है जैसे विज्ञान की कई शाखाएं हैं और प्रत्येक शाखा से विद्वान महानुभाव हैं। इसी प्रकार

चिकित्सा के अनेक प्रकार हैं। लगभग शरीर के प्रत्येक अंग के पृथक्–पृथक् चिकित्सा विशेषज्ञ हैं। कुछ विषयों का प्रस्तुतिकरण हम कर रहे है।

1.– गणित 2. विज्ञान 3. चिकित्सा 4. समाजशास्त्र 5. शिक्षा शास्त्र 6. राजनीति शास्त्र 7. कम्प्यूटर 8. कृषि विज्ञान 9. अंतरिक्ष विज्ञान 10. भाषा विज्ञान 11. भूगोल 12. सामुद्रिक शास्त्र 13. हस्त रेखा 14. संगीत 15. कला 16. अभिनय 17. कर्मकाण्ड 18. साहित्य तथा विज्ञान की अनेक शाखाऐं आदि आदि।

आज के विषयों की कुछ झलक प्रस्तुति की गई। प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्ट ज्ञान और जानकारी रखने वाले महानुभाव उपलब्ध हैं। अपने किसी क्षेत्र का ज्ञान रखना और और ज्ञान को श्रेष्ठ समझकर अहंकार करना ज्ञान का अहंकार कहा जाता है। मनुष्य के मन में ये भाव रहता है कि हम अमुक क्षेत्र कें विशेष जानकार हैं। विशिष्ट है, श्रेष्ठ हैं। ये श्रेष्ठता का भाव ही हमें ज्ञान के अहंकार से आवृत कर देता है।

## 2. पारलौकिक ज्ञान–

पारलौकिक ज्ञान में ब्रह्मविद्या का उल्लेख होता है। अध्यात्म के समग्र ज्ञान को इसमें रखा जा सकता है। अध्यात्मिक क्षेत्र के ज्ञान की कई शाखाऐं हैं। जैसे उपनिषद, दार्शनिक ग्रन्थ, योग, सांख्य, मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक तथा भगवद्गीता आदि। पारलौकिक ज्ञान में साधना का विशेष महत्व है। जब साधक कुछ अध्ययन से अथवा उक्त ग्रन्थों के स्वाध्याय से कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेता है। परमात्मा, आत्मा, प्रकृति, माया आदि के संबंध में जान जाता है तो उसे कुछ पारलौकिक ज्ञान का अहंकार हो जाता है। साधना के निम्न स्तर पर ये अधिक होता है। साधक अपने को ज्ञान के अहंकार के वशीभूत होकर पूर्ण ज्ञानी मानने लगता है। ये ज्ञान के अहंकार की विशेषता है और प्रबलता है। वास्तविक ज्ञान के अभाव में, मिथ्या ज्ञान के अवलम्बन से जो पारलौकिक ज्ञान की पूर्णता की मिथ्या प्रतीति होने लगती है वह एक प्रकार से ज्ञान का अहंकार ही है। ज्ञान के अहंकार की निवृत्ति वास्तविक ज्ञान से हो जाती है। सत्य की अनुभूति से हो जाती है। ये ज्ञान का अहंकार विशेष विद्वानों और साधुजनों में देखा जाता है। अध्यात्मिक जगत के मध्यम वर्गीय वक्ताओं में भी रहता है। उत्कृष्ट साधक ज्ञान के अहंकार से निवृत होने का प्रयास करता है क्योंकि वह सत्य के अति समीप पहुॅच जाता है।

## थ– परस्थितिजन्य तात्कालिक अहंकार–

हम सब परस्थितिजन्य तात्कालिक अहंकार के शिकार होते रहते हैं जैसे साधारण बातचीत में किसी प्रकरण को लेकर अपनी मिथ्या प्रस्तुति करना। किसी के द्वारा कहे गये वचनों का अभिमानपूर्वक उत्तर देना। किसी विशेष स्थान पर वाद–विवाद हो जाने पर अनावश्यक बातचीत करना। मर्यादाविहीन आचरण करना। समाज में किसी कारण से अथवा अकारण अपनी पहचान बनाने के लिए दंभपूर्ण बातें प्रस्तुत करना। किसी का अनावश्यक अपमान करना। अमर्यादापूर्ण आचरण से किसी को असम्मानजनक टिप्पणी करना। किसी के साथ अभद्रतापूर्ण व्यवहार करना। आवश्यकता रहने पर अथवा आवश्यकता न रहने पर भी अनावश्यक रूप से वाद–विवाद करना। चलते–चलते अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना तथा किसी के हित पर आक्रमण करना। किसी को अनावश्यक बातें बोलना आदि आदि परस्थितिजन्य तात्कालिक अहंकार के रूप में हैं। ये तथ्य सभी व्यक्तियों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इस अहंकार से आवृत व्यक्ति अनावश्यक चिंतन करता है और दूसरों को अपमानित करने के प्रयास में स्वयं भी अपमानित होता हैं। ये मनुष्य के लिए सबसे घातक अहंकार है। यह अहंकार असंयमित व्यक्तियों में विशेष होता है। तामसी गुणों से घिरे हुए निकृष्ट मनुष्यों में इसके लक्षण तत्काल प्रकट होते हैं।

## द– सिद्धाहंकार–

परमात्मा की अनुभूति करना, तत्त्व को प्राप्त करना सहज कार्य नहीं है। ये कार्य अत्यंत दुष्कर है । त्रिगुणीमयी माया जिसकी विवेचना आगे की जायेगी इसमें बड़ी बाधा पहुॅचाती है। हजारों मनुष्यों में कोई एक परमात्मा की प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं और उन यत्न करने वाले योगियों में कोई एक परमात्मा को तत्त्व से अर्थात् सम्पूर्णता से जान पाते हैं। ये तत्त्व की अनुभूति, उसकी उपलब्धता की दुष्तरता है। जो एक मात्र परमात्मा का ही निरंतर भजन कीर्तन करते हैं वे ही इस दुष्कर त्रिगुणीमयी माया को पार कर पाते हैं। इस कारण तत्त्व की प्राप्ति इतनी सहज नहीं है पर असंभव भी नहीं है। अनेक सम्मानीय महानुभाव अपने को स्वतः ही, स्वयं ही सिद्ध घोषित कर देते हैं। तत्त्व की प्राप्ति के बिना ही वे तत्त्वज्ञ समझने लगते हैं। ये सिद्धाहंकार का एक रूप है। सिद्धाहंकार से ग्रसित व्यक्ति अपने को ईश्वर की उपाधि से विभूषित करने लगता है। ईश्वर जैसा सर्वशक्तिमान भगवान जैसा व्यवहार करता है। ये सिद्धाहंकार की प्रबलता है।

## ध– शास्त्राहंकार–

भारतीय दर्शन में छः ग्रन्थों को मान्यता है जिन्हें वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय तथा वैशेषिक कहा जाता है। मनीषी जन भक्ति दर्शन को भी दार्शनिक ग्रन्थ मानते हैं। उक्त छः दार्शनिक ग्रन्थों को क्रमशः महार्षि वेदव्यास, पतंजलि, जैमिनी, कपिल, गौतम तथा कणादि ने लिखा है। ये समस्त ग्रन्थ सूत्र रूप में हैं। उनकी व्याख्या प्रसांगानुकूल अनेक विद्वानों ने की है, जिनमें पर्याप्त विषमतायें भी हैं। विद्वान पुरूष जब सभी दर्शनों का अध्ययन कर लेता है तब वह अपने को विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित करता है। दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन जिस भाष्य से करता है, उसके मत की प्रमुखता उसमें देखी जाती है। शास्त्र के अध्ययन से दो प्रकार के अहंकार उत्पन्न होते हैं कि मैं समस्त दार्शनिक ग्रन्थों का ज्ञाता हूॅ तथा दर्शन के समस्त मतों में मेरा मत सही है। ये शास्त्राहंकार साधारणतया तो रहता है परन्तु यदि परमात्मा की साधना की ओर बढ़ा जाये तो संशय स्वतः ही समाप्त हो जाता है। शास्त्रार्थ को शास्त्राहंकार में गिना जाता है। अर्थात् शास्त्रज्ञ व्यक्ति में शास्त्रार्थ की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। वह अपनी तर्क विधि से दूसरों को निकृष्ट मानता है। अपने को विद्वान मानने की भावना भी शास्त्राहंकार का ही रूप है।

## न– वेदाहंकार–

वेदों में तीन तत्वों का विशेष वर्णन है एक कर्म ,उपासना और ज्ञान का। कर्म काण्ड में अनेक प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान का वर्णन है। ज्ञान काण्ड में उपनिषदों का उल्लेख होता है। उपनिषद ब्रह्मविद्या के सर्वाधिक तथा उत्कृष्ट एवं प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेदों में कर्म काण्ड की विधि का विस्तार से वर्णन है। शास्त्रीय यज्ञों के अतिरिक्त जितने प्रकार के यज्ञ तथा वैदिक अनुष्ठान होते हैं वे सबके सब वेदों की ऋचाओं के आधार पर ही होते हैं। कर्मकाण्ड के विद्वान उन्हीं के आधार पर यज्ञों का संम्पादन करते हैं, वर्तमान समय में कर्म काण्ड की उचित रीति के ज्ञान का अभाव सा हो गया है। इसी कारण वैदिक अनुष्ठानों का उचित परिणाम भी नहीं प्राप्त हो रहा है। मैं वैदिक अनुष्ठान का विद्वान हूॅ, मैं ही सम्यक्रूपेण यज्ञ का अनुष्ठान करा सकता हूॅ यह भाव कर्म काण्ड के विद्वानों में आ जाता है तो उसे वेदाहंकार कहते हैं। आपने भी यज्ञों के समय कर्मकाण्डीय विद्वानों में पर्याप्त वाद–विवाद तथा मतभेद देखा होगा। ये वेदाहंकार का ही रूप है।

**प– योगाहंकार–** महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन नाम के ग्रन्थ की रचना की। इस योग विषयक ग्रन्थ में योग से समाधि प्राप्ति का विस्तार से वर्णन है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाऐं उपलब्ध हैं जैसे व्यास भाष्य तथा इस व्यास भाष्य पर वाचस्पति मिश्र की तत्त्व वैशारदी टीका और विज्ञान भिक्षु की वार्तिकी नामक टीका। इसके अतिरिक्त योग संग्रह ,भोज वृत्ति, मणिप्रभा, योग सुधाकर, पतंजलि योग प्रदीप आदि ग्रन्थ भी योग दर्शन के भाष्य के रूप में उपलब्ध हैं। उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त भी अनेक विद्वानों ने योग दर्शन पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन् किया है। जब कोई साधक इस ग्रन्थ के आधार पर यम नियमादि अस्ंटाग योग का आश्रय लेकर यौगिक क्रियाओं का सम्पादन करता है तो उसके मन में योगी होने का अहंकार जाग्रत हो जाता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्त वृत्तियों के अवरोध को ही योग कहते हैं। इस आधार पर जो सम्पूर्णता से चित्त वृत्तियों को रोक लेते हैं वही योगी कहे जाते हैं। इस कारण चित्त की वृत्तियों को सम्पूर्णता से रोके बिना अपने को योगी मानना योगाहंकार है।

## फ– देवोपासनाहंकार–

परमात्मा ने ब्रह्माण्ड की सुचारू व्यवस्था के लिए अनेक लोकों में देवताओं की नियुक्तियॉ की हैं मनुष्य का कर्तव्य है कि वह देवताओं की उपासना करके उनकी पुष्टि के लिए यज्ञादि अनुष्ठान करे। आज के परिवेश में देवी–देवताओं की उपासना का सम्पादन बढ़ा है। लोगों में मां दुर्गा के विभिन्न रूपों, संकट मोचन हनुमान जी तथा भगवान शंकर की उपासना की भावना जाग्रत हुई है। विशाल स्तर पर आज के समाज में उनकी उपासना का आयोजन हो रहा है। ये धर्म के प्रति बढ़ते रूझान का प्रतीक है। उपासना से मानव का कल्याण होता है। देवताओं को परमात्मा के द्वारा कुछ अधिकार प्रदान किये गये हैं जो देवगण अपनी उपासना में संलग्न भक्तों को प्रदान कर देते हैं । यह सबका सब स्वाभाविक रूप से होता है। हम देवताओं की उपासना करेंगें तो उसका परिणाम हमें स्वतः प्राप्त हो जाएगा। देवताओं की उपासना हमें सकाम भाव से कभी नहीं करनी चाहिए। जो भक्त सकाम भाव से देवताओं की उपासना करते हैं वे देवोपासना के अहंकार से आवृत हो जाते हैं। वे समझते हैं कि हमने देवताओं की उपासना से विशेष शक्ति प्राप्त कर ली है। शक्ति यदि प्राप्त भी हो जाए तो उसका उपयोग हमें अहंकार के भाव से कदापि नहीं करना चाहिए। सकाम भाव से किसी के अहित के लिए जब हम देवोपासना करते हैं तो इस प्रकार के अहंकार से आवृत हो जाते हैं।

## ब– भूत–प्रेत उपासना अहंकार–

वर्तमान में तथा अतीत में भी तांत्रिक साधना का अर्थात् भूत–प्रेत आदि की उपासना का बड़ा महत्व रहा है। तांत्रिक साधनों से लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं। वर्तमान में भी भूत–प्रेतादि की उपासना चल रही हैं। भारत वर्ष एक श्रद्धा प्रधान देश हैं। गांव–गांव में यहां तक की प्रत्येक ग्राम में पीपल के वृक्षों पर, अन्य स्थानों पर इन अव्यक्त शक्तियों की उपस्थिति और उनके प्रकट होने की कहानियां प्रचलित हैं। भारतवर्ष में सम्भवतः ही कोई ऐसा गांव होगा जहां पर अतीत में हुए पुरूषों के संबंध में भूत–प्रतादि के बारे में कहानियां प्रचलित न हों। जब कोई तांत्रिक व्यक्ति भूत–प्रेतादि की उपासना करता है तो वह दूसरों के अहित के लिए अधिक करता है। समाज के कल्याण के लिए ऐसी उनपासनाऐं नहीं होती हैं। भूत–प्रेतादि की उपासना को शास्त्रों में तामसी उपासना माना जाता है और उसका निषेध भी किया गया है। जो तांत्रिक भूत–प्रेतादि की उपासना करते हैं वह तामसी होने के कारण अहंकार में डूबे रहते हैं कि हमारे पास शक्ति है, मैं ऐसा वैसा कर सकता हूॅ। तांत्रिक उपासना का अनुष्ठान करवाने कें लिए तामसी स्वभाव के लोग तांत्रिकों के पास जाते हैं इस कारण वे भी अहंकार से आवृत रहते हैं। इस प्रकार आयोजक तथा अनुष्ठान करने वाले तात्रिक भी भूत–प्रेतादि उपासना अहंकार से आवृत हो जाते हैं। दूसरों के अहित के लिए इस प्रकार की साधना त्याज्य है।

## भ– सिद्धि का अहंकार–

शास्त्रों में अणिमा, महिमा,लघिमा, प्राप्ति, प्राकाट्य, इशिता, वसिता आदि आदि सिद्धियों का वर्णन आता है। इसके अतिरिक्त शरीर में भूख–प्यास को समाप्त करना, बहुत दूर की वस्तुओं को देख लेना, बहुत दूर स्थित व्यक्ति से वार्तालाप कर लेना, अपनी कामना के अनुसार अपने वेश को परिवर्तित कर लेना, दूसरों की काया में प्रवेश कर जाना अपनी मृत्यु पर नियंत्रण कर लेना, पारलौकिक जगत के देवताओं की क्रीड़ाओं को देख लेना, प्रकृति को आदेश देने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेना। इन उपरोक्त सिद्धियों के प्रकारों का वर्णन शास्त्रों में आता है। वैसे सिद्ध पुरूषों में अहंकार की शून्यता हो जाती है, जो सिद्धि प्राप्त होने तक ही रहती है। चूंकि सिद्धि की प्राप्ति सिद्ध को ही होती है और सिद्ध में अहंकार का समूल विनाश हो जाता है, परन्तु जो सिद्धि प्राप्त पुरूष नहीं हैं वे सिद्धि प्राप्त होने का ढोंग पाखण्ड कर लेते है। ये ढोंग पाखण्ड ही सिद्धि का अहंकार कहा जाता है। इस प्रकार का अहंकार असिद्ध पुरूषों में विशेष रूप से होता है।

## म– ज्योतिषाहंकार–

उपनिषदों में विद्या को दो भागों में बांटा गया है। जिन्हें परा विद्या तथा अपरा विद्या कहा जाता है। अपरा विद्या के दस अंग हैं। 1. ऋक 2. साम 3. यजु 4. अथर्व 5. शिक्षा 6. कल्प 7. व्याकरण 8. निरूक्त 9. छन्द 10.ज्योतिष कहते हैं। ज्योतिष की परिभाषा में कहा गया है कि ग्रह और नक्षत्रों की स्थिति तथा गति और उनके संबंध को ज्योतिष कहा जाता है। ज्योतिष नामक अपरा विद्या में ग्रहों तथा नक्षत्रों की स्थिति कहां है और उनकी गति कहां है ? इस तथ्य का अध्ययन होता है। हमारे देश के ज्योतिष के विद्वानों ने बहुत आश्चर्यजनक खोज ज्योतिष के क्षेत्र में की है। जैसे सूर्य की किरणें भूमध्य रेखा पर पड़ती हैं इस घटना को विषुभअयन कहा जाता है। ये घटना पच्चीस हजार आठ सौ सत्ताइस वर्षो के उपरान्त होती है। ये जानकारी सर्वप्रथम भारतीय ज्योतिष के वेत्दताओं ने प्रेस्तुत की थी। इसी प्रकार अन्य प्रकार की जानकारियां सर्वप्रथम भारतीय ज्योतिष शास्त्र द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। साठ संवत्सरों का वर्णन और उन्हें तीन भागों में (ब्रम्हविशंतिका, विष्णुविशंतिका, रूद्रविशंतिका) में विभाजन, छः ऋतुओं तथा प्रत्येक ऋतुऐं सूर्य का मकर कुम्भ मीन–मेष आदि राशियों में संचरण, सत्ताइस प्रकार के योगों का वर्णन, अश्विनी, भरणी, कृतिका,राहिणी आदि सत्ताइस नक्षत्रों का वर्णन मेष, वृष,मिथुन आदि बारह राशियों का वर्णन विस्तृत रूप से ज्योतिष विषय में किया गया है। आज ज्योतिष को मनुष्य का भविष्य बताने वाले विज्ञान के रूप में लोग जाते हैं। ज्योतिष के विद्वान अपने को भविष्य वक्ता के रूप में अपने को प्रस्तुत करते हैं। जो महानुभाव ज्योतिष का ज्ञान रखते हैं उनके अंतःकरण में भविष्यवक्ता का अहंकार आ जाता हैं जिसे ज्योतिषाहंकार कहते हैं। मैं भविष्य वक्ता हूॅ, ऐसा अभिमान आना ही ज्योतिषहंकार है।

**य–वाचिक अहंकार–** मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा तीन प्रकार से कर्म करता हैं। कुछ लोगों को आपने विशेष रूप से देखा होगा कि जो कला, साहित्य, विधि, राजनीति, शिक्षा आदि के क्षेत्र में विशेष जानकारी रखते हैं। एक अभिनेता अपनी वाणी से ही लोगों का मन मोह लेता है। हास्य, मधुर, गम्भीर, श्रृंगार आदि रशों से युक्त वाणी से लोगों को आकर्षित करता है। हास्य कलाकार अपनी वाणी से कैसे –कैसे प्रहसन प्रस्तुत कर लोगों को हॅसने के लिए बाध्य करता है। इसी प्रकार मधुर गीतों से लोग कितना आकर्षित हो जाते है? ये नित्य प्रति आपने देखा ही होगा। अन्य रसों के विषय में आपको स्वयं ही कल्पना कर लेनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त अध्यात्म क्षेत्र के वक्ताओं की प्रखरता का भी आपने श्रवण किया होगा। वे अपनी रोचक शैली, कथाओं, भजनों तथा संगीतमय प्रस्तुति से श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देते हैं। एक कवि की कविता भी श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देती है। कवि के मन की संकल्पनाओं की स्थिति के आधार पर ही यह उक्ति प्रसिद्ध है कि जहॉ न पहुॅचे रवि वहॉ पहुॅचे कवि। साहित्य के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक प्रतिभाएं हैं। कथा, कहानी, उपन्यास आदि अनेक विषयों पर साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। अनेक प्रख्यात साहित्यकारों की रचनाएं पढ़ने से उनके मन की संकल्पनाओं का सहजता से ही अनुमान किया जा सकता है। राजनीति के मूर्धन्य विद्वान संसद और विधान सभाओं में राजनीतिक विषयों पर कैसे कैसे तथ्य प्रस्तुत करते हैं? एक साधारण व्यक्ति ये निश्चय नहीं कर पाता की सही क्या है ? गलत क्या है? विभिन्न राजनीतिक दलों के तर्कों को सुनकर जनता भ्रमित हो जाती है। एक वाणी विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित होती है। एक मन तथा एक बुद्धि कभी –कभी पृथक्–पृथक् रहकर कभी एकाकार अर्थात् एक रूप होकर वाणी के रूप में साक्षात् प्रकट होती है। ये वाकेन्द्रिय की विशेषता हैं। जिन महानुभावों का विभिन्न क्षेत्रों में अधिकार होता है वे अपने ज्ञान के कारण वाचिक अहंकार के शिकार हो जाते हैं। कोई उत्कृष्ट प्रस्तुति करें और वह वाचिक अहंकार से प्रभावित न हो यह असंभव जैसा है। इसे ही अहंकार की प्रबलता कहते हैं।

**र– भगवद् भक्ति अहंकार–** जब साधक भगवान की भक्ति करता है तब निम्न स्तर पर उसे भगवान की भक्ति का अहंकार हो जाता हैं। वह भगवान का भक्त है उसे यह भान रहता है। ये स्थिति तब तक रहती है जब तक साधक उत्कृष्ट साधना की ओर उन्मुख नहीं होता है। एक सामान्य साधक कभी–कभी भगवान की भक्ति को प्रकट भी करता हैं परन्तु उच्च कोटि के साधक भगवान की भक्ति का अहंकार कदापि नहीं करता है। वह तो भगवान को प्रिय होता है और भगवान भी उसे प्रिय होते हैं। वह भगवान का होता है और भगवान उसके होते हैं। वह भगवान के प्रति अपने प्रेम स्नेह को भगवान के समक्ष प्रकट करता है संसार के समक्ष नहीं। ये तथ्य भगवद् भक्ति के अहंकार से मनुष्य को निवृत रखता है।

उपरोक्त प्रकार से कुछ अहंकारों का वर्णन हुआ कुछ चर्चा हुयी इसके अतिरिक्त भी अहंकार निश्चित रूप से हैं, तथा उसके अनेक प्रकार भी हैं। यह अहंकार की विविधता और प्रखरता हैं। उत्कृष्ट साधक अन्य अहंकारों के प्रकारों पर विचार करके उनसे सजग रहकर अहंकार की निवृत्ति का प्रयास करता है।

## 3– अहंकार के सहधर्मी तत्त्व दंभ तथा दर्प–

दंभ तथा दर्प भी अहंकार के सहधर्मी तत्त्व हैं। किसी मनुष्य की जो वास्तविक स्थिति है चाहे वह धन–सम्पत्ति, प्रतिष्ठा,ऐश्वर्य आदि के बारे में हो अथवा चाहे वह ज्ञान भक्ति के संदर्भ में हो उस वास्तविक स्थिति से अधिक की प्रस्तुति करना ही दंभ कहा जाता हैं और ऐसा आचरण दंभाचरण कहा जाता हैं। जैसे हमारे पास जो धन है और हम उस धन से अधिक होने का जब दिखावा करते हैं तो हम दंभ करते हैं । सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य जितना हमारे पास है उससे अधिक का दिखावा करना दंभाचरण है। जो पद हमारे पास है, उसमें जो अधिकार हमें मिले हुए हैं उससे अधिक की प्रस्तुति करना दंभ है। वैसे ही ज्ञान, भक्ति, सिद्धि आदि के बारे में स्पष्ट है। हमारे पास जो ज्ञान है, जितनी भक्ति है उससे अधिक की प्रस्तुति करना दंभाचरण है । ये एक प्रकार से अहंकार का रूप है अथवा इसकी अहंकार से सहधर्मिता है।

प्रत्येक व्यक्ति को ये ज्ञात रहता है कि उसके पास कितनी सम्पत्ति है? कितना धन है? कितनी प्रतिष्ठा है कितना ऐश्वर्य है? कितना ज्ञान है? इन उक्त वस्तुओं की अधिकता में मनुष्य के व्यवहार में बातचीत में, आचरण में अंतर आ जाता है। वह ये प्रकट करता है कि हम विशिष्ट हैं। हमारे पास धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, सुन्दरता, ज्ञान औरों से अधिक है। इस तथ्य का ज्ञान उसे रहता है। सामान्य व्यक्ति अपनी स्थिति को समझता है परन्तु उससे अधिक की प्रस्तुति करना दर्प कहा जाता है। जैसे विशेष व्यक्तियों को सामान्य स्थान पर सामान्य व्यक्तियों की तरह रखा जावे तो उसका दर्प तत्काल प्रकट हो जावेगा की हम विशिष्ट व्यक्ति हैं और हमारा कोई विशेष ध्यान नहीं रखा गया। इसी प्रकार ज्ञानवान व्यक्तियों को भी कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता तो उनका दर्प भी प्रकट हो जाता हैं। दर्प जो प्रकट है वह प्रस्फुटित हो जाता है। इस प्रकार दंभ और दर्प भी एक प्रकार से अहंकार के सहधर्मी तत्त्व हैं।

## 4– अहंकार की निवृत्ति के उपाय–

अहंकार की निवृत्ति का कोई विशेष उपाय नहीं है परन्तु निरंतर साधन से अहंकार रूपी तत्त्व शनैः शनैः शरीर से गायब हो जाता है। जैसे गर्मी पाकर बर्फ पिघलती है वैसे ही निरंतर साधना की गर्मी से अहंकार रूपी दोष भी शरीर से बाहर हो जाता है। सिद्धावस्था के समीप पहुॅचा हुआ व्यक्ति अहंकार रूपी दोष से

पूर्ण निवृत हो जाता है। अहंकार निवृत्ति के कुछ बिन्दु प्रस्तुत हैं कृपया साधक उनपर विचार करें और उचित होगा की उनका व्यवहार भी करें।

**क**– हमारे शरीर में जो शक्ति है वह कहीं से हमें प्राप्त हुई है। समय के साथ उसका समापन निश्चित है। इस कारण जो वस्तु कहीं से प्राप्त है हमारी नही है और शीघ्र ही समाप्त होने वाली है उस पर हमें अहंकार नहीं करना चाहिए।

**ख**– हम जब पृथ्वी पर आए थे तो हमारे पास ऐश्वर्य नहीं था। जो विपुल सम्पदा हमें प्राप्त हुई है वह हमारे प्रारब्ध से प्राप्त हुई है। जो जन्म के समय नहीं थी और संयोगवश प्राप्त हुई है और मृत्यु के पश्चात् हमसे विलग होने वाली है। इस कारण विपुल सम्पदा और उसके ऐश्वर्य पर हमें अहंकार नहीं करना चाहिए।

**ग**– प्रतिष्ठा पूर्व में नहीं थी वो हमारे प्रारब्ध तथा शुभ कर्मों के पश्चात् प्राप्त हो गई है यदि हम भगवान की भक्ति तथा स्वाध्याय करते रहेंगे तो हमें प्रतिष्ठा प्राप्त रहेगी और भगवद् भक्ति रूप कर्मों का त्याग कर देंगे तो प्रतिष्ठा स्वयं ही समाप्त हो जाएगी। इस प्रकार हमें स्वाध्याय और शुभ कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त प्रतिष्ठा पर अहंकार नहीं करना चाहिए।

**घ**– सामाजिक, राजनीतिक, शासकीय, प्रशासकीय जो पद हमें प्राप्त हुआ है वह संयोग वश हमें प्राप्त हुआ है। वह हमारे अपने कर्मों का परिणाम है। जो पद है वह सदैव के लिए नहीं प्राप्त होता है आज है कल नहीं रह सकता है। इस कारण जो पद है उसमें जो हमें अधिकार प्राप्त हुए हैं उनका उपयोग हमें अपने स्वार्थ के लिए नहीं वरन् परमार्थ के लिए करना चाहिए जो पद क्षणिक सीमित समय के लिए हमें प्राप्त है उस पर हमें किसी प्रकार का अहंकार करना यथेष्ट नहीं है।

**ड़**– आपने किसी व्यक्ति को युवावस्था में देखा होगा और यदि उसे वृद्धावस्था में देखें तो पाएंगे कि जो सौन्दर्य युवावस्था में था वो वृद्धावस्था में स्वतः विलुप्त हो गया है। ऐसे विलुप्त होने वाले शारीरिक सौन्दर्य पर अहंकार करना यथेंष्ट नहीं है।

**च**– रावण ने जिन लोगों पर गर्व करके भगवान राम से शत्रुता की थी वे सबके सब युद्ध भूमि में मारे गये। मेघनाथ, कुम्भकरण जैसे योद्धा रणभूमि में ही समाप्त हो गये। यदि उसने अपने लोगों पर अहंकार न किया होता तो वह अपने को अकेला समझकर सम्भवतः युद्ध नहीं करता। लोगों की सामर्थ्य के आधार पर जो

जन बल का अहंकार हुआ करता है उसका स्वतः विनाश हो जाता है। इसलिए हमें कभी अपने जन बल का अहंकार नहीं करना चाहिए।

**छ–** परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार कार्य चलता हैं। हमारी सामर्थ्य के अनुसार नहीं चलता है। हम अपनी सामर्थ्य से कोई भी कार्य नहीं कर सकते हैं। इस सिद्धान्त को हमें निश्चित रूप से मानना चाहिए। यदि हम अपने सामर्थ्य से कोई कार्य कर सकते तो सम्भवतः हम पृथ्वी की समस्त वस्तुऐं प्राप्त कर लेते। इस कारण हममें कोई सामर्थ्य नहीं है ये विचार रखकर हमें अपने कर्तव्य करने का निर्वहन करना चाहिए। हमें अपनी सामर्थ्य पर अहंकार करना यथेष्ट नहीं है।

**ज–** हम चाहे किसी प्रतिष्ठित पद पर हों अथवा शासकीय, प्रशासकीय, अथवा न्यायिक पद पर हों, हमारे पास यदि कोई व्यक्ति अपनी समस्या लेकर आया है और वह हमारे सामर्थ्य में हैं, हमारे अधिकार क्षेत्र में है, तो हमें उसकी समस्या का निवारण अवश्य करना चाहिए। यदि हम उसके पक्ष को नहीं सुनते हैं तो हम उपेक्षा अहंकार के दोष से ग्रसित हो जाते हैं। उसका पाप हमें भुगतना पड़ता है। हमारा जो दायित्व है उसका निर्वहन हमें अवश्यमेव करना चाहिए। ऐसा न करने से हम उपेक्षा अहंकार के शिकार हो जाते हैं।

**झ–** परमात्मा ने हमें जो बुद्धि प्रदान की है, उसका हमें उपयोग करना चाहिए। मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह ज्ञान तथा अज्ञान के अंतर को समझे। कर्म और अकर्म के अंतर को जाने तथा कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध करे। जो सत्य है उसे समझे। अज्ञानतावश हमें अपने मत की असत्य प्रतिष्ठा हेतु हठ नहीं करना चाहिए। हमें सत्य के ज्ञान हेतु प्रयत्नशील होकर अज्ञान रूपी अहंकार का त्याग कर देना चाहिए।

**ञ–** हमारे अपने कर्मो के आधार पर हमारे प्रारब्ध का निर्माण होता है। प्रारब्ध के अनुसार ही हमें उच्च या निम्न कुल की प्राप्ति हो जाती है। ये सब स्वतः स्वाभाविक रूप से होता हैं। इसमें हमारा कोई प्रयत्न कार्य नहीं करता है। उच्च कुल में यदि हम उत्पन्न हो गये हैं तो वह प्रारब्धानुसार ही है। इस कारण हमें अपने उच्च कुल का अहंकार तो कभी नहीं करना चाहिए।

**ट–** हम जब किसी के द्वारा सम्मानित होते हैं तो उसमें पूज्यता के अहंकार की सम्भावना बढ़ती है। सम्मान और पूज्यता की मन में जब अभिलाषा आ जाती हैं तो

हमें अहंकार हो जाता है। अभिलाषा न रहने पर सम्मान और पूज्यता स्वतः प्राप्त होती रहती हैं और हम पूज्यता के अहंकार से भी निवृत रहते हैं।

**ठ–** ब्राह्मण सबसे उच्च वर्ण है। उच्च वर्ण होने के साथ परमात्मा ने उनके लिए सर्वाधिक दायित्वों की, कर्तव्यों की व्यवस्था की है। उच्च वर्ण को अपनी उच्च वर्णता का अहंकार तो कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसने यदि अपने कर्तव्यों का पालन किया तो उसका उच्चवर्ण सार्थक है। यदि नहीं किया तो गुण विहीन उच्चवर्णता का कोई अभिप्राय नहीं रहता। उच्चवर्णता प्रारब्ध के अनुसार ही प्राप्त होती है, बिना प्रारब्ध के कदापि नहीं मिलती। इस कारण हमें उच्चवर्णता का अहंकार नहीं करना चाहिए।

**ड–** भगवान का भक्त तो कभी अहंकार नहीं करता है। वह अहंकार रूपी दोष को भगवान को समर्पित कर देता है। भगवान की भक्ति में अहंकार को प्रवेश की अनुमति नहीं है। यदि अहंकार का प्रवेश हुआ तो वह भगवान की भक्ति नहीं है। यह विरोधाभास है। भक्ति और अहंकार एक दूसरे के प्रतिकूल तत्त्व हैं। वैसे ही जैसे प्रकाश अंधकार, ज्ञान अज्ञान हैं। भगवान की भक्ति जहॉ आ जाती है वहॉ अहंकार स्वतः विलुप्त हो जाता है।

**ढ–** भारतवर्ष में संन्यासियों की समता भगवान से की जाती है। वे भगवान के साक्षात् स्वरूप हैं, ऐसा समझकर उनकी उपासना भी होती है। इस कारण संन्यास आश्रम की उच्चता में अहंकार रखना यथेष्ट नहीं है।

**ण–** ज्ञान को प्रकाश स्वरूप कहा जाता हैं। चाहे लौकिक ज्ञान हो अथवा पारलौकिक ज्ञान हों। प्रत्येक प्रकार के ज्ञान की विशेषता है। इससे हमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। ज्ञानी व्यक्ति का अहंकार तो स्वतः ही समाप्त होने लगता है। ज्ञानी की परिभाषा में ये कहा जाता हैं कि जो अहंकार रहित है। वही वास्तविक ज्ञानी है। इस कारण ज्ञान के अहंकार का कोई अर्थ नहीं है।

**त–** उदासीनवत् व्यवहार, निरपेक्ष भाव से आचरण करना, किसी से उद्विग्न न होना, किसी को उद्विग्न न करना ये सब गुण परिस्थितिजन्य तात्कालिक अहंकार से स्वतः ही निवृत हो जाते हैं। जगत में क्या हो रहा है? क्या चल रहा है? इसका अनुभव हमें नहीं करना चाहिए। हम क्या कर रहे है? हमारी क्या चेष्टा है? ये दृष्टि रखनी चाहिए। दूसरों की चेष्टा पर उनके कार्य पर हमें अनावश्यक दृष्टि नहीं रखनी चाहिए तथा उनकी अनावश्यक क्रियाओं का उत्तर भी नहीं देना चाहिए। इस प्रकार हम तात्कालिक परिस्थितजन्य अहंकार से निवृत हो जाते हैं।

**थ–** सिद्धि का तत्त्व हमें स्वतः ही प्रतीत होता है। सिद्ध व्यक्ति हीरे की तरह अपनी चमक अंधकार में भी रखता है। सिद्ध को यह बताने की आवश्यकता नहीं रहती कि हम सिद्ध हैं उसकी सिद्धि स्वतः प्रतीत होती है,झलकती है। सिद्ध व्यक्ति में अहंकार की पूर्ण शून्यता हो जाती है। यदि किसी व्यक्ति में अहंकार की प्रतीति हो तो यह समझ लेना चाहिए कि वह सिद्ध नहीं है। सिद्ध में अहंकार रूपी दोष नहीं रहता।

**ध–** जो उत्कृष्ट साधक निरंतर साधना से, स्वाध्याय से शास्त्र के अर्थ को जान जाते हैं उनमें अहंकार का अभाव तत्काल हो जाता है। शास्त्रों का अर्थ शास्त्रों के स्वाध्याय से कम साधना से उत्पन्न भगवान की कृपा से अधिक स्पष्ट होता है। सन्त कबीर ने शास्त्रों के अर्थ को अध्ययन से नहीं साधना से जाना था। इस कारण हमारा भी यह मानना है कि भगवान के नाम के लगातार जप से और उसके स्मरण से शास्त्र के अर्थ की स्वतः प्रतीति होती हैं और शास्त्र अहंकार समाप्त हो जाता है।

**न–** देवताओं की उपासना में सम्यक् पूजा पद्धति का विशेष महत्व है। उचित पद्धति तथा उपासना की समुचित प्रकिया न होने पर फल की प्राप्ति में संदेह रहता है। इस कारण वैदिक यज्ञों के अनुष्ठान करने वाले महानुभाव के लिए यथेष्ट है कि वह अहंकार का त्याग कर देवताओं की उपासना की प्रकिया को ठीक'–ठीक समझें और उसका सम्यक्रूपेण से सम्पादन करायें ऐसा करने से वेदों के अहंकार की निवृत्ति हो जाती है।

**प–** जो मनुष्य द्वेष तथा आकांक्षा का पूरी तरह से त्याग कर देता है वह नित्य योगी कहा जाता है। परमात्मा में भक्ति सहित अपना मन लगाकर जो भजन करते हैं वे सब में श्रेष्ठ योगी कहलाते हैं। जो मनुष्य अपने शरीर की तरह दूसरों के शरीर को देखता है तथा सुख और दुख का अनुभव अपने शरीर की तरह दूसरों के शरीर में भी करता है वह परमयोगी कहा जाता है। योगी, सर्वश्रेष्ठ योगी, परम योगी के अहंकार की निवृत्ति स्वतः हो जाती है।

इस कारण योग पर आरूढ़ अथवा योगी की ओर किसी प्रकार उन्मुख अपने को योगी समझने वाले किसी व्यक्ति को उपरोक्त स्थितियॉ प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योकि उक्त स्थितियॉ प्राप्त होने पर अहंकार की निवृत्ति अपने आप हो जाती है।

**फ–** देवताओं की पूजा उपासना उनका यजनपूजन प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य कर्म हैं। हमें निष्काम भाव से देवताओं की उपासना करनी चाहिए। देवताओं की उपासना करने से देवगण अपने अधिकार में उपलब्ध परिणाम और फल तत्काल प्रदान कर

देते हैं। इसमें सकाम भाव रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। निष्काम भाव से उपासना करने से हम देवताओं के उपासना रूपी अहंकार से स्वतः ही निवृत हो जाते हैं। सकाम भाव से उपासना करने से ही अहंकार रहता है। इस कारण देवोपासना रूपी अहंकार से निवृत होने के लिए हमें देवताओं की निष्काम भाव से उपासना करनी चाहिए।

**ब**– भारतवर्ष में श्रद्धा प्रधान देश में भूत प्रेत उपासना आज भी बड़े पैमाने पर होती है। लोग उसमें विश्वास करते हैं। यद्यपि इसका परिणाम अहंकार और अज्ञान ही है। शास्त्रों में भूत प्रेत उपासना को निषिद्ध माना गया है। इस कारण कि भूत प्रेत की उपासना वाले मृत्यु के उपरान्त भूत प्रेतों को ही प्राप्त हो जाते हैं। कोई व्यक्ति जो भगवान की ओर उन्मुख है वह भूत प्रेतों की सानिध्यता में नहीं आना चाहेगा। इस कारण भूत प्रेतों की उपासना का त्याग करके हमें भूत प्रेत रूपी उपासना के अहंकार से निवृत हो जाना चाहिए।

**भ**– जिस प्रकार की सिद्धियों का वर्णन शास्त्रों में आता है वह अनायास ही प्राप्त नहीं होती। सिद्धि साधना के उच्चतम स्तर पर ही जाकर प्राप्त होती है। साधना की उच्चावस्था में पहुॅचे मनुष्य को सिद्धियों की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती वे स्वतः ही उपलब्ध हो जाती हैं। ऐसा ही नियम हैं। ऐसे उत्कृष्ट साधकों में अहंकार का स्वतः ही अभाव सा हो जाता है। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त होने पर अहंकार का विनाश स्वयं ही हो जाता है।

**म**–एक मात्र परमात्मा ही भूत, भविष्य और वर्तमान को जानता है इस कारण उसे त्रिकालज्ञ कहा जाता है। **समतीतानि, वर्तमानानि तथा भविष्याणि** के समस्त प्राणियों से वह परमात्मा ही परिचित है। इस कारण हमें अपने किसी प्रकार के भविष्य, वर्तमान और अतीत के तुच्छ ज्ञान के अहंकार से आवृत नहीं होना चाहिए। ज्योतिष के मर्मज्ञों में एक सीमा तक ही ज्ञान होता है। वे त्रिकालज्ञ नहीं हो सकते और न ही होते। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर हमें ज्योतिष अहंकार से निवृत होना चाहिए।

**य**– किसी विषय के विशिष्ट ज्ञान के पश्चात् जब उसे हम वाणी से प्रकट करते हैं तो हमें वाचिक अहंकार हो जाता है। यह स्वतः स्वाभाविक होता है। हम मात्र किसी विषय के एक अथवा कई विषयों के जानकार हो सकते हैं परन्तु परमात्मा तो समस्त ज्ञानों का प्रदाता है और जानने वाला है। हम उसके समक्ष तुच्छ हैं। ये भाव जब दृढ़ हो जाता है तो हम वाचिक अहंकार से निवृत हो जाते हैं।

## 5. अहंकार निवृत्ति के विशेष साधन –

अहंकार निवृत्ति के कुछ विशेष साधनों को प्रस्तुत किया जा रहा हैं कृपया आप इन पर गम्भीरता पूर्वक विचार करे।

**क–** यह मानव शरीर हमें प्राप्त हुआ है, वह निरंतर मृत्यु की ओर अग्रसर है। पल प्रतिपल, क्षण प्रतिक्षण इसकी गति मृत्यु की ओर हो रही है इस कारण यह तुच्छ है, विनिष्ट होने वाला है। इसलिए इस शरीर पर अहंकार करना तुच्छता है।

**ख–** जो धन, सम्पदा, ऐश्वर्य, पद, प्रतिष्ठा, सम्मान हमें प्राप्त हुआ है वह समय के साथ समाप्त होने वाला है। बहुत विचार करने पर इसका क्षणिक अस्तित्त्व हमें प्रतीत होगा। इस कारण हमें जो भी कुछ प्राप्त हुआ है, वह तुच्छ है। स्वतः न त्यागने पर इसका विनाश अवश्यसम्भावी है। इस कारण इसका त्याग करना यथेष्ट है।

**ग–** हमारे मन और बुद्धि में जो ज्ञान उपलब्ध है वह अत्यंत ही तुच्छ है । परमात्मा के ज्ञान के समक्ष उसकी कोई गणना नहीं हैं। इस कारण अपने ज्ञान का अहंकार हमें कदापि नहीं करना चाहिए। ज्ञान के तुच्छ अहंकार से हमें निवृत्त रहना चाहिए।

**घ–** हमारे परिवारीजन, सम्पर्कित और संबंधी लोग जो हमारे सम्पर्क में हैं वे सबके सब संयोग वश हमें प्राप्त हैं। संबंध में हैं। इस कारण इनसे ममता और आसक्ति का परित्याग करके हमें अपने कर्तव्य कर्मो का निर्वहन करना चाहिए। इससे अहंकार की उत्पत्ति नहीं होती

**ड़–** सांसारिक वस्तुओं का, भोग पदार्थो के संचय का एकत्र करना अहंकार का प्रमुख हेतु है। परिश्रमपूर्वक हमें वस्तुऐं स्वतः ही उपलब्ध हो जाती हैं। इस कारण संचय वृत्ति के त्याग से अहंकार की निवृत्ति हो जाती है।

**च–** हममें जिस–जिस कारण से अहंकार है जिस–जिस वस्तु पर है। उस कारण और वस्तु की क्षण भंगुरता को समझना चाहिए और उसके विनाशशील धर्म का स्मरण करना चाहिए। इससे भी अहंकार की निवृत्ति हो जाती है।

**छ–** सांसारिक वस्तुओं के त्याग से शांति की उपलब्धी स्वतः हो जाती है। शांति प्राप्त होने पर अहंकार भी निवृत हो जाता है। इस कारण सांसारिक वस्तुओं के त्याग से शांति को प्राप्त करके हमें अहंकार से निवृत हो जाना चाहिए।

**ज–** परमात्मा के निरंतर स्मरण से, उसके नाम जप से अहंकार अवशेष नहीं रहा जाता हैं क्योंकि नित्य स्मरण से और नाम जप से हमें परमात्मा की सानिध्यता प्राप्त हो जाती है। परमात्मा की सान्निध्यता से अहंकार रूपी दोष स्वतः भाग जाता है। इसका एक कारण है कि शरीर में जो भी दोष हैं वह परमात्मा की निकटता से स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। इस कारण हमें परमात्मा का नित्य निरंतर स्मरण और जप करके अहंकार से निवृत हो जाना चाहिए। ये अहंकार की निवृत्ति के विशेष साधन है।

## 24. अहंकार के संबंध में कुछ विशेष तथ्य–

## क– अहंकार से मैं तथा मेरेपन का आभास होता है–

ये मैं हूॅ यह मेरा है, ये तुम हो , ये तेरा है। इस प्रकार जो आभास है वो अहंकार के कारण ही होता है। ये प्रत्येक मनुष्य में रहता है। मैं हूॅ, ये मेरा है को ही अहंकार का स्वरूप समझने पर इससे निवृत होने का प्रयास साधक करता है। मैं और मेरेपन का आभास जब नहीं रह जाता है तो अहंकार से साधक को अपने को निवृत समझ लेना चाहिए। इस कारण अहंकार रूपी दोष की निवृत्ति का, परख का, साधन मैं और मेरापन ही है। यदि साधक में यह दोष है तो वह अंहकार से निवृत नहीं हुआ है यह निश्चित मानना चहिए। इसका एक सरल उपाय यह है कि जो वस्तुऐं हमारी हैं वे वस्तुतः हमारी नहीं हैं। यह प्रतीत होना अहंकार की निवृत्ति का लक्षण है। जब तक उनमें ममता और आसक्ति रहती है तब तक साधक को अहंकार से निवृत नहीं समझना चाहिए।

## ख– अहंकार सत् रज तम तीनों गुणों में रहता है–

प्रत्येक मनुष्य में तीन गुण होते हैं जिन्हे हैं सत् रज तम कहा जाता है। इस प्रकार अहंकार भी तीन प्रकार का हो जाता है। इसे सात्विक अहंकार, राजसी अहंकार ,तामसी अहंकार कहते हैं। सात्विक मनुष्यों में सात्विक अहंकार की प्रधानता रहती है। अध्यात्मिक क्षेत्र के शास्त्रज्ञ महापुरूष इस अहंकार से आवृत रहते हैं। राजसी अहंकार सांसारिक वस्तुओं के संचय करने तथा सांसारिक भोगों की उपलब्धता हेतु प्रयास करने वाले लोगों में होता है। तामसी अहंकार असामाजिक अधर्मी और दुष्कर्मी मनुष्यों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सात्विक मिश्रित राजस, राजस मिश्रित तामस, तामस मिश्रित सात्विक अहंकार भी पाये जाते हैं। कभी– कभी पुरूषों में दो प्रकार के अहंकारों की प्रतीति होती है। जैसे सात्विक

व्यक्ति सत्विक भोग वस्तुओं का संग्रह करना चाहता है यह मिश्रित अहंकार का परिणाम है।

## ग– अहंकार के धर्म हैं सुख और दुख की प्रतीति–

अहंकार के कारण ही हमें सुख और दुख की प्रतीति होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में दुख की अनुभूति होना और अनुकूल परिस्थितयों में सुख का आभास होना ये आभास अहंकार के कारण ही होता है। अहंकार से निवृत उत्कुष्ट साधक को इस कारण सुख और दुख की समानता की अनुभूति होती है। वह अनुकूलता में सुख का आभास कदापि नहीं करता और प्रतिकूलता में दुखों की प्रतीति नहीं देखता। अहंकार के धर्म के रूप में ही हमें सुख और दुख की प्रतीति होती है। इस कारण सुख और दुख अहंकार के

धर्म कहे जाते हैं। सुख और दुख की प्रतीति यदि व्यक्ति में समाप्त हो जाए तो समझना चाहिए अहंकार निवृत हो गया और वह मुक्ति की ओर जा चुका है। ये अहंकार की निवृत्ति की परख है।

## घ– अहंकार के कारण दृश्य जगत की मिथ्या प्रतीति होती है–

यह जगत सत्य नहीं है मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है। यह उक्ति प्रसिद्ध है। जगत सत्य क्यों नहीं है? मिथ्या क्यों है? इस पर प्रत्येक साधक को विचार करना चाहिए। ये जगत धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है। विगत लाखों वर्षों का जगत धीरे–धीरे समाप्त हो गया है। ये जगत जो हम आप देख रहे हैं वह भी समय के साथ समाप्त हो जाएगा। रहेगा नहीं, क्योंकि कल वाला जगत आज नहीं है। परन्तु हमें जो जगत प्रतीत हो रहा है, वह मिथ्या होकर भासता है। जो वस्तु है नहीं और भासती है प्रतीत होती है वह मिथ्या कही जाती है। इसी को मृगमरीचिका कहते हैं। जब तक अहंकार है तब तक जगत सत्य प्रतीत होता है और जब अहंकार समाप्त हो जाएगा तो जगत मिथ्या प्रतीत होने लगेगा। आपको जगत को मिथ्या दिखने वाली दृष्टि मिल जायेगी।

## ड़– अहंकार विकार है इस कारण अविकारी इसे जान जाता है–

अहंकार वास्तव में शरीर में एक विकार के रूप में है। जिस प्रकार शरीर में जब ज्वर होता है तब भोजन अच्छा नहीं लगता है और शरीर में मलिनता रहती है। ये भोजन का अच्छा न लगना और शरीर में मलिनता का रहना ज्वर रूपी विकार

के ही कारण है। वैसे ही शरीर में अहंकार एक विकार रूप है और यह अहंकार जब तक रहता है तब तक हम विकार रहित नहीं हो सकते हैं। इसकी प्रतीति तो हम कुछ समय के लिए कर सकते हैं ,परन्तु इस अहंकार रूपी विकार को यदि समग्रता से प्रतीति करनी है तो हमें स्वयं को अविकारी होना पड़ेगा। अविकारी पुरूष अहंकार को देखता है और वह इसे परख कर इस विकार से मुक्त होने का प्रयास करता है। जैसे हमारे नेत्र जब शरीर में कार्य करते हैं तब हम मार्ग को देखकर चलते हैं और यह जान लेते हैं कि ये मार्ग उचित है अथवा अनुचित है।

## च– अहंकार संसार बंधन का मूल कारण है–

अहंकार को हमारे बंधन का हेतु कहा जाता है। हम अहंकार के वशीभूत होकर नाना प्रकार के असामाजिक कार्य और दुष्कर्म करते हैं। स्पर्हायुक्त होकर अनेक प्रकार की भोग सामग्री के संचय में ही अपना जीवन समाप्त कर लेते हैं। यह आज हमने प्राप्त कर लिया है और कल हम प्राप्त कर लेंगे। आज हमारे पास इतना धन है और कल इतना हो जाएगा, ये वृत्ति रहती है। इस वृत्ति के अधीन हम कार्य करते है। जब तक इस कार्य का विचार रहता है तब तक बंधन रहता है। हम अनेक आशाओं में बंधें हुए घूमा करते हैं। ये बंधन ही है यह सब अहंकार के कारण ही होता है। इस कारण अहंकार को बंधन का हेतु कहा गया हैं।

## छ– अहंकार रूपी विष के शरीर में रहते मुक्ति की आशा व्यर्थ है–

मुक्ति अर्थात् मोक्ष में अहंकार ही मूल बाधा है। अहंकार से आवृत साधक मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। क्यों नहीं कर सकता है? ये भी विचारणीय है। अहंकार से आवृत मनुष्य में मैं और मेरे पन का भाव रहता है। यह भाव जगत से, जगत की वस्तुओं के सम्पर्क से तथा जगत के स्वामित्व के आभास से हमे आवृत रखता है। जब तक जगत का आभास है, उससे सम्पर्कता है ,संलिग्नता और सानिध्यता है तब तक हमें मुक्ति की आशा कैसे हो सकती है? कदापि नहीं हो सकती है। इस कारण अहंकार के रहते मुक्ति की आशा नहीं की जा सकती है।

## ज– अहंकार मल के कारण निर्मल आत्मा मलाक्षादित हो जाती है–

अहंकार को शास्त्रों में मल कहा गया है। जब तक यह मल रहता है तब तक आत्मा निर्मल होकर भी निर्मल नहीं रह सकती है। ऐसा माना गया है। जैसे

दर्पण में धूल जम जाने से दर्पण का प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं होता है दर्पण की स्पष्ट प्रतिबिम्ब के प्रदर्शन के लिए धूल के आक्षादन को हमें स्वच्छ करना पड़ता है। वैसे ही अहंकार रूपी दोष आत्मा को आक्षादित कर लेता है। इसे अहंकार की तीव्रता और प्रबलता ही समझना चाहिए और अहंकार रूपी मल को त्यागने का प्रयास करना चाहिए।

## झ– अहंकार के पूर्ण विनाश से संकल्पों–विकल्पों का अभाव हो जाता है–

मन की वृत्ति संकल्प है और बुद्धि की वृत्ति विकल्प है। अहंकार से युक्त मनुष्य नाना प्रकार के संकल्पों और विकल्पों में खोया रहता है। जैसे किसी ने कुछ कटु शब्दों से हमारा अपमान कर दिया। हम सक्षम होने पर उस अपमान को तत्काल प्रतिकार रूप में लेते हैं और हम भी अपने मन और बुद्धि का प्रयोग करके अर्थात् नाना प्रकार के संकल्प–विकल्प करके इसका प्रतिकार करते हैं। ये संकल्प और विकल्प घटना के उपरान्त भी चलता रहता है। ये अहंकार ही है जो हमें नाना प्रकार के संकल्प–विकल्प करने को बाध्य करता हैं। यदि हम सक्षम नहीं हैं तो उचित समय की प्रतीक्षा करते हैं और मन बुद्धि से ये विचार करते हैं कि हमें ऐसा करना है ,वैसा करना है। यह उचित है यह अनुचित है आदि आदि तथ्यों पर विचार कर संकल्प और विकल्प खोजते हैं। ये सबका सब अहंकार का ही रूप है। इस कारण जब तक अहंकार रहता है तब तक संकल्प और विकल्प समाप्त नहीं होते और अहंकार का समूल नाश नहीं हो सकता।

## ट– अहंकार के कारण ही कर्तापन का आभास रहता है–

कर्म मनुष्य नहीं करता है। गुण ही गुणों में बरत रहे हैं, इस कारण समस्त कर्म स्वतः ही होते रहते हैं। मनुष्य प्रकृति के अधीन रहकर कर्म करने को विवश है। ये सब तथ्य ये स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य कर्म नहीं करता है। यदि मनुष्य ये मान ले कि हम कर्म नहीं करते हैं तो कर्तापन के अहंकार से वह स्वतः ही निवृत हो जाता है। साधारणतया मनुष्य ये कहता है कि हमने ये कर्म किया है। सत् कर्मों को, निश्चित कर्मों को और असामाजिक कर्मों को करता है और अपने द्वारा किया हुआ मानता है। ये सामान्य तथ्य है। स्वार्थपरता का त्याग करके यदि हम कर्म करते हैं तो हम कर्मो के कर्तापन के अहंकार से निवृत हो जाते हैं। हम जो भी कार्य करते हैं, उसमें स्वार्थपरता का भाव रहता है और यह कर्तव्य और अकर्तव्य का भाव उत्पन्न कर देता है। अहंकार से निवृत होने पर हम किसी भी क्रिया का कर्ता अपने को नही मानते हैं और कर्तापन के भाव से निवृत हो जाते हैं।

## ठ– निवृत अहंकार चित्त के सम्पर्क से पुनः प्रस्फुटित हो जाता है–

अहंकार से निवृत होना इतना सहज नहीं है, फिर भी प्रयास से निरंतर दृष्टि रखने से हम अहंकार से निवृत हो सकते हैं। अहंकार से निवृत मनुष्य यदि पुनः सांसारिक संसर्ग में आ जाता है तो वह पुनः अहंकार से आवृत होने लगता है। चित्त एक ऐसा तत्त्व है जो अहंकार रहित मनुष्य को पुनः विचलित कर देता है। चित्त में पूर्व कर्मो की स्मृतियां संचित रहती हैं। इस कारण अहंकार जब भी चित्त के संयोग में आ जाता है तो वह पुनः प्रस्फुटित होकर अनेक प्रकार की विसंगतियां उत्पन्न का सकता है। इस कारण उत्कृष्ट साधक चित्त का प्रयोग नहीं करता है। अहंकार को चित्त के संसर्ग में नहीं आने देता है।

## 25. चित्त क्या है?

अनेक मनीषी अन्तःकरण में मन, बुद्धि, अहंकार के अतिरिक्त चित्त को भी अन्तःकरण का एक भाग मानते हैं। चित्त प्रमुखता से चिंतन करता हैं। चित्त की वृत्ति है चिंता और चिंतन। जब किसी वस्तु , विषय, घटना, पदार्थ के विषय में हम चिंतन करते हैं तो चित्त नामक तत्त्व ये चिंतन रूपी कार्य को सम्पादित करता है। उत्कृष्ट साधकों को चित्त की प्रतीति होती है। ध्यान योग के साधन में चित्त का विशेष वर्णन हुआ है। चित्त के विषय में विशिष्ट ज्ञान हेतु गीता ज्ञान के सातवें खण्ड का अध्ययन करना चाहिए और वहां से चित्त के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहिए।

## 26. परमात्मा की पराप्रकृति (जीव)–

परमात्मा की परा प्रकृति जीव (life element) है। परमात्मा चेतन स्वरूप है। वह अपने स्वरूप को असंख्य अंशों में बांट देता है। प्रत्येक अंश को जीव कहा जाता है। इसे जीवात्मा, शरीर, देही की सज्ञा भी दी जाती है। परमात्मा की अपरा प्रकृति इस मानव शरीर का निर्माण तो पंच महाभूतों से कर देती है परन्तु मानव शरीर निर्मित होने के पश्चात् इसमें चेतनता का अभाव रहता है। चेतनता के लिए परमात्मा अपना अंश जीवात्मा के रूप में मानव शरीर को प्रदान करता है। परमात्मा के अंश जीवात्मा की प्राप्ति जब शरीर को हो जाती है तब वह चेतन हो जाता है। माता के गर्भ में शरीर का निर्माण तो हो जाता है और मानव शरीर के पृथक्–पृथक् अंग हाथ–पैर, उदर, सिर आदि तो बन जाते हैं परन्तु उसमें गति

जीव के आने से होती है। वैसे नहीं हो पाती है। मानव शरीर से जीव जब बाहर हो जाता है तो उसे ही मृत्यु की संज्ञा दी जाती है और जीव के बाहर जाते ही ये पंच महाभूतों से बना हुआ शरीर चेतना विहीन होकर चेष्टा रहित हो जाता है। इस कारण मानव में जो चेतना है, गति है, चेष्टा है, क्रिया, प्रक्रिया है, विभिन्न अंगों में जो कार्य शक्ति है, मन बुद्धि में संकल्प विकल्प की शक्ति है, इन्द्रियों में विषयों को ग्रहण करने की जो क्षमता है और शरीर में जो पाचन, रक्त संचरण, मल उत्सर्जन की जो क्रियाएं हैं वे सबकी सब जीवात्मा के कारण ही होती हैं। जैसे ही जीव शरीर को छोड़ता है ये क्रियाऐं स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं और शरीर चेष्टा विहीन होकर निष्प्राण हो जाता है। ये परमात्मा की परा प्रकृति जीव की विलक्षणता है।

मानव शरीर की तरह कीड़ें, पशु–पक्षी, जलचर आदि जितने भी जीव हैं उन सबमें जो चेष्टा है, गति है, क्रिया–प्रक्रिया है वह भी परमात्मा के अंश जीव के कारण ही है। परमात्मा का अंश जीव वहीं हमारे शरीर में है वहीं कीड़े, पशु–पक्षी आदि यानियों में भी है। परमात्मा की अगाध कृपा से हमें यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है ऐसा शास्त्रों और साधु–सन्तों का निश्चित और स्पष्ट मत हैं। इसे हमें स्वीकार भी करना चाहिए। मानव शरीर बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है और उसका उपयोग हम सांसारिक भोगों, व्यर्थ कार्यों में न करके परमात्मा से स्नेह में करना चाहिए। वही जीवात्मा सभी में है इस कारण हम समस्त जीवों में सहधर्मिता है। जैसे ये कीड़े पशु, पक्षी हैं वैसे ही हम भी हैं। वे परमात्मा की सन्तान हैं और परमात्मा का अंश हैं वैसे ही हम भी परमात्मा का अंश हैं।

कुछ मनुष्यों का ये मत है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश नहीं है परन्तु जीवात्मा एक विलक्षण तत्त्व है। जीवात्मा की विलक्षणता को प्रत्येक मनीषी स्वीकार करता है तथा जीवात्मा शरीर का चेतन तत्त्व है ये भी मानता है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है इस तथ्य को गीता जी में **ममैवांशों** कह कर स्पष्ट किया गया है। मतभेद के विषय में हमें कोई विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि शरीर में चेतनता उसी जीव के कारण से हैं। ये तथ्य सभी लोग स्वीकार करते हैं। साधक को भी ये मतभेद से पृथक् रहकर उभयनिष्ठ मार्ग का अनुपालन करना चाहिए तथा शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा मानना चाहिए। ऐसा हमारा स्पष्ट अभिमत है। मतभेद पर चिंतन करने से और उसके बार–बार स्मरण करने से संशयरूपी तत्त्व उत्पन्न हो जाता है। ये संशयरूपी तत्त्व साधक के लिए प्रतिकूल है, लाभप्रद नहीं है। भगवद्गीता

सर्वमान्य ग्रन्थ है इस कारण अपने संशय की निवृत्ति इससे कर लेनी चाहिए क्योंकि वह साक्षात् ब्रह्मवाणी है और प्रकट गुरू स्वरूप है। हमारे जितने भी संशय साधना काल में रहें वे सबके सब गीता ज्ञान से स्वतः ही नष्ट हो गये। ये गीता ज्ञान की विशेषता है। आपके प्रत्येक प्रश्न के स्पष्ट उत्तर श्री गीता जी में उपलब्ध हैं। आप कोई प्रश्न विनम्र भाव से करेंगे तो उसका उत्तर आपको गीता जी में स्वतः ही प्रकट हो जाएगा। जीवात्मा के विषय में कुछ विशेष तथ्य प्रस्तुत हैं।

## क– जीवात्मा एक विलक्षण तत्त्व है–

जीवात्मा की विलक्षणता का आभास प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। वह परमात्मा का अंश होने के कारण अत्यंत विलक्षण है। परमात्मा सृष्टि का, ब्रह्माण्ड का निर्माण करता है परन्तु जीवात्मा वैसा नहीं कर सकती। परन्तु परमात्मा की सृष्टि रचना को चेतना रखती है इस प्रक्रिया को सृष्टि का धारण करना कहा जाता है। परमात्मा सृष्टि करता है और अपने अंश जीवात्मा से शरीर को चेतन कर देता है। जीवात्मा के कुछ विशिष्ट गुणों का उल्लेख गीता जी में हुआ है। वे गुण निम्न प्रकार हैं।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| **1.अविनाशी** | **2. अप्रमेय** | **3. नित्य स्वरूप** | **4. अजन्मा** | **5. शाश्वत** |
| **6. पुरातन** | **7. अच्छेद्य** | **8. अदाह्य** | **9. अक्लेद्य** | **10. अशोष्य** |
| **11. सर्वगत** | **12. अचल** | **13. स्थाणु** | **14. सनातन** | **15. अव्यय** |
| **16.अव्यक्त** | **17. अचिन्त्य** | **18. अविकारी।** | | |

जीवात्मा के गुणों की व्याख्या गीता ज्ञान के दूसरे खण्ड में विस्तार से की गई है वहॉ से इनका अध्ययन कर लेना चाहिए। उक्त जो जो गुण जीवात्मा के हैं वे सब के सब परमात्मा के भी हैं। जैसे मिट्टी से घड़े का निर्माण होता है तो मिट्टी के समस्त गुण घड़े में पाये जाते हैं। इसी प्रकार परमात्मा के समस्त गुंण जीवात्मा में भी पाये जाते हैं। जीवात्मा की विलक्षणता उसके गुणों से प्रकट होती है। उसका आभास साधक करता है। जीवात्मा के साक्षात्कार से परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। ये क्रमिक है और साधना का विषय है। जीवात्मा का साक्षात्कार इतनी शीघ्रता से नहीं किया जा सकता ये प्रत्येक साधक को स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए। आज कल ज्ञान को और तत्त्व को सहजता से बांटने का कार्य कतिपय संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है वह मात्र पाखण्ड ही है तथा मिथ्याचारिता है। अनेक भ्रमित शास्त्र प्रतिकूल साधनों का मिथ्या प्रलोभन देकर

तत्त्व दर्शन का जो नाटक हो रहा है वह मानव समाज के लिए हितकर नहीं है। सत्यता के नितांत परे है। इस संबंध में समस्त साधक महानुभावों से स्पष्ट कहना चाहूँगा की तत्त्व दर्शन अथवा ज्ञान इतना सहज नहीं है जिसे तत्काल किसी क्रिया प्रक्रिया से जाना जा सके। लोगों को भ्रमित करने वाली संस्थाओं से स्पष्ट अनुरोध है कि वह मिथ्या प्रचार कर साधकों को भ्रमित न करें नहीं तो परमात्मा की दण्ड व्यवस्था में दोष के भागी होंगें।

## ख– जीवात्मा किन–किन रूपों में प्रकट होती है–

जैसे परमात्मा अव्यक्त है परन्तु सृष्टि के रूप में व्यक्त होता है। वैसे ही जीवात्मा भी अव्यक्त है और वह विभिन्न प्रकार से व्यक्त होती है । जीवात्मा के अव्यक्त स्वरूप का उत्कृष्ट साधक आभास कर लेता है। उसका साक्षात्कार कर लेता है। जीवात्मा की व्यक्तता किन–किन रूपों में होती है, इस तथ्य के कुछ भावों का अवलोकन करें–

## 1.जीवों की चेतना के स्वरूप में–

जीवात्मा की व्यक्तता जीवों की चेतनता के स्वरूप में होती है। जितने भी जीवों का प्राणियों का हम दर्शन करते हैं उनमें जो चेतनता रहती है, गति रहती है, चेष्टा रहती है वह चेतन जीवात्मा का लक्षण है। जैसे ज्वर में शरीर तपता है अर्थात् शरीर का तापमान बढ़ जाता है। जैसे उच्च रक्तचाप में ह्दय की गति बढ़ जाती हैं तो शरीर के तापमान को देखकर हम ज्वर का अनुमान लगाते हैं और ह्दय की धड़कन को नाप कर रक्त चाप को जान लेते हैं। वैसे ही प्राणियों में चेतना है वह जीवात्मा के कारण है। चेतना जीवात्मा का लक्षण है। व्यक्त स्वरूप है। प्राणियों का शरीर यदि चेतन है तो हम उसमे जीवात्मा की उपस्थिति तथा उसमें जीवन को जान जाते हैं। इस प्रकार जीवात्मा का प्रकटीकरण होता है।

## 2.मन और बुद्धि के कार्य रूप में–

मन तथा बुद्धि के द्वारा जो कार्य होता है अर्थात् मन जो भी संकल्प करता हैं और बुद्धि जो विकल्प करती है वह सब का सब आत्मा के कारण ही है। मन का गतिमान होना, उसकी चंचलता, प्रमथनशीलता आदि आत्मा के कारण ही है। बुद्धि में विकल्प करने की शक्ति, निश्चयात्मक वृत्ति, बुद्धि की कार्यशक्ति विवेक सभी कुछ आत्मा से ही शक्ति पाता है। मन और बुद्धि से जो चिंतन का कार्य होता है

वह आत्मिक शक्ति के कारण होता है। विगत प्रकरण में मन बुद्धि की अनेक विलक्षणताओं और विशिष्टताओं का उल्लेख हुआ था वे सबकी सब विशिष्टताएं और विलक्षणताएं आत्मा के द्वारा ही मन बुद्धि को प्राप्त होती हैं। मन और बुद्धि आत्मा की शक्ति से कार्य करती है तथा उसके प्रकाश से प्रकाशित हैं। आत्मा का प्रकटीकरण इस कारण मन और बुद्धि के रूप में होता है।

## 3.ज्ञानेन्द्रियों की ज्ञानशक्ति के रूप में –

मानव के शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। कर्ण, नेत्र, जिह्वा, त्वचा तथा नासिका ये ज्ञानेन्द्रियां हम आप सभी में हैं और प्रतीत होती हैं। नेत्र का विषय देखना है। अर्थात् नेत्र जगत की वस्तुओं को देखकर हमें उनकी उपस्थिति, स्थिति, परिमाण आदि का बोध कराती हैं। कर्ण का विषय शब्द है। कर्ण अर्थात् कान हमें सुनने में सहायता करते हैं। जगत की वस्तुओं से शब्द के रूप में बोध कराना इसका कार्य है। यदि कान न होते तो हम दूसरों के द्वारा कहे गये शब्दों को सुन नहीं पाते। पक्षियों का चहचहाना, बादलों का गरजना पशुओं की विभिन्न प्रकार की आवाजें हम जान नहीं पाते। जीभ का गुण रस हैं। मधुर, कटु, खट्टा आदि छः प्रकार के रसों का ज्ञान हमें जिह्वा से होता है। हम जो भोजन करते हैं उसमें किस प्रकार का स्वाद है? ये ज्ञान हमें जिह्वा कराती है। त्वचा का गुण स्पर्श है।

सर्दी, गर्मी, कोमल कठोर आदि का ज्ञान हमें त्वचा नामक ज्ञानेन्द्रिय से होता है, ये सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई है। शरीर इससे ही आवृत है। इसी प्रकार नासिका का गुण सूंघना है। पृथक् पृथक् प्रकार की गन्धों का ज्ञान हमें नासिका के द्वारा ही होता है। इस प्रकार समस्त ज्ञानेन्द्रियों की कार्य करने की जो शक्ति है वह आत्मा के कारण ही है।

## 4. कर्मेन्द्रियों की क्रिया शक्ति के रूप में –

मानव शरीर में पांच कर्मेन्द्रियां हैं जिनका उल्लेख पूर्व में भी हो चुका हैं। हाथों से हम आदान–प्रदान का कार्य करते हैं और पैरों से हम चलते हैं और वाणी से हम बातचीत करते हैं और अन्य कर्मेन्द्रियों से भी जो कार्य होते हैं वह भी जीवात्मा के कारण होते हैं। इस प्रकार जीवात्मा कर्मेन्द्रियों को कार्य करने की शक्ति देती है। इस प्रकार जीवात्मा का प्रकटीकरण कर्मेन्द्रियों की क्रिया शक्ति के रूप में होता है।

## 5. पाचन और श्वसन आदि की क्रिया के रूप में –

मानव शरीर में पाचन और श्वसन की दो प्रमुख क्रियाऐं हैं। मनुष्य भोजन करता है उसके पाचन से रक्त आदि सात धातुऐं बनती हैं। ये धातुऐं शरीर में पाचन के उपरान्त ही बनती हैं। पाचन की जो क्रिया होती है, वह आमाशय तथा छोटी–बड़ी आंत के रूप में जो पाचन का कार्य चलता है वह सब जीवात्मा के कारण ही है। अन्य कारण तो गौण हैं। प्राणवायु का फेफड़ों में जो संचरण होता है जिसके फलस्वरूप श्वसन क्रिया सम्पन्न होती है वह आत्मा के कारण ही है। रक्त का समग्र शरीर में घूमना धमनियों तथा रक्त नलिकाओं में जाना पुनः हृदय में आना और ह्दय का धड़कना ये भी आत्मा के कारण ही होता है । मानव शरीर की जो आंतरिक क्रियाएं हैं वे सब की सब आत्मा के कारण ही होती हैं। इससे जीवात्मा की विलक्षणता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

## 6. कीड़ों की गति के रूप में–

छोटे–छोटे कीड़ों, चींटी, मच्छर, मक्खी आदि अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवों को आपने देखा होगा। ये सूक्ष्म जीव कितने प्रकार के हैं इनका वर्गीकरण जीव विज्ञान में किया गया हैं। जो वर्गीकृत हैं और अवर्गीकृत हैं वे सभी गति करते हैं। एक छोटी चींटी को आपने कितनी तेजी से भागते देखा होगा। उस छोटी सी चींटी में परमात्मा ने समस्त अंगों को बनाया तथा उसके अनेक पैरों में गति प्रदान कर दी जिससे वह भागती जाती है। उद्देश्य से अथवा निरूद्देश्य भी उसमें गति होती हैं। उसमें जो गति है वह जीवात्मा के कारण ही है। सभी प्रकार के कीड़ों में जो गति है वह मात्र जीवात्मा के कारण ही है। परमात्मा के अंश जीवात्मा ने उस सूक्ष्म कीड़े में गति प्रदान कर दी है। ये जीवात्मा का कितना विलक्षण कार्य है? यदि मक्खी को आप देखें वो चलती चलती एकदम अचानक उड़ जाती है। यह चलने तथा अचानक उड़ने की शक्ति कहॉ से प्राप्त है? उसका एक ही उत्तर है कि परमात्मा के अंश जीवात्मा ने उसे चलने की तथा उड़ने की शक्ति एक साथ दी है। कुछ कीड़े इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम उन्हें देख भी नहीं पाते। उनको देखने के लिए यन्त्रों की, उपकरणों की आवश्यकता होती है। उन कीड़ों में जो गति है वह जीवात्मा के कारण ही रहती है। वे कीड़े उत्पन्न होते हैं और वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वृद्धि करके गति करते हैं। ये सबका सब जीवात्मा के कारण ही होता हैं।

## 7. पक्षियों के उड़ने के रूप में–

पक्षियों के प्रकारों को आपने देखा होगा। विभिन्न प्रकार के पक्षी आकाश में उड़ते रहते हैं। उन्हें सामर्थ्य कहॉ से प्राप्त होती है? इसका सामान्यता उत्तर है कि पक्षियों में जो उड़ने की सामर्थ्य है वो परमात्मा से प्राप्त होती है। परन्तु परमात्मा ने ही अपने अंश को जीवात्मा के रूप में पशु पक्षी में डाला है जिससे वह पक्षी विविध प्रकार से उड़ रहा हैं। मनुष्य को उड़ने की शक्ति नहीं प्रदान की परन्तु परमात्मा ने उसी जीवात्मा को पक्षी के शरीर में डालकर उसे उड़ने की शक्ति दी हैं। कीड़ों में, पक्षियों में ,पशु में, मानव में ये जो जीवात्मा है वह एक ही प्रकार की है। जो जीवात्मा कीड़े में है उसमें जो गुण हैं, जो जीवात्मा पशु में है और उसमें जो गुण हैं, जो जीवात्मा पक्षी में है और उसमें जो गुण है वही जीवात्मा मानव में है उसमें भी वहीं गुण है। वह भी परमात्मा का अंश है और अट्ठारह गुणों से युक्त है जिनका उल्लेख पूर्व में हो चुका है। पक्षी एक ही स्थान से तत्काल उड़ जाता है। दूर–दूर तक ऊंचाई तक उड़ जाता है। पक्षी में उड़ने की शक्ति जीवात्मा के द्वारा ही प्राप्त होती है। जीवात्मा इस प्रकार पक्षी की उड़ान के रूप में हमें प्रतीत होती है। जीवों की गति, चेष्टा, क्रिया के विषय में हम जहां तक विचार करेंगें सब कुछ हमें जीवात्मा की विलक्षणता के रूप अनुभव होता जाएगा। जीवात्मा के विषय में यह सोचें की हम जो भी कर रहे हैं, कीड़ा जो कुछ कर रहा है, पक्षी जो कुछ कर रहा है, पशु जो कुछ कर रहा है उसका एक मात्र कारण जीवात्मा है।

परमात्मा ने अपने अंश को असंख्य भागों में विभक्त कर समस्त जीवों में जीव रूप में प्रवेश करा दिया है। वह एक चेतन परमात्मा बहुत रूपों में चेतन हो गया। वह स्वयं चेतन तत्त्व है और असंख्य जीवों को अपने स्वरूप के अंश से चेतन कर सकता है। निराकार और साकार ब्रह्म के विषय में अनेक वाद–विवाद और शास्त्रार्थ होते रहे हैं और हो रहे हैं। अनेक मनुष्यों ,दार्शनिकों ने अपनी मन और बुद्धि से उस बुद्धि से परे परमात्मा को सीमित करने का प्रयास किया। वह निराकार है, साकार है, साकार भी है निराकार भी है। बुद्धि से अत्यंत परे जहां तक बुद्धि की पहुॅच न हो उस विषय में बुद्धि विचार ही नहीं कर सकती है। हम उस परमात्मा के बारे में साकार निराकार जैसा विचार प्रस्तुत करते हैं। ये मात्र हमारी अहम् बुद्धि का कार्य है। परमात्मा ने करोड़ों–अरबों जीवों में अपना अंश प्रकट कर उन्हें चेतन किया है इस कारण वह समग्र है। हमारी दृष्टि में जैसा दिखता है वह वैसा भी है। साकार निराकार सभी कुछ है। अप्रकट होकर भी प्रकट हो सकता हैं कुछ लोग

कह देते हैं कि वह प्रकट नही हो सकता हैं, वह आकार नहीं ले सकता है। क्या हम परमात्मा के प्रकट होने की, साकार होने की शक्ति को जानते हैं? ये सब की सब हास्यास्पद बातें ही हैं कि वह ये नहीं हो सकता और वह नहीं हो सकता। आप स्मरण रखें की वह सर्वशक्तिमान परमात्मा सब कुछ हो सकता है और सब कुछ कर सकता है। वह जब जहॉ जैसे चाहे अपने को प्रकट कर सकता है और अपनी एक दृष्टि से प्रलय कर सकता है। हम उसकी शक्ति का आंकलन अपनी तुच्छ बुद्धि से न करें और उसे साकार और निराकार की सीमाओं में बांधने का कदापि प्रयास न करें। यदि कोई व्यक्ति अपने को चिंतक, विचारक,सिद्ध समझकर उस सर्वशक्तिमान की व्याख्या निराकार अथवा साकार के रूप में करता है तो सर्वत्र और सर्वशक्तिमान परमात्मा उसके इस कृत्य पर हॅसता है। इस जीवात्मा के प्रकारण में परमात्मा के स्वरूप की व्याख्या हुई यह परमात्मा की प्रेरणा है।

## 27. जीवात्मा के संबंध में कुछ विशिष्ट तत्त्व–

### क– जीवात्मा सभी को देखता है उसे कोई नहीं देख सकता–

जीवात्मा साक्षी तत्त्व है। वह जगत को ,जगत की कार्यविधि को, जगत के जीवों को, उनकी चेष्टा को, जगत के परिवर्तन को, रात्रि दिवस को, मायिक प्रपंच को स्पष्ट रूप से देखता है। दर्शन करता है। जीवात्मा समस्त तथ्यों को देखता है परन्तु उसको कोई नहीं देख सकता। ये एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि जीवात्मा प्रत्येक कार्य गतिविधि को, वस्तु को देखती है और उसे कोई नहीं देख पाता है। ये तथ्य उसी प्रकार का है जैसे कोई सिद्ध अप्रकट होने की, अंतरध्यान होने की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। तब वह सबको देखता है और उसे कोई नहीं देखता हैं। जीवात्मा की विलक्षणता उसके इस अप्रकट–अव्यक्त रहने के गुण तथा अप्रकट–अव्यक्त रहकर सबको देखने के रूप में परिलक्षित होती है। इस तथ्य को इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीवात्मा दृष्टि रखती है और अपनी दृष्टि से समस्त जगत देखती रहती है तथा स्वयं अदृश्य रहती है।

### ख– जीवात्मा जागृत, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति तीनों में जागता है–

शरीर की तीन अवस्थाएं हैं जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति। जाग्रत अवस्था में तो जीवात्मा जागता है और समस्त कार्यों का साक्षी रहता है। स्वप्नावस्था में भी जागता है और स्वप्न की समस्त गतिविधि को देखता हैं। अब जैसे जाग्रत अवस्था

में हम समस्त जगत की क्रियाओं का दर्शन करते हैं वैसे ही आत्मा के जागने के कारण स्वप्नावस्था में भी समस्त क्रियाविधि देखी जाती है। ये तथ्य स्पष्ट समझ लीजिए की जो स्वप्नावस्था में हम कार्य करने की मिथ्या प्रतीति का आभास करते हैं वह जीवात्मा के जागने के कारण ही है। यदि जीवात्मा न जागती तो स्वप्नावस्था में क्रियाओं का देखा जा पाना सम्भव न होता। सुषुप्ति अवस्था में जब कारण शरीर ही अवशेष रह जाता है और इन्द्रिय तथा मन, बुद्धि की क्रियाविधि समाप्त हो जाती है तब भी जीवात्मा जागती है। यदि जीवात्मा जागता न होता तो हमे सोने की स्मृति नहीं होती। हम सोए हुए थे इसका आभास हमें जागने के पश्चात न होता। इस कारण जीवात्मा तीनों अवस्थाओं में सदैव जागता है।

### ग– जीवात्मा सभी को प्रकाशित करता है उसे कोई प्रकाशित नहीं करता–

जिस प्रकार सूर्य समस्त जगत को प्रकाशित करता है पर उसे कोई प्रकाशित नहीं कर सकता। सूर्य के प्रकाश से ही समस्त जगत की वस्तुऐं प्रकाशित रहती हैं। जगत में सूर्य के प्रकाश के कारण ही हम वस्तुओं को देख पाते हैं। यदि प्रकाश न होता तो हमारे नेत्रों में देखने की शक्ति नहीं है। जिस प्रकार सूर्य समस्त जगत को प्रकाशित करता है उसी प्रकार जीवात्मा समस्त शरीर को प्रकाशित करती है। वह समस्त अंगों में चेतना रखती है। जैसे यदि हमारे किसी अंग में पीड़ा, खुजली, कांटा आदि लगता है तो उसका आभास हम तत्काल करते हैं। ये आभास कर लेने का प्रमुख कारण जीवात्मा ही है, क्योंकि जिन अंगों से आभास किया जाता है वे समस्त अंग जीवात्मा से प्रकाशित हैं, चेतन हैं, कार्य करते हैं। जीवात्मा का ये प्रकाश चेतनता के रूप में शरीर में व्याप्त है। शरीर के आंतरिक अंग हृदय, फेफड़े, पाचनतंत्र आदि भी जीवात्मा के प्रकाश से प्रकाशित हैं। जीवात्मा के चेतन रूप प्रकाश से प्रकाशित होकर ही हम चेतन हैं। इस कारण ये कहा जाता है कि जीवात्मा सबको प्रकाशित करती है। शरीर का कोई भी अंग जीवात्मा को चेतनता नहीं प्रदान कर सकता हैं। इस कारण मृत्यु के आ जाने पर हमारा कोई भी अंग कार्य नहीं करता है क्योंकि अंगों का और शरीर का प्रकाश आत्मा शरीर का त्याग कर चुका होता है।

## घ– जीवात्मा प्रकृति के विकारों से परे और रहित है–

संसार की प्रत्येक वस्तु विकार युक्त हैं। विकार का अभिप्राय है कि प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। यह शरीर विकारी है इसमें नित्यप्रति परिवर्तन हुआ करता

है। संसार की प्रत्येक वस्तु शरीर की तरह विकारी है, क्योंकि ये आज जैसी है वैसी कल नहीं रहेगी। प्रत्येक वस्तु में निश्चित रूप से परिवर्तन हो जाएगा। प्रत्येक द्रव्य परिवर्तनशील है। इस कारण प्रत्येक द्रव्य को विकारी कहा जाता है। प्रत्येक द्रव्य निश्चित विकारी है क्योंकि वह परिवर्तनशील है। परिवर्तनशीलता को ही विकार का रूप मानना चाहिए। जीवात्मा विकाररहित है क्योंकि वह एक लाख वर्ष पूर्व जैसी थी वैसी ही है। उसकी स्थिति में, उसके आकार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। परिवर्तन न होने के कारण वह अविकारी कहा जाता है। जीवात्मा जैसा कल था वैसा ही आज भी है और कल भी वैसा ही रहेगा। जीवात्मा का जो ये अपरिवर्तनीय गुण है वह ही उसे विकार रहित बनाता हैं। इस वर्तमान जीवात्मा ने जो हमारे शरीरों में है उसमें हजारों शरीरों का बदला हैं। छोड़ा है, पर शरीर विकारी होने के कारण समाप्त होते गये और जीवात्मा अविकारी होने के कारण जैसा कल था वैसा आज भी है और कल भी रहेगा। ये जीवात्मा का विशेष गुण है।

## ड़– जन्म ,मरण ,वृद्धि आदि विकार जीवात्मा में नहीं हैं–

प्रत्येक शरीर में चार विकार प्रमुख हैं– जन्म, वृद्धि, जरा तथा मृत्यु। पहले किसी भी शरीर का जन्म होता है जिसका जन्म होता है वह धीरे–धीरे वृद्धि को प्राप्त होता है, और जो जन्म के पश्चात् परिवर्तन है वह वृद्धि का ही है। शरीर का ये भी एक विकार है। शिशु अवस्था का शरीर युवावस्था में विशाल हो जाता हैं। युवा शरीर परिवर्तन प्राप्त करके वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता हैं। ये भी एक विकार है। परिवर्तन को ही विकार कहते हैं। जिस प्रकार ये परिवर्तन शरीर में होता है वैसा परिवर्तन जीवात्मा में नहीं होता है। जीवात्मा में जन्म का विकार नहीं है। वृद्धि का विकार नहीं है। वृद्धावस्था का विकार नहीं है और मृत्यु का भी विकार नहीं है। इस कारण शरीर में जो चारों प्रमुख विकार जन्म वृद्धि, जरा और मृत्यु हैं ,ये जीवात्मा में नहीं है ।

## च– जीवात्मा ज्ञान स्वरूप है और अज्ञान से परे है–

परमात्मा ज्ञान स्वरूप है उसमें अज्ञान नहीं है। प्रकाश स्वरूप है इस कारण अंधकार नहीं है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है इस कारण वह भी उसी की भॉति ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान का अभिप्राय है कि अज्ञान नहीं है। जैसे प्रकाश का अभिप्राय है कि अंधकार नहीं है वैसे परमात्मा में किसी प्रकार का अज्ञान नहीं है। अज्ञान जगत में है, जगत के जीव उससे ग्रस्त हैं। इस कारण वे अज्ञान को हटाने का

कार्य करते हैं। यदि अज्ञान न होता तो हमें अज्ञान को हटाने का कार्य भी नहीं करना पड़ता। शरीर में, जगत में अज्ञान है तभी उसे हटाने का कार्य होता है। परमात्मा की भॉति जीवात्मा में अज्ञान नहीं है इस कारण वह पूरी तरह ज्ञानस्वरूप है। जीवात्मा को ज्ञान का स्वरूप या पर्याय कहा जाये तो उचित होगा। जीवात्मा सभी को देखता है, सब कुछ देखता है, यह उसके ज्ञान का एक लक्षण है। संसार के पदार्थ जैसे हैं,जो भी हैं, जितने भी हैं उन्हें जीवात्मा वैसे ही उसी प्रकार, उतना ही जानता है। इस कारण वह ज्ञानस्वरूप है।

## छ– जीवात्मा बुद्धि की क्रियाओं का साक्षी है–

बुद्धि मानव शरीर में विशेष तत्त्व है। बुद्धि के नियंत्रण में शरीर की समस्त क्रियाऐं होती हैं। मन की संकल्प वृत्ति को वह जानती है। शरीर की अंतः क्रियाओं को भी नियंत्रित करती है। बुद्धि ठीक प्रकार से कार्य न करने के कारण मनुष्य पागल हो जाता है। इस प्रकार बुद्धि इस पूरे शरीर की नियंत्रण शक्ति है। मानव शरीर का संचालन, नियंत्रण बुद्धि से ही होता है। मन को अनेक प्रकार की कल्पनाऐं करने की शक्ति प्राप्त है पर इस मन कल्पित संकल्पनाओं में बुद्धि का पूरा सहयोग रहता है। बुद्धि मन की कल्पना क्रिया को देखती है। कभी–कभी बुद्धि मन को डॉटती फटकारती भी है। कहने का अभिप्राय है कि मानव शरीर में बुद्धि श्रेष्ठ तत्त्व है। श्रेष्ठ बुद्धि को नियंत्रण तथा उसकी क्रियाओं को साक्षी भाव आत्मा ही प्रदान करती है। आत्मा बुद्धि को उसकी क्रियाओं को शक्ति प्रदान करती है। इस कारण बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है। बुद्धि पर नियंत्रण करने तथा उसको शक्ति प्रदान करने के कारण आत्मा को उससे श्रेष्ठ कहा जाता हैं।इस प्रकार आत्मा बुद्धि की क्रियाओं, समस्त चेष्टाओं और गतिविधियों का साक्षी है।

## ज– समस्त विश्व जिससे व्याप्त है उसे व्याप्त करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है–

समस्त विश्व में जितने भी जीव हैं वे जीवात्मा के कारण ही चेतन हैं। जीवात्मा न होती तो विश्व के जीवों की, प्राणियों की संकल्पना भी नहीं हो सकती थी। यह समग्र जगत ही प्राणीविहीन हो जाता। आप विचार करें की जगत में जो कुछ अस्तित्त्व है क्रिया कलाप है ,गतिविधि है वह प्राणियों के कारण ही तो है। प्राणीविहीन जगत का क्या अस्तित्त्व हो सकता है? कैसा अस्तित्त्व होगा? ये विचारणीय है। विचारोपरान्त प्राणीविहीन जगत की शून्यता प्रतीत होती है। प्राणी विहीन जगत जगत नहीं है। ये बिना आधार के हो जाता है। जीवों का अस्तित्त्व

जीवात्मा के कारण से है। ये निश्चित है। जीवात्मा ही जीवों का कारण है, आधार है। इस कारण इस तर्क के आधार पर जीवात्मा में समस्त जगत व्याप्त है। ऐसा माना जाता है, कहा जाता है, समझा भी जाता है। इस कथन के प्रतिकूल भाव पर विचार करें तो जीवात्मा को कोई व्याप्त नहीं कर सकता। जैसे मॉ पुत्र की उत्पत्ति का कारण है, परन्तु पुत्र मॉ की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता है। वैसे ही जगत जीवात्मा में व्याप्त है। जीवात्मा जगत से व्याप्त नहीं है। इस कारण जीवात्मा की जगत में व्याप्तता कही जाती है।

## झ– देह में देही, जीवात्मा सर्वत्र विराजमान है–

शास्त्रों में जीवात्मा के परिमाण का उल्लेख हुआ है। जीवात्मा बाल के अग्र भाग के दस हजारवें भाग के बराबर है। अर्थात् बाल के अग्रभाग के पहले सौ भाग किये जायें और फिर प्रत्येक भाग के सौ भाग किये जायें तो प्रत्येक भाग के बराबर जीवात्मा का परिमाण कहा जाता है। जीव आत्मा इतना सूक्ष्म परिमाण का होकर भी हाथी जैसे विशालकाय शरीर को संचालित करता है और हाथी के प्रत्येक अंग में उपस्थित रहता है। हाथी जैसे विशालकाय थलचर, व्हेल जैसे विशालकाय जलचर, में वह सूक्ष्म जीवात्मा उसके विशाल शरीर को चेतन रखती है तथा विभिन्न प्रकार की क्रियाविधि और चेष्टाएं कराती है। जीवात्मा की विलक्षणता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। एक अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व विशालकाय शरीर के प्रत्येक अंग में उपस्थित रहता है तथा प्रत्येक अंग को क्रियाशील रखता है। ये जीवात्मा की अलौकिकता, आश्चर्यप्रदता और विलक्षणता है। शास्त्रों में जीवात्मा के शरीर में स्थिति की स्पष्ट विवेचना है, जो संशयरहित है। सर्वत्रावास्थितौ अर्थात् सर्वत्र स्थित रहकर जीवात्मा की शरीर में स्थिति को नितान्त सम्यक्रूपेण निश्चित किया गया है।

## ट– आत्मा स्वयं का साक्षी है और उसका कोई साक्षी नहीं है–

परमात्मा का अंश होने के कारण जीवात्मा और परमात्मा में सहधर्मिता है। परमात्मा के कार्यों का परमात्मा स्वयं साक्षी है। उसकी अध्यक्षता में ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। इस सृष्टि का वह स्वयं साक्षी है। जैसे हम कोई कार्य करते हैं तो हम अपने कार्य को देखते हैं क्रियाविधि को जानते हैं। इस कारण उस कार्य के स्वयं साक्षी स्वरूप भी हैं। वैसे जीवात्मा भी स्वयं की स्वयं ही साक्षी है। इसका एक ही कारण है की वह इन्द्रियों, मन और बुद्धि से श्रेष्ठ और परे है। इन्द्रियां मन

और बुद्धि उसके कार्य को नहीं देख सकते हैं। वह ही इन सबके कार्यो को देखती है। साक्षीपना का अर्थ है कि जो कार्य हो, क्रियाकलाप हो, गतिविधि हो उसे देखना और ऐसा हुआ, ऐसा किया गया इसको समय आने पर, आवश्यकता पड़ने पर न्यायिक सत्ता के समक्ष प्रस्तुत करना, कहना। यथार्थता को वर्णित करने का यह साक्षीपना है। आत्मा जो करती है अपने कार्यों को स्वयं देखती है। अन्य कोई सत्ता नहीं देख सकती है। अन्य कोई तत्त्व सत्ता उसके कार्यों को न देख सकता है और न ही उसको नियंत्रित कर सकता है। जीवात्मा स्वयं ही ब्रह्मस्वरूपा है। इस तर्क के आधार पर यह कहा जाता है कि जीवात्मा स्वयं की साक्षी है उसका कोई साक्षी नहीं है।

## 28– परमात्मा की पराशक्ति माया–

परमात्मा की दूसरी शक्ति को माया या पराशक्ति कहा जाता है। परमात्मा की यह शक्ति भी बहुत विलक्षण और अलौकिक है। इस शक्ति का प्रभाव पृथ्वी लोग से देवलोक तक है। परमात्मा की पराशक्ति माया के अधीन समस्त मानव संसार में मोहित होकर पृथक्–पृथक् प्रकार के कार्य करते हैं। यह शक्ति इतनी दुष्तर है कि अव्यक्त रहकर भी प्रत्येक मानव को मोहित रखती है। प्रत्येक मनुष्य परमात्मा की इस अलौकिक शक्ति के अधीन रहकर कार्य करता है । माया व्यक्त नहीं होती पर मानव के पृथक्–पृथक् कार्यों के रूप में व्यक्त होती है। इसकी दुष्तरता इसी से समझ सकते हैं कि प्रत्येक मानव को अपने प्रभाव से नचाती हैं। सृष्टि के आदिकाल से आज तक मानव ने जो भी कार्य किये हैं वे सबके सब माया की स्पष्ट प्रस्तुति हैं। आज का मानव इतनी आपाधापी में, भागदौड़ में, समस्याओं में, प्रपंचों में असंख्य प्रकार के कार्य करता है। वह माया का व्यक्त स्वरूप है। कारनामा है।माया के प्रभाव से प्रत्येक व्यक्ति भागा जा रहा है, रात दिन एक करके व्यस्त है। हम जो अपनी व्यस्तता का रोना रोते हैं वह मात्र माया के कारण ही है। हम व्यस्त नहीं हैं, हम कार्य नहीं करते हैं माया हमसे कार्य करवाती है। मनुष्य पृथक्'–पृथक् प्रकार के स्वभाव, संस्कार, क्रिया पद्धति का जो क्रियान्वयन करता है अथवा प्रदर्शन करता हुआ प्रतीत होता है वह सबका सब माया का रूप है।

माया की प्रबलता से ही आज का जगत बहुत अशांत है। प्रत्येक मानव अशांत है। प्रत्येक मानव का जीवन अशांत है और चारो ओर अराजकता की अधिकता है भोगवादी परम्परा का चारों ओर विकास माया का प्रभाव स्पष्ट करती है। हम जहां तक विचार प्रस्तुत करेंगे वहां तक माया के कार्य का विस्तार पाएंगे।

वह अव्यक्त रहकर व्यक्त रूप में हमें स्पष्ट प्रतीत होती है। हम जो कहते हैं, कर्मेन्द्रियों से करते हैं, ज्ञानेन्द्रियों से जो आभास करते हैं, मन से जो संकल्पनाऐं करते हैं तथा बुद्धि से जो विनिश्चय करते हैं वह सब का सब एक माया का ही स्वरूप है। मनुष्य का कोई भी कार्य इस अत्यंत दुष्कर परमात्मा की पराशक्ति से विलग नहीं होता हैं। मनुष्य का वायु के अभाव में जीना असंभव है वैसे ही मनुष्य माया के प्रभाव से ही कार्य करता है।

## क– माया का स्वरूप–

प्रत्येक वस्तु का स्वरूप होता है। उसके स्वरूप से ही हम उसे पहचानते हैं। जगत की प्रत्येक वस्तु का, द्रव्य का, जीव का, स्थिति का, स्वरूप अवश्य होता है। उसी स्वरूप से उसे हम पहचान लेते हैं। यह स्वरूप का बोध मानव की मन बुद्धि में रहता है। जिसे साधरणतया लोग स्मृति कहते हैं। यह सब का सब उसमें संचित रहता है। जिस प्रकार हम आकाश, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी को पृथक् पृथक् पहचान लेते हैं उसके पृथक्–पृथक् गुण और स्वरूप को जानते हैं। जगत के प्रत्येक चर अचर वस्तु का निर्माण इनसे ही होता है और इनसे निर्मित होने वाली प्रत्येक वस्तु पृथक्–पृथक् रूपो में विभिन्न स्वरूपों में दिखती है जिसका मनुष्य जीवन में व्यवहार करता है। हजारों लाखों प्रकार की वस्तुएं हैं और उन सबका पृथक्–पृथक् स्वरूप है। मन बुद्धि प्रत्येक को पृथक्–पृथक् जानती है और उसमें अंतर स्थापित कर लेती है।

हमने अपनी सुविधा के लिए प्रत्येक वस्तुओं के नाम रखे हैं। नाम लेते ही हमारे मन में उस वस्तु का दृश्य उपस्थित रहता है। हमसे कोई भी कहे कि आप अपना पेन दे दें तो हम तत्काल पेन को समझकर उसको दे देते हैं, क्योंकि पेन के स्वरूप को हम जानते हैं। पहचानते हैं। ऐसे जगत की प्रत्येक वस्तु के बारे में और उसके स्वरूप के बारे में हमें ज्ञान रहता है, परन्तु माया का कोई स्वरूप नही है वह स्वरूप रहित है। माया के नाम से जो तत्त्व या वस्तु या सत्ता है उसका कोई स्वरूप नहीं है। ये अत्यंत विलक्षण बात है। प्रत्येक प्राणी के तथा प्रत्येक मनुष्य के शरीर में अंग होते हैं। प्राणी की पहचान उसके अंगों के आधार पर, उसके आकार के आधार पर या उसके गुणों के आधार पर होती हैं। कीड़ा, पशु–पक्षी जलचर या नभचर की परख पृथक्–पृथक् प्रकार से हो जाती है। हम सभी प्राणियों को देखकर यह निश्चित करते हैं कि वह अमुक प्राणी है। इस विनिश्चय में उसका आकार, प्रकार, अंग, क्रियाविधि,गुण,चेष्टा आदि ही तो सहायक

होते हैं। मनुष्य स्त्री है अथवा पुरूष है इसका भी विनिश्चय हम कर लेते हैं। बालक है, युवा है, वृद्ध है, पुष्ट है या कमजोर है आदि का विनिश्चय भी हम देख कर ही कर लेते हैं। वस्तुओं के प्रकार के विनिश्चय में हमारी भूल नहीं होती क्योंकि उसका विनिश्चय पहले से ही किया हुआ है अथवा किया जा चुका था। वह स्मृति में रहता है और देखते ही प्रकट हो जाता है। मनुष्य को देखकर हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि वह भारतीय है, यूरोपियन है, अफ्रीकी है। इस तथ्य का विनिश्चय उसके रूप रंग, कद कांठी, बोलचाल, भाषा के आधार पर ही कर लेते हैं, परन्तु माया अंग रहित है। इस कारण उसका विनिश्चय नहीं किया जा सकता है। अंग रहित होकर भी वह नाना प्रकार के कार्य करती है और अत्यंत विलक्षण कार्य करती है। यह उस तत्त्व की अलौकिकता है।

प्रत्येक कार्य का सम्पादन क्रियाओं से होता है। मनुष्य ने इस जगत में कितने चमत्कारी कार्य किये हैं? कितने सुन्दर सुखद भवन, कितने आरामदायक आवागमन के साधन बनाये हैं? कितने आरामदायक भोग वस्तुएं शरीर के लिए सुखद प्रतीत होने वाली बनाई हैं। यह सबका सब निर्माण मनुष्य की बुद्धि से श्रम के क्रियान्वयन से हुआ है। कितनी ही श्रमिकों ने इसके लिए कार्य किया है। एक पुल का निर्माण जब होता है तो उसमें कितना श्रम लगता है? उसमें कितने मस्तिष्क लगते हैं? निरंतर कार्य करके वह निर्माण आकार लेता है। यदि श्रम न हो तो निर्माण संभव नहीं है। यह सब का सब मानव अंगों का विलक्षण प्रभाव है कि वस्तु कल्पना के आधार पर साकार रूप ले लेती है। परमात्मा ने मानव को कुछ विशेष अंग प्रदान किये हैं जिनसे ये सब विलक्षण निर्माण हो रहा है और वह

भविष्य में होता रहेगा। ये सब मानव का चमत्कारी प्रभाव है। माया मनुष्य के समस्त कार्यों का सम्पादन कराती है। मनुष्य करता है, पर माया स्वयं अंग रहित है वह बिना अंगों के ही समस्त क्रियाओं का क्रियान्वयन करवा डालती है। माया अंग रहित होकर अंगसहित कार्य करती है। ये माया की अलौकिकता है। अब आपने माया की विलक्षणता का अनुमान और विनिश्चय सहज भाव से कर लिया होगा। वह अव्यक्त होकर भी व्यक्त है और अंग रहित होकर अंग सहित है।

प्रत्येक वस्तु का, द्रव्य का ,प्राणी का, सत्ता का, मानव का वर्णन हम देखकर उसके रंग, रूप, गुणों, कार्य आदि के आधार पर करते हैं। जल बहता हैं। जगत की वस्तुओं को गीला कर सकता है। वायु बहती है हम उसका आभास करते हैं। वैसे ही प्रत्येक वस्तु का वर्णन उसके गुणों के आधार पर हम करते हैं। जिस वस्तु

को हम देंख नहीं पाते हैं उसकी कल्पना के आधार पर मन उसको वर्णित करता है। परमात्मा को हम देख नही पाते हैं परन्तु उसके गुणों के आधार पर उसके कार्य को देख्कर उसका वर्णन करते हैं। परमात्मा की तरह उसकी पराशक्ति माया भी अव्यक्त है इस कारण उसका वर्णन सम्भव नहीं है। उसको यदि हम देख पाते तो

अवश्य ही उसके विलक्षण कार्यों को और उसके स्वरूप को वर्णित कर देते। अव्यक्त माया को हम वर्णित नहीं कर सकते इस कारण उसे अनिर्वचनीय कहा जाता है। माया के अनिर्वचनीय होते हुए भी उसके गुणों तथा कार्यों के आधार पर हम उसको वर्णित करने का प्रयास कर रहे हैं।

## ख– माया का कार्य–

परमात्मा की पराशक्ति माया का प्रमुख कार्य है कि मनुष्य को इस जगत में अपने पृथक् प्रथक् रूपों में मोहित करना तथा इस जगत से उद्धार न होने देना। माया मनुष्य को अव्यक्त रहकर भी पूरी तरह से प्रभावित करती है। मनुष्य माया से प्रेरित हुआ नाना प्रकार के सत्कर्म, दुष्कर्म तथा निश्चित कर्म करता रहता है। मनुष्य को ये मेरा है, ये तेरा है का आभास इसी कारण होता है। ये वस्तु मेरी है, ये तेरी है इस तथ्य के निर्धारण के लिए आज हमारे देश में लाखों वाद विभिन्न न्यायालयों में विचाराधीन हैं, जो तय नहीं हो पा रहे हैं। लाखों की संख्या में वादों का विचाराधीन रहना माया की प्रबलता है और निर्णीत न हो पाना माया की विलक्षणता है। अनेक प्रकार के वादों में नाना प्रकार के तर्क आपने सुने होंगे और असीमित तथ्यों को तर्क संगत रूप में देखा होगा। अमुक न्यायालय ने अमुक निर्णय कई हजार पृष्ठों में लिखा है ये सब का सब माया की प्रबलता है। माया का असीमित विस्तार है। मनुष्य तर्क और कल्पनाओं के आधार पर जो करता है, जो करता रहता है, जो प्रस्तुत करता है वह सब का सब माया का ही रूप है। माया ऐसे विलक्षण रूप में हमसे हमारे अन्दर रहकर नाना प्रकार के कार्य कराती है और उन कार्यों से हम जीवन पर्यन्त निवृत्त नहीं हो पाते हैं। हमारे मन का जो विस्तार है और बुद्धि की उस विस्तार को जानने की जो शक्ति है वो सब का सब माया के कारण ही है।

हमारी दृष्टि जहां तक जाती है वहां तक माया के कार्य का उसके प्रभाव का, उसकी प्रबलता का हमें दर्शन होता है। मनुष्य जो भी कार्य करता है वो सब का सब माया से प्रेरित रहता है। साधारणतया मनुष्य माया के प्रभाव को नहीं

जानता है। साधक उसके प्रभाव को जानने का प्रयास करते हैं। जैसे एक बहेलिया पक्षी को पकड़ने के लिए सूखी भूमि में चिपकाने वाला पदार्थ लगाकर उसमें पक्षियों के खाने के लिए कुछ दाने बिखेर देता है। पक्षी दानों के लालच में उस भूमि पर आकर बैठते हैं। दाना चुनते ही पक्षी बहेलिये के द्वारा बिछाए गए जाल में फंस जाते हैं। बहेलिया पक्षी को पकड़ लेता है और बड़ी क्रूरता से उनका वध करता है। वैसी ही माया की स्थिति है और उसका कार्य है। उसने इस जगत में अपना जाल बिछा रखा है और उसमें सांसारिक भोग रूपी दाने बिखेर दिये हैं। मनुष्य सांसारिक भोगरूपी दानों को चुनने की, खाने की आशा में जाल में फंस जाता है जीवन भर फंसा रहता है और अंततः उसकी मृत्यु आ जाती है यही माया का कार्य रूप है।

एक मक्खी गीले गुड़ में बैठती है और उसे गुड़ की मिठास के स्वाद का आभास होता है। वह मक्खी स्वाद तो लेती है परन्तु उसके पैर उस मीठे गीले गुड़ में सन जाते हैं। स्वाद लेने के पश्चात् वह मक्खी उड़ना चाहती है परन्तु उसके पैर गीले गुड़ में फंसे होने के कारण उससे निकल नही पाते हैं। वह जितना ही उससे निकलने का प्रयास करती है वह उसमें उतना ही फंसती जाती है। अंततः मक्खी की मृत्यु हो जाती है। उसे गुड़ की मिठास अंततः मार डालती है। वैसे ही माया का कार्य है। माया रूपी गीले गुड़ में मनुष्य फंस जाता है और उसे संसार के भोग का स्वाद तो मिलता है परन्तु उस स्वाद से वह कभी निकल नहीं पाता है और अंततः उसकी इसी माया में मृत्यु हो जाती है। यह माया का कार्य रूप ही है।

एक सामान्य मनुष्य अनुकूल परिस्थितियों में कुछ धन का संचय कर लेता हैं। जब वह कुछ धन पा जाता है तो वह उस धन के महत्व को समझता है। धन की वृद्धि हेतु पुनः–पुनः प्रयास करता है। श्रम से उसे धन की प्राप्ति हो जाती है। धन बढ़ता है, कार्य बढ़ता है, व्यवसाय बढ़ता है। देखते ही देखते वह असंख्य धन का स्वामी हो जाता है। समाज में उसे लोग सफल समझते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रातः से रात्रि तक धन की वृद्धि के उपाय खोजते हैं। धन के उपायों की खोज में वह युवा से वृद्ध हो जाता है। उसकी गणना क्षेत्र के धनपतियों में होती है। वृद्ध होकर उसके अंग भी कार्य नहीं करते हैं। वह तो न तो ठीक से खा पाता है, न चल पाता है, और बैठा–बैठा ही अपनी मृत्यु के विषय में विचार करता हैं। हाय मृत्यु आयेगी और हमें ले जाएगी ये सब का सब जो हमने बड़ी मेहनत से एकत्र किया है अनायास ही छूट जाएगा। यह स्थिति उसे बड़ा बेचैन रखती है। वह अंततः दुखी होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ये सब का सब माया का ही कार्य रूप है।

एक प्रख्यात चिकित्सक के यहां प्रतिदिन सैकड़ो मरीज आते हैं। सभी को वह क्रम वार देखता है। प्रातः से सायं तक एक निश्चित समय तक वह अपने कक्ष बैठकर मरीजों का परीक्षण करता है। औषधि लिखता है और कुछ देता भी है। एक दिन अपने निश्चित समय पर वह उठने वाला होता है तो एक मरणासन्न व्यक्ति आ जाता है। उसके साथ के लिए लोग चिकित्सक से उस मरणासन्न व्यक्ति की चिकित्सा की प्रार्थना करते हैं। वह चिकित्सक कहता है कि हमारा मरीजों को देखने का समय समाप्त हो गया है इस कारण मैं उसे नहीं देख सकता। काफी अनुनय विनय करने पर भी वह उस मरणासन्न मरीज को बिना देखे ही अपनी कार में बैठकर चला जाता है। उस चिकित्सक के मन में उस मरणासन्न व्यक्ति के प्रति श्रद्धा या दया का भाव उत्पन्न न होना माया का ही कार्य रूप है।

उच्च पदस्थ व्यक्ति, पर्याप्त अधिकार सम्पन्न महानुभाव, कला, साहित्य, विज्ञान के क्षेत्र के मूर्धन्य विद्वान, सम्मानित न्यायाधीश आदि सर्व सामान्य मनुष्यों की उपेक्षा करते हैं। उनकी सहायता नहीं करते हैं। उनके साथ सम्यक् न्याय भी नहीं करते हैं। शोषित और असहाय व्यक्तियों के पक्ष में नहीं खड़े होते हैं, यह सब माया का स्पष्ट कार्यरूप है। माया अपने प्रभाव से मनुष्य को भ्रमित करती है और उसको कर्तव्य बोध तथा कर्तव्य कर्मों के क्रियान्वयन से विमुख कर देती है। मनुष्य को माया अपने विभिन्न रूपों में मोहित करती है इस कारण माया के रूपों तथा भेदों को समझना आवश्यक है।

**ग–माया के भेद–**

माया के प्रकार अथवा भेद के प्रस्तुतीकरण के पूर्व हम दो प्रकार के विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। ये विचार तथा भाव माया के भेद के समझने में और उसके प्रकार को जानने में सहायक होंगे। माया की दुष्तरता उसके भेदों (रहस्यो) में छिपी है। वह विभिन्न रूपों में मानव को मोहित करती है। उसके भेदों को समझने के लिए हम क्रमशः दो विचार प्रस्तुत कर रहे हैं –

**1. पहला विचार–**

एक फौजी सिपाही सीमा पर अपने लक्ष्य को भेदने के लिए नाना प्रकार के कार्य करता है। वह अपने छिपने का साधन खोजता है। खाई में छिपकर अपने दुश्मन को मारने का प्रयास करता है। उसके अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्र उसके

इस कार्य में उसकी सहायता करते हैं। फौजी अपने को वन, पौधों लताओं में छिपाकर दुश्मन पर आक्रमण करता है। वार करता है। उसका एक ही लक्ष्य है दुश्मन को मार गिराना। जैसे ही त्रिगुणीमयी माया छिपकर अपने तीन अस्त्रों सत, रज, तम से मनुष्य को मोहने का कार्य करती है। मनुष्य उसके सत, रज, तम तीन अस्त्रों की मार से घायल होकर तड़पता हुआ अंततः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

**2. दूसरा विचार–**

नृत्य कला में प्रवीण एक नर्तकी विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रों से युक्त होकर दर्शकों के सम्मुख आकर अपने नृत्य की विभिन्न भाव भंगिमाओं से, नृत्य के प्रदर्शन से, वाद्ययन्त्रों के स्वरों से दर्शकों को लुभाने का कार्य करती है। उसका लक्ष्य होता है दर्शकों को लुभाना। दर्शक उसका नृत्य देखकर मोहित हो जाते हैं। उसके रूप, स्वरूप, नृत्य कला, भाव भंगिमा, स्वरों की मधुरता और गायन में फंसे रहते हैं। ये छः तथ्य उपस्थित लोगों को मोहकर उन्हे फंसा लेते हैं। इसी प्रकार तीन प्रमुख भेदों वाली और तीन उपभेदों वाली माया मनुष्य को अपनी कला में फंसाकर उसकी दुर्गति कर डालती है।

**माया के छः प्रकार–1. सात्विक माया 2.राजसी माया 3.तामसी माया 4. सत्रज मिश्रित माया 5. रजतम् मिश्रित माया 6. सत्तम मिश्रित माया।** उक्त तीन प्रकार की प्रमुख माया तथा तीन प्रकार की गौण माया के अनुसार ही मनुष्य के शरीर की समस्त क्रियाऐं होती हैं। इस कारण इनके प्रभाव से शरीर में क्या क्रियाऐं होती हैं इसको समझना आवश्यक है। तीन प्रकार की प्रमुख माया से प्रभावित शरीर की क्रियाओं का अवलोकन करें–

**घ– सात्विक माया से प्रभावित शरीर की क्रियाऐं –**

**1– तपश्चर्या की इच्छा–** जब मानव शरीर तपश्चर्या की इच्छा करता है तो समझना चाहिए कि वह सात्विक माया के प्रभाव से प्रभावित है। अर्थात् माया का सात्विक स्वरूप शरीर को मोहित कर रहा है। तपश्चर्या का अर्थ है परमात्मा की ओर उन्मुख होने का प्रयास। इस प्रयास में जो साधन किये जाते हैं वे सब के सब तप की श्रेणी में आते हैं। भक्ति योग, कर्म योग, ज्ञान योग आदि साधनों का क्रियान्वयन किया जाना ही तप है। आपके मन में ऐसी इच्छा का प्रादुर्भाव हो तो समझना चाहिए कि सात्विक माया हमारे शरीर पर अपना प्रभाव डाल रही है और हम उससे प्रभावित हो रहे हैं।

**2. सत्य के आचरण की उन्मुखता–** जब मनुष्य सत्य और असत्य के विषय में विचार करने लगता है तब असत्य को त्यागने की इच्छा बलवती हो जाती है। असत्य को त्यागने की इच्छा के बलवती होने पर मनुष्य सत्य के आचरण की ओर उन्मुख हो जाता है। असत्य को जानकर असत्य को त्यागने की इच्छा का उदय होना तथा सत्य के आचरण की ओर तत्पर होने की इच्छा ही सत्य के आचरण की उन्मुखता है। सत्य के आचरण की ओर उन्मुखता सात्विक माया के प्रभाव से होती है। सात्विक माया जब शरीर को प्रभावित करती है तो मनुष्य की सत्य के आचरण की इच्छा प्रबल हो जाती है और उसके आचरण का प्रयास रहता है।

**3–दया भाव–** मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी होता है। वह अपने हित के लिए, अपने कल्याण के लिए और सांसारिक भोगों और आनन्द के लिए ही कार्य करता है। दूसरों के प्रति जब अपना जैसा व्यवहार करने की इच्छा करें तो यह वृत्ति दयाभाव कही जाती है। विशेषकर गरीबों, असहायों, निर्बल और कमजोर वर्ग के लिए ये भाव उत्पन्न होता हैं, तो इसे दया का उत्कृष्ट रूप कहते हैं। ये दया का भाव माया के सात्विक भेद के प्रभाव के कारण होता है। माया का सात्विक भेद मनुष्य में दया भाव का और दूसरों के हित का भाव उत्पन्न कर देता है। इस कारण मनुष्य जब दूसरों के प्रति जब दयाभाव से ओत–प्रोत होता है तो समझना चाहिए कि वह सात्विक माया के प्रभाव से प्रभावित है।

**4–मन के संयमन का कार्य–** मन के संबंध में पूर्व में चर्चा हुई थी। मन बड़ा ही प्रमथनशील है। प्रमथनशील का अर्थ है कि मन सांसारिक विषयों में अनायास ही घूमता है और सांसारिकता में रहता है। मन का ये स्वभाव है। जब मनुष्य इस प्रमथनशील मन को नियंत्रित करने का प्रयास करे तो उसकी चंचलता को संयमित करने के लिए प्रयत्नशील हो तो समझना चाहिए कि वह सात्विक माया के प्रभाव से प्रभावित है। सात्विक माया ही उसे मन को संयमित करने की ओर प्रेरित करती है। मन संयमित हो अथवा न हो ये तो प्रयास पर आधारित है परन्तु मन में इसको संयमित करने का भाव सात्विक माया का ही कार्य रूप है।

**5. सांसारिक भोगों को त्यागने की प्रवृत्ति–** मनुष्य स्वभावतः सांसारिक भोगों की ओर उन्मुख रहता है। सांसारिक भोगों की दुष्तरता इतनी प्रबल है कि मनुष्य को अपने में लगाये रखती है। मनुष्य सांसारिक भोगों का परित्याग करने का विचार मन में नहीं ला पाता। सांसारिक भोगों में जो रस है, आनन्द की मिथ्या प्रतीति है वह मनुष्य को सांसारिक भोगों से निवृत नहीं होने देती है। यदि मन में कभी ये भाव

प्रबल हो जाए की हमें सांसारिक भोगों को त्यागना है क्योंकि वे क्षणिक हैं और हमारे लिए हितकर नहीं है। इस प्रवृत्ति का उद्‌भव सात्विक माया के कारण ही होता है।

**6–तितिक्षा–** प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। सुख की चाहना भी मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसे जब दुख प्राप्त होता है अर्थात् सांसारिक प्रतिकूलता प्राप्त होती है, तो वह स्वयं ही दुखी हो जाता है। सांसारिक प्रतिकूलता ही दुख का कारण माना जाता है तथा मनीषी लोग सांसारिक प्रतिकूलता के परिणाम को ही दुख कहते हैं। सांसारिक प्रतिकूलता से उत्पन्न होने वाला भाव दुख कहलाता है। सांसारिक प्रतिकूलता आये परन्तु उसमें मनुष्य को दुख की प्रतीति न हो, तो इसे तितिक्षा कहा जाता है। दुख को सहने की जो वृत्ति है वो तितिक्षा के कारण होती है। और तितिक्षा का भाव सात्विक माया के प्रभाव के कारण होता है।

**7–कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध–** एक सामान्य व्यक्ति कर्तव्य और अकर्तव्य के बोध से अनभिज्ञ रहता है। वो जीवन में जो भी कार्य करता है कर्तव्य अकर्तव्य का विचार न करके बस करता रहता है। लोभ और मोह के आश्रय से कभी–कभी बड़े–बड़े दुष्कर्म भी हो जाते हैं। जब मनुष्य ये विचार करने लगे की कर्तव्य क्या है? अकर्तव्य क्या है? कर्म क्या है? विकर्म क्या है? क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित है? यह विचार उत्पन्न होने का अभिप्राय है कि सात्विक माया अपना प्रभाव डाल रही है। ऐसे विचारों का अचानक उद्‌भव नहीं होता ऐसे विचार अनायास भी नहीं आते हैं। कर्तव्य और अकर्तव्य के विचार मात्र सात्विक माया के प्रभाव के फलस्वरूप ही आते हैं।

**8. स्मरण शक्ति में वृद्धि–** सांसारिकता में जब व्यक्ति फंस जाता है तो उसकी स्मरण शक्ति सांसारिक विचारों के चिंतन के कारण धीमी हो जाती है। उसका एक कारण ये है कि सांसारिकता में इतने कार्य होते है कि मनुष्य व्यस्ततावश अपनी स्मृति खोता जाता है। ये जगत ही कुछ ऐसा है कि जब व्यक्ति संसार में खोता है तो वह खोता जाता है। जब मनुष्य के खोने का कार्य किसी कारणवश, कतिपय घटनाओं से हो जाता है तो उस जगत की वास्तविकता के कुछ बोध के कारण मनुष्य की स्मृति भी कुछ ठीक हो जाती है। उसकी स्मरण शक्ति प्रबल हो जाती है। जब मनुष्य की स्मरण शक्ति प्रबल होने की ओर अग्रसर हो तो आप उसे सात्विक माया का स्पष्ट प्रभाव समझे।

**9– प्राप्त वस्तुओं में सन्तोष–** मनुष्य को जो प्राप्त है उसमें सन्तोष हो जाना अस्वाभाविक है। हम तथा आज का मानव अप्राप्त वस्तुओं के संग्रह हेतु प्रयत्नशील है। जो हमारे पास नहीं है अथवा जो है उससे बढ़कर हम पाना चाहते हैं। अप्राप्त वस्तुओं की आवश्यकता की अनुभूति का नाम स्पर्हा है। अप्राप्त को प्राप्त करने के प्रयास में ही मनुष्य का जीवन सामाप्त हो जाता है। जो कुछ प्राप्त है उसमें हमें सन्तोष एक तो होता नहीं और यदि कतिपय कारणों से मन में ये भाव आ जाए कि हमें जो कुछ प्राप्त है वह पर्याप्त है। घर, मकान, रहन–सहन का स्तर, खाने पीने की सामग्री, नित्य प्रति प्रयोग की वस्तुऐं पर्याप्त हैं। इस प्रकार का भाव जब मनुष्य में प्रबल हो जाता है तो समझना चाहिए कि वह मनुष्य सात्विक माया के प्रभाव से प्रभावित है। सात्विक माया के कारण ही मनुष्य में ऐसे भाव स्वतः आ जाते हैं।

**10– त्याग का स्वभाव–** आज के समाज में, परिवार में विवादों को आपने देखा होगा। छोटी–छोटी वस्तुओं को लेकर विवाद रहता है। ये विवाद क्यों रहता है? इसका मूल कारण क्या है? इस पर विचार करने से ये तथ्य ज्ञात हो जाता है कि आज के समाज में त्याग की भावना का नितांत अभाव हो गया है। मनुष्य प्रत्येक वस्तु को अपनी कहना चाहता है। अपने स्वामित्व की वस्तुओं को तो वो चाहता ही है और साथ ही दूसरों के स्वामित्व की वस्तुओं को अपहरण करके उस पर कब्जा करना चाहता है। जब मनुष्य अपने स्वामित्व की वस्तुओं को दूसरों के प्रयोगार्थ देता है तो इस भावना को त्याग कहा जाता है। जब मनुष्य को सांसारिक वस्तुओं की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है तो उसमें त्याग की भावना बलवती हो जाती है। वह किसी वस्तु के लिए अनावश्यक विचार नहीं करता है। इस त्याग के स्वभाव का उद्‌भव होना सात्विक माया का कार्य रूप है।

**11– आत्मविषयक चिंतन–** साधारणतया मनुष्य यह नहीं जानता है कि वह क्या है? उसका क्या अस्तित्त्व है? वह कहॉ से आया है? उसका क्या उद्‌देश्य है? वह बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था को प्राप्त होता हुआ वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक अवस्था के कार्यो में संलग्न व्यक्ति उसी को अपना उद्‌देश्य समझता है। जैसे युवावस्था में वह अपने परिवार का भरण–पोषण करता है तथा उनके लिए आवश्यक सामग्री जुटाता है। इसी प्रकार प्रत्येक अवस्था में कार्य और उसका चिंतन करना उसका मुख्य कार्य है। जब मनुष्य ये विचार करता है कि हम कौन है? हम कहॉ से आये हैं? हमारा क्या उद्‌देश्य है? मुक्ति कैसे प्राप्त होगी? हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है? तो यह आत्म विषयक चिंतन कहा जाता है। जब

मनुष्य इस प्रकार का चिंतन करता है तो उसे सात्विक माया के प्रभाव से प्रभावित जानना चाहिए।

**12– लज्जाशीलता–** मनुष्य को जो कार्य उचित प्रतीत होता है वह वही कार्य करता है। आज के समाज में यह वृत्ति अधिक बढ़ गई है। स्त्री–पुरूष जो चाहते हैं वैसा ही करते हैं। इससे समाज में एक प्रकार की अव्यवस्था सी व्याप्त है। मनमाना आाचरण करने की प्रवृत्ति पूर्व में भी थी। इतिहास, पुराणों में दैत्यों के द्वारा, दानवों के द्वारा मनमाने आचरण की कहानियां आती हैं। मनमाना आचरण ही लज्जा हीनता है। संयमित आचरण करना लज्जाशीलता है। जब मनुष्य में संयमित आचरण करने का भाव उत्पन्न हो जावे अर्थात् लज्जाशीलता का भाव आ जाये तो इसे सात्विक माया का प्रभाव जानना चाहिए।

**13. दानवृत्ति–** मनुष्य साधरणतया अपने लिए कमाता है, और अपने लिए ही कार्य करता है। दान करने की प्रवृत्ति कम रहती है। उचित स्थिति में उचित पात्र की सहायता करना दान वृत्ति कहा जाता है। मनुष्य में दान करने की वृत्ति जब आ जाये और उसका उचित तथा पात्र व्यक्तियों को सहायता करने का भाव उत्पन्न हो जावे तो ये भाव सात्विक माया के कारण आता है। वैसे तो हम अपने स्वार्थपरता हेतु लोगों की सहायता करते रहते हैं, परन्तु ये कार्य दान वृत्ति नहीं कहा जाता है। जिसे आवश्यकता है उसकी उचित सहायता करना तथा उसमें प्रति उपकार की भावना न रखना ही दान वृत्ति है। ये दान वृत्ति का भाव सात्विक माया के कारण ही आता है।

**14. मन तथा वाणी में सरलता का प्रादुर्भाव–** माया के प्रभाव से व्यक्ति मन में दूसरो के अहित कर चिंतन करता है। वाणी से कटु वचनों को कहता रहता है। ऐसी स्थिति में मन तथा वाणी में सरलता नहीं आती है। सामाजिक परिवेश को देखकर मनुष्य उसी के अनुरूप कार्य करने लगता है और थोड़ी सी असुविधा होने पर मन से असंयमित चिंतन करता है और इस चिंतन का प्रभाव वाणी में भी प्रतीत होता है। यदि मनुष्य में संयमित, हितकर चिंतन होने लगे तथा वाणी से लोगों के प्रति संयमित भावों की अभिव्यक्ति होने लगे तो इसे सात्विक माया का ही प्रभाव जानना चाहिए। सात्विक माया मनुष्य के मन को स्वच्छ करने लगती है और वाणी में सरलता का प्रादुर्भाव कर देती है।

**15. प्रार्थनायुक्त आचरण–** हम सभी आदेशात्मक कार्य करना चाहते हैं। हमारे मन की ये साधारण वृत्ति होती है कि हमारे दैनिक जीवन में हम लोगों को आदेश

देकर कार्य करते हैं। ये आदेशात्मक वृत्ति हमारे गर्व का प्रतीक समझी जाती है। हम अपने कार्य के लिए लोगों को आदेश देते हैं तो ऐसा करना उचित समझते हैं तथा चाहते हैं कि लोग हमारे आदेश को मानकर उसका उचित पालन करें। आदेश रहने की शक्ति रहते हुए जब मनुष्य प्रार्थना ये युक्त विनम्र आचरण करता है तो यह समझना चाहिए कि वह माया के प्रभाव से प्रभावित है। हम ऐसा करें, वैसा करें ये आदेशात्मक कार्य है। हमें ऐसा करना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए यह प्रार्थनापूर्ण आचरण है जो सात्विक माया के कारण होता है।

## ङ– राजसी माया से प्रभावित शरीर की क्रियाएं–

राजसी माया का मानव शरीर पर स्पष्ट प्रभाव होता है। राजसी माया के प्रभाव से आच्छादित, आवृत मनुष्य जिस–जिस प्रकार के आचारण करता है उसे स्पष्ट देखा जा सकता है। उसके आचरण, व्यवहार, लक्षणों से हम ये जान सकते हैं कि अमुक व्यक्ति राजसी माया के प्रभाव से कार्य कर रहा है। सात्विक माया के प्रभाव की भॉति राजसी माया का प्रभाव भी शरीर पर स्पष्ट रूप से रहता है और उसे अनुभव किया जा सकता है। राजसी माया शरीर पर क्या प्रभाव डालती है इसका अवलोकन कीजिए–

## 16– असीमित आकांक्षाऐं–

मनुष्य कामनाओं, आकांक्षाओं के वशीभूत होकर ही नाना प्रकार के सांसारिक कर्म करता है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही असंख्य आशाओं की पूर्ति में रहता है। एक ही दिन में सैकड़ों आकांक्षाओं का उत्पन्न हो जाना ही आकांक्षाओं की प्रबलता है। मनुष्य जब राजसी माया के अधीन हो जाता है तो उसके मन में असंख्य प्रकार की सांसारिक आकांक्षाऐं उत्पन्न हो जाती हैं। कामनाओं की यह विस्तृत श्रृंखला राजसी माया के प्रभाव के कारण ही होती है। यदि मनुष्य नाना प्रकार की आकांक्षाऐं करता है तो समझना चाहिए कि उस पर राजसी माया अपना प्रभाव डाल रही है, जिसके वशीभूत होकर वह ये सब असंख्य, अनन्त आकांक्षाऐं प्रस्तुत कर रहा है और कामनाओं का जाल बुन रहा है।

**17–अहंकार की उत्पत्ति–** मनुष्य में अहंकार का उद्भव होना और उसका प्रकट होना राजसी माया के विशिष्ट प्रभाव के कारण होता है। पूर्व में जितने प्रकार के अहंकार के भेदों का वर्णन हुआ है उन सब की उत्पत्ति का एक मात्र कारण राजसी माया ही है। राजसी माया मनुष्य को उसके मिथ्या ज्ञान और अस्तित्त्व से

आवृत्त्त कर देती है। मनुष्य मिथ्या ज्ञान और मिथ्या अस्तित्त्व से आवृत होकर उसमें अहंकार की कल्पना कर लेता है। मैं हूॅ, ये मेरा है। मैं ज्ञानी हूॅ, मेरा ज्ञान सही है, ये भाव अहंकार की उत्पत्ति के कारण ही होता हैं। इस प्रकार अहंकार के भाव की उत्पत्ति माया के विलक्षण प्रभाव से हो जाती हैं ।

**18–विषय भोगों की वृत्ति–** जब मनुष्य कुमारावस्था में आ जाता है तो उसके शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन होते हैं और वह उन परिवर्तनों के अधीन विषय भोगों में प्रवृत्त हो जाता है। ये कार्य स्वाभाविक रूप से होता है। जगत को देखकर जगत के भोगों के प्रति आकर्षित होना सामान्य तथ्य है। विषय भोगों की ओर वृत्ति का झुकाव अकारण, अनायास नहीं होता है। उनमें सुख का मिथ्या आभास देखकर होता है। मनुष्य कुमारावस्था के अतिरिक्त युवावस्था प्रौढ.ावस्था और वृद्धावस्था में भी सांसारिक विषय भोगों की ओर चल पड़ता है। सांसारिक सुखों में लिप्त होने और विषय भोगों की ओर प्रवृत्त होने का प्रमुख कारण राजसी माया है।

**19– आकांक्षा पूर्ति एवं विषय भोगों की प्राप्ति का प्रयत्न–** कामना उत्पन्न होना ये राजसी माया का कार्य रूप है। विषय भोगों की उत्पत्ति भी राजसी माया के प्रभाव से ही होती है। आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु तथा विषय भोगों की प्राप्ति हेतु जो प्रयत्न होता है वह भी राजसी माया के प्रभाव से ही होता है। मनुष्य आकांक्षाऐं करता है, कामनाऐं करता है और सांसारिक विषय भोगों में आनन्द की अनुभूति की कल्पना करता है। ये सबका सब मनुष्य को कामनाओं की पूर्ति हेतु तथा सांसारिक भोागों की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करने के लिए उद्वेलित करते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित हुआ प्रयत्न का आरम्भ करता है। ये जो प्रयत्न है वह राजसी माया के प्रभाव के कारण ही होता है।

**20 तृष्णा की उत्पत्ति–** जैसे मनुष्य को जब प्यास लगती है तो पिपासा की उत्पत्ति हो जाती है। वह प्यास से व्याकुल होकर उसका अनुभव करता है तथा जल की प्राप्ति का प्रयास करता है। ये पिपासा की अनुभूति मनुष्य को होती है। वैसे ही भूख लगने पर क्षुधा की अनुभूति हो जाती है। क्षुधा की अनुभूति होने पर वह भोजन को तलाशता है। ये जो पिपासा और क्षुधा की अनुभूति है यह अकारण नहीं होती है। ठीक पिपासा और क्षुधा की भॉति सांसारिक भोगों को भोगने की इच्छा भी मनुष्य में जागती है। उसे यह अनुभूति होती है कि जो सांसारिक भोगों की इच्छा है वो पूरी हो। ये इच्छा ही सांसारिक भोगों में अनुभूति तथा उसको भोगों की लालसा तृष्णा कहलाती है। तृष्णा की उत्पत्ति राजसी माया के प्रभाव से ही होती हैं। जैसे पृथ्वी

में जल तथा सूर्य का प्रकाश बीज को अंकुरित कर देता हे, उसी प्रकार यह राजसी माया तृष्णा की उत्पत्ति कर देती है।

**21–अनावश्यक परिश्रम–** परिश्रम दो प्रकार का होता है– एक अनावश्यक और दूसरा आवश्यक। आवश्यक परिश्रम वह है कि जो कर्तव्य कर्मों के बोध के उपरान्त कर्तव्य कर्मों के आचरण के हेतु किया जाता है। ऐसा आवश्यक कर्म प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। कर्तव्य कर्मों का विचार न करके मनमाने ढंग से जो आचरण किया जाता है उसे अनावश्यक परिश्रम कहते हैं। इस अनावश्यक कर्म में क्या करना है? क्या नही करना है? इस तथ्य का ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान के आभाव से, अज्ञान से आवृत होकर ही मनुष्य अनावश्यक कर्म करता है, जिसमें अनावश्यक श्रम होता है। यह माया के राजसी स्वरूप की प्रबलता से होता है। राजसी माया मनुष्य को अनावश्यक परिश्रम की ओर उद्वेलित कर देती है।

**22– हास्य भाव की उत्पत्ति–** साधारणतया मनुष्य प्रसन्न रहना चाहता है। जब वह प्रसन्न होता है तो उसकी मुख मुद्रा पर प्रसन्नता का भाव झलकता है। चिकित्सा शास्त्री तथा मनोविज्ञानी कहते हैं कि प्रसन्न रहना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। प्रसन्न रहने वाला अनेक रोगों से बच जाता है, इसलिए लोग प्रसन्नता के लिए अनेक प्रयत्न करते हैं। हास्य नाटक, लघु कथाऐं सुनते हैं और उनसे प्रसन्न रहना चाहते हैं। ये वास्तविक प्रसन्नता नहीं हैं। ये बनावटी प्रसन्नता है जो हास्य रस के निष्पादन से आती है। वास्तविक प्रसन्नता का उद्भव चार तथ्यों से होता है–(क) कामनाओं के सर्वथा परित्याग से (ख) ममता रहित हो जाने पर (ग) अहंकार से पूर्ण निवृत्ति हो जाने पर (घ) स्पर्हा रहित हो जाने पर जो बनावटी प्रसन्नता हास्य भाव से कुछ क्षणों के लिए आती है वह माया के राजसी स्वरूप का प्रभाव है। माया का राजसी स्वरूप ही बनावटी हास्य भाव को उत्पन्न कर देता है।

**23. अकड़पन का स्वभाव–**

अपने सिद्धान्त, मत, ज्ञान को सही मानना और अपने सिद्धान्त, मत तथा ज्ञान के प्रतिकूल मत,सिद्धान्त, ज्ञान को त्रुटिपूर्ण मानना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मनुष्य अनेक अवसरों पर अपने को उत्कृष्ट मानता है। वह जो कह रहा है वह सही है जब ये भाव आ जाता है तो मनुष्य में अकड़पन का स्वभाव रहता है। जब हम अपने मत को, अपनी मान्यता को गलत होने पर भी असंगत तर्क देकर सही ठहराने का प्रयास करते हैं तो ये स्वभाव ही हमें अकड़पन के स्वभाव में स्थापित कर देता है। यह अकड़पन का स्वभाव और अपनी मान्यता को

सही ठहराना सब का सब राजसी माया के विशेष प्रभाव से होता है। राजसी माया के वशीभूत होकर ही मनुष्य ऐसा कार्य करता है।

**24. देवताओं की उपासना द्वारा धन की याचना–** मुख्यता हम देवताओं की उपासना सकाम भाव से ही करते हैं। जब हमें किसी सांसारिक वस्तु की आवश्यकता होती है और वह वस्तु हमें हमारे प्रयास से नहीं प्राप्त होती है तो हम साधारणतया देवताओं की उपासना का उपक्रम करते हैं। हमारी देवोपासना का उद्देश्य होता है कि हमें हमारी इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो जावे। देवोपासना तो प्रमुख रूप से सात्विक माया के प्रभाव से होती हैं परन्तु उसका अनुष्ठान सांसारिक वस्तुओं की पूर्ति तथा उपलब्धता की कामना से करना राजसी माया के कारण हेाता है। राजसी माया हमें देवताओं से याचना करने, धन सम्पति आदि वस्तुऐं मागें जाने हेतु बाध्य करती हैं। इस प्रकार देवोपासना से धन की याचना का कार्य राजसी माया का कार्य रूप है।

**25– संशय की उत्पत्ति–** माया को भ्रम भी कहा जाता है। भ्रम दो प्रकार का होता है। एक भ्रम वह है जो हमें वस्तु के रहने पर उस वस्तु के प्रतीत न हेाने के कारण होता है। अर्थात् वस्तु तो है परन्तु वह हमें दिखती नहीं है इस कारण उसके अस्तित्त्व के संबंध में भ्रम हो जाता है। इसे संशय भी कहते हैं। दूसरा भ्रम का कारण है की किसी वस्तु के न होने पर हमें उसकी मिथ्या प्रतीति होती है। ऐसा लगता है कि वो वस्तु या सत्ता है इसके न होकर भी होने का संशय होने वाला भ्रम कहा जाता है। उक्त दोनों प्रकार के संशय माया के कारण ही उत्पन्न होते हैं। राजसी माया वास्तविक सत्ता को अप्रकट कर देती है और हमें संशय ग्रस्त कर देती है तथा वस्तु या सत्ता नहीं है फिर भी उसकी मिथ्या प्रतीति करा देती है। ऐसा संशय भी राजसी माया की प्रबलता के कारण समझना चाहिए।

**26–अनावश्यक विवाद की उत्पत्ति–** राजसी माया के प्रबलता के कारण मनुष्य समाज में अनावश्यक विवाद उत्पन्न कर देता है। किसी प्रकरण से संबंध न होने पर भी उसमें हस्तक्षेप करना, अतर्क संगत बातें कहकर विवाद को उत्पन्न कर देना, अपने स्वामित्व की वस्तु न होने पर भी उसमें स्वामित्व का प्रदर्शन और उसको प्राप्त करने का कुप्रयास करके अनावश्यक विवाद उत्पन्न करना। आवश्यकता न होने पर अनावश्यक प्रलाप, वाद–विवाद ये सब का सब राजसी माया का ही कार्यरूप है। आज के समाज में इसकी बहुलता है। बहुलता से समाज में ऐसे कार्य हो रहे है जिनसे किसी व्यक्ति विशेष का कोई संबंध नहीं है। अनावश्यक रूप से विवाद उत्पन्न किया जा रहा है ये माया का राजसी स्वरूप है।

**27–प्रतिष्ठा प्राप्ति के प्रयत्न–** आज के समाज में प्रतिष्ठा प्राप्ति के प्रयास जोर–शोर से हो रहे हैं। हर कोई बिना प्रयास के, बिना गुणों के समाज में प्रतिष्ठित होना चाहता है। आपने समाज में देखा होगा कि धनवान लोग प्रतिष्ठा की प्राप्ति हेतु अपने धन का प्रयोग करते हैं। इसका अभिप्राय ये है कि वे प्रतिष्ठा को वस्तु की तरह से धन से खरीदना चाहते हैं। उन्हें ये भ्रम है, संशय है कि प्रतिष्ठा श्रेष्ठता के कार्यों से नहीं धन से खरीदी जा सकती है। प्रतिष्ठा के लिए मनुष्य नाना प्रकार के कार्य कर रहा है। प्रतिष्ठा प्राप्ति का जो प्रयत्न है वह सम्पूर्णता से राजसी माया का ही कार्यरूप है। राजसी माया की प्रबलता के कारण ही मनुष्य प्रतिष्ठा की प्राप्ति का प्रयत्न करता है और प्रतिष्ठा को धन से खरीदना चाहता है।

**28–वैर भाव का अनावश्यक उद्‌भव–** वैरभाव दो प्रकार का होता है और दोनों प्रकार के वैरभाव को निकृष्ट मानना चाहिए। अर्थात् वैरभाव से मनुष्य का हित नहीं हो सकता है। वैरभाव का प्रथम प्रकार है आवश्यक वैरभाव, दूसरा प्रकार है अनावश्यक वैरभाव। जब हमारी स्वामित्व की वस्तुओं को कोई हड़पना चाहता है अथवा हमारे स्वाभिमान को खण्डित करने को उद्धत होता है तो हमें मजबूरीवश अथवा बाध्य होकर शत्रु से वैरभाव रखना पड़ता है और संघर्ष के लिए उद्वत होना पड़ता है। दूसरे जब हम किसी से अकारण ही उसके विकास आदि से ईर्ष्या करके वैरभाव करते हैं और उसे हानि पहुॅचाने का भाव रखते हैं तो ये अनावश्यक वैरभाव कहा जाता है। ये दोनों प्रकारों के वैरभाव की उत्पत्ति राजसी माया के कारण होती है। इस प्रकार वैरभाव का अनावश्यक उद्‌भव राजसी माया का ही कार्यरूप है।

**29–सकाम कर्मों का आयोजन–**

फल की दृष्टि को मन में रखकर जो कार्य किये जाते हैं वे सकाम कर्म कहे जाते हैं। फल की आकांक्षा का पूर्ण परित्याग करके जो कर्म होते हैं वे निष्काम कर्म की श्रेणी में आते हैं। आज जो आयोजन हो रहे हैं वे अधिकांशतः फल की दृष्टि से होते हैं। गरीबो की सेवा असहायों की सहायता, निर्बल और निर्धन वर्ग के लोगों की भोजन आदि की व्यवस्था, धार्मिक कार्यक्रमों का और गोष्ठियों का आयोजन अधिकांशतः सकाम भाव से ही हो रहे हैं। फल की दृष्टि से जो कार्य हो रहे हैं उन्हें माया के राजसी स्वरूप में हेतु मानना चहिए। यह माया के राजसी स्वरूप की प्रबलता है कि मनुष्य नाना प्रकार के कार्य सकाम भाव से करता है। वह कार्य का आयोजन तो बाद में करता है पर उससे होने वाले लाभ पर चर्चा पहले करता है। ये कार्य राजसी माया का ही कार्य रूप है।

**30–दूसरों में दोषों का दर्शन–** राजसी माया से आवृत मनुष्य दूसरों में दोषों का दर्शन करता है। उन–उन दोषों की चर्चा करके उसकी आलोचना करता है। अपने में भले ही दूसरों की अपेक्षा अधिक दोष हों पर हमारी दृष्टि अपने दोषों पर नहीं जाती है। वरन् अन्य लोगों के दोषों पर जाया करती है। दूसरों में कमियॉ हो सकती हैं, अवगुण हो सकते हैं पर उनको खोजने का कार्य हमारा नहीं है। हमारा कर्तव्य अपनी कमियों को खोजने का है। हम जो दूसरों के दोषों को रहते हुए भी और न रहते हुए भी उन्हे खोजने का, उन पर चर्चा करने का जो कार्य करते हैं वह राजसी माया की प्रबलता के कारण ही करते हैं। राजसी माया हमें दूसरों के दोषों को खोजने हेतु बाध्य करती है।

## च– तामसी माया से प्रभावित शरीर की क्रियायें–

परमात्मा की पराशक्ति का तीसरा स्वरूप तामसी माया का है। माया का ये तामसी स्वरूप विशेष रूप से आज के संसार में अपना प्रभाव दिखा रहा है। अधिकांश लोग इस माया की प्रबलता से आवृत होकर नाना प्रकार के अज्ञानों से मोहित हो रहे हैं। अज्ञान से आवृत होकर मनुष्य तामसी माया के अधीन रहकर नाना प्रकार के दुष्कर्म कर रहा है। आज के समाज में जो आपा धापी है, अव्यवस्था

है, दुष्कर्मिता का वातावरण व्याप्त हो रहा है, अनावश्यक हिंसायें हो रही हैं ,उन सबको तामसी माया का ही कार्यरूप मानना चाहिए। आज का मानव अंधाधुंध भोगवृत्ति में सांसारिक वस्तुओं के संचय में रत है। वह सब का सब तामसी माया के प्रभाव का परिणाम है। निर्बल, निसहायों, निर्दोष लोगों की जो हत्याऐं हो रही हैं और आतंकवाद और अराजकता का जो वातावरण है वह सब का सब तामसी माया का ही रूप समझना चाहिए। इस माया की प्रबलता से मनुष्य अज्ञान से अवृत होकर, संशय युक्त होकर मनमाना आचरण कर रहा है। तामसी माया के प्रमुख प्रभाव का वर्णन निम्न प्रकार किया जा रहा है–

### 31–कर्म विहीनता–

तामसी माया से आवृत मनुष्य कर्तव्य कर्मों का आचरण नहीं करना चाहता क्योंकि उसे अधिकांशता कर्तव्य कर्मो का बोध ही नहीं होता है। तामसी माया जब मनुष्य को प्रभावित करती है तो वह बिना कर्म के ही मानसिक रूप से कर्मो के पूरित होने की कल्पना करके जीता रहता है। आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि के आश्रित हो जाने के कारण वो कर्मविहीन हो जाता है। उसे अपने कर्तव्य का

सम्पादन अच्छा नहीं लगता है। वह मात्र अपनी भोगवृत्ति की पूर्ति हेतु ही कर्मों का सम्पादन करता है। शेष आवश्यक, नित्य नैमित्तिक कर्मों का उसमें सर्वथा अभाव हो जाता है। इसका एक प्रमुख कारण है कि वह तामसी माया की प्रबलता से प्रभावित रहता है और कर्म विहीनता उसे शरीर निर्वाह रूपी अनिवार्य कर्म से भी रोकती है।

**32–क्रोध का अनावश्यक प्रादुर्भाव–** आपने अपने जीवन में ऐसे कई व्यक्तियों को देखा होगा कि वे प्रत्येक समय बात–बात पर क्रोध ही करते रहते हैं। उनका प्रत्येक व्यवहार क्रोध से आवृत रहता है। अच्छी बात हो, अथवा उनके हित की बात हो वे क्रोध से ही उत्तर देते हैं। ये क्रोध का जो प्रकटीकरण है वह तामसी माया का ही स्पष्ट स्वरूप है। जिस मनुष्य में सदैव क्रोध रहता है, जिसे बात–बात पर क्रोध आता है वह प्रत्येक तथ्य की प्रस्तुति क्रोधपूर्ण भाव से ही करता है। क्रोधी क्रोधपूर्ण भाव भंगिमाओं से ही बात करते हैं और वे तामसी माया से आवृत हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को तामसी माया गम्भीर रूप से आ घेरती है। क्रोध का प्रादुर्भाव, कारण और अकारण प्रकट होना और क्रोध की प्रस्तुति तथा क्रोध का अन्तःकरण में रहना ये सब का सब तामसी माया का ही कार्य रूप है।

**34–लालच की अधिकता–** संसार की प्रत्येक वस्तु को पाने की इच्छा का भाव मनुष्य में रहता है। ये भाव अनायास नहीं रहता हैं। उसका एक ही कारण है कि वह संसार की वस्तुओं में सुख को देखता है। इस कारण उन्हें एकत्र करने की आकांक्षा भी उसमें रहती हैं। वह तामसी माया के कारण जगत की वस्तुओं को भोगों को चाहता है। यह चाहना का भाव ,ललचाई दृष्टि से देखकर पाने की, उपभोग की इच्छा रखना ही लालच कहा जाता है। जब हम कोई नई वस्तु देखते हैं तो उसे प्राप्त करना चाहते हैं। ये लालच का भाव मनुष्य के अन्तःकरण में तामसी माया के कारण होता है। तामसी माया ने सांसारिक वस्तुओं को पाने की इच्छा मनुष्य में जाग्रत कर दी है। इस कारण लालच की अधिकता तामसी माया से प्रभावित शरीरों में रहती है।

**35–अज्ञानजनित कर्म–** तामसी माया की अधिकता के कारण अज्ञान मनुष्य को घेर लेता है। उसका जो ज्ञान है वह आच्छादित हो जाता है। जैसे सूर्य को बादल घेर लेते हैं, वैसे ही बादल के स्वरूप में अज्ञान तामसी माया के कारण मनुष्य के ज्ञान को ढक लेता है। मनुष्य का ज्ञान ढक जाने पर वह अज्ञान के कारण अनेक प्रकार अज्ञानजनित कर्म करता है। ज्ञान ही मनुष्य कर्म का उचित संचालक है। तामसी माया से आवृत मनुष्य कुछ का कुछ कार्य करता है जिनमें असामाजिक, अवैधानिक,

अनैतिक कार्यों की प्रमुख्ता होती है। जो करना चाहिए वह नहीं करना ,उसके प्रतिकूल करना अज्ञानजनित कर्म कहा जाता है। अज्ञानजनित कर्म तामसी माया की प्रबलता के कारण होते हैं ।

**36–व्यर्थ की आशा–** मनुष्य के जीवन में व्यर्थ की आशाओं की भरमार है। जिस स्थिति तक हमारी पहुॅच नहीं है जो हमारे लिए प्राप्त करना सम्भव नहीं है, जिसके प्राप्त करने का हमारे जीवन में कोई औचित्य नहीं है, उसको प्राप्त करने का विचार करना और उसकी प्राप्ति की इच्छा करना व्यर्थ की आशा करना कहा जाता है। मनुष्य की व्यर्थ आशाएं तामसी माया के कारण ही होती है। जैसे कोई छोटा व्यक्ति अति उच्च पदस्थ व्यक्ति बनने की आशा करे। कोई साधारण व्यक्ति अचानक धनपति कुबेर बनने की इच्छा करे इस प्रकार की व्यर्थ आशायें तामसी माया के कार्यरूप हैं, तथा उनका मानव जीवन में उदय होना तामसी माया के कारण ही होता है।

**37–निद्रा आलस्य की अनावश्यक उत्पत्ति–** तामसी माया के प्रभाव के कारण मनुष्य निद्रा और आलस्य में डूब जाता है। मनुष्य में यदि अनावश्यक निद्रा–आलस्य का उदय हो जावे तो समझना चहिए कि उस पर तामसी माया का प्रबल प्रभाव है। सात्विक माया से आवृत मनुष्य चैतन्य रहता है और वह अपने सम्पूर्ण कार्य जागरण, नित्य कर्म, भोजन, स्वाध्याय, विश्राम, निद्रा आदि समय से करता है। इन्ही कर्मों को समय से न करना तथा आलस्य से आवृत रहकर निद्रा का अत्यधिक सेवन करना तामसी माया का कार्य रूप है। इस माया की प्रबलता से मनुष्य अपना नित्य कर्म भी समय पर नहीं कर पाता है। प्रातः देर तक सोना और रात्रि में जाग कर कर्म करना इस तामसी माया के प्रभाव के कारण ही होता है।

**38– मिथ्याचरण–**

यथार्थ वस्तु का, घटना का वैसा का वैसा न बताना तथा उसके अनुकूल सत्य का आचरण न करना ही मिथ्याचरण कहलाता है। गीता जी में मिथ्याचारिता की विशिष्ट परिभाषा प्रस्तुत की गई है। जो इन्द्रियों से विषय भोगों को त्याग करके मन से उसका चिंतन करता रहता है वह मिथ्याचारी व्यक्ति है। अर्थात् वैसा करना मिथ्याचारिता। इससे ये स्पष्ट होता है कि हमारे चिंतन और व्यवहार अर्थात् कार्यान्वयन में एकरूपता होनी चाहिए। यदि उसमें अंतर है अर्थात् हम कुछ अन्य विचार करते हैं और उसके अनुरूप क्रियाऐं नही करते हैं तो यह मिथ्याचरण है। मिथ्याचारिता तामसी माया के प्रभाव के कारण ही होती है।

**39– प्राणियों को अनावश्यक कष्ट देना–**

प्राणियों का अनावश्यक कष्ट देना, आवश्यकता पड़ने पर भी किसी प्राणी को कष्ट देना पाप है। उसे प्रताड़ित करना अवैधानिक कार्य है। किसी मनुष्य ने यदि पाप का आचरण किया है तो उसे पाप के आचरण से हटाने का प्रयास करना चाहिए। अनावश्यक रूप से अपनी शक्ति के प्रदर्शन करने के लिए, अपने बल सामर्थ्य का बल दिखाने के लिए मनुष्यों को प्रताड़ित किया जाता है। ये सब का सब कार्य घोर पाप की श्रेणी में आता है। जब तामसी माया का प्रभाव प्रबल होता है तो इस माया के प्रभाव से आवृत मनुष्य अन्य मनुष्यों को, जीवों को अनावश्यक कष्ट देता है। ये कार्य निषिद्ध कर्मों की श्रेणी में रखा गया है। इसे मनुष्य को कदापि नहीं करना चाहिए। तामसी माया जब मनुष्य को घेर लेती है तो वह प्राणियों को अनावश्यक कष्ट देने लगता है।

**40. असहायता तथा दीनता का भाव–** मनुष्य सर्वशक्तिमान परमात्मा का पुत्र है। वह अपने निकृष्ट कर्मों के कारण दीन–हीन असहाय हो जाता है। मनुष्य को जब तामसी माया आ घेरती है तब वह अपने को संसार में असहाय मानने लगता है और दीनभाव से रहता है। मनुष्य यदि परमात्मा के आश्रय में चला जावे तो उसकी दीनता, असहायता समाप्त हो जायेगी। जब मनुष्य को तामसी माया आ घेरती है तो उसके मन में ये भाव उत्पन्न हो जाता है कि हम असहाय हैं, हमारा कोई सहारा नहीं है। हम दीन–हीन हैं। ये भाव जब आपके अन्दर आ जावे तो समझे कि हम पर तामसी माया का प्रबल प्रभाव हो रहा है।

**41. विषाद का प्रादुर्भाव–**

मनुष्य अपने स्वजनों, परिवारीजनों, सम्पर्कित संबंधियों से स्नेह करता है और उनकी ममता से आवृत हो जाता है। ये ममता ही मनुष्य को जीवन भर बांधे रखती है। यदि ममता न हो तो मनुष्य अपने संबंधियों के लिए कुछ न करे। वह अपने स्वजनों के लिए अनेक प्रकार के कार्य करता हैं। स्वजनों के लिए कार्य करके जब वह देखता है कि हमारे स्वजन हमसे प्रतिकूल हो गये हैं अथवा कतिपय कारण हमसे बिछुड़ रहे हैं तो उसके मन में एक भाव उत्पन्न हो जाता है उसी भाव को विषाद कहते हैं। हम सबके मन में भी स्वजनों के बिछोह, वियोग के समय ममता के भाव के कारण दुख उत्पन्न होता है। ये विषाद का भाव कहलता है। जब तामसी माया की प्रबलता मनुष्य को आ घेरती है, तब विषाद के भाव का प्रादुर्भाव हो जाता है और ये भाव प्रबल रूप ले लेता है।

**42. परिवार–समाज–संबंध में कलह उत्पन्न होना**– आज के परिवारों में कितनी कलह है? भाई–भाई, पिता–पुत्र, माता–पुत्र धन के कारण परिवार में कलह उत्पन्न कर देते हैं। समाज की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। संबंधियो में धन सम्पदा कलह के कारण ही होती है। रक्त के संबंध विखण्डित हो रहे हैं। थोड़े से धन और सम्पत्ति के लिए भाई–भाई का हत्यारा बना हुआ है। ये सब तामसी माया की प्रबलता का साक्षात् प्रभाव है। तामसी माया जब मनुष्य को आ घेरती है तब वह परिवार में कलह कर देता है। समाज में, संबंधों में कलह उत्पन्न हो जाती है। आज के परिवारों के विखण्डन का ये प्रमुख कारण है। इसमें तामसी माया का प्रभाव स्पष्ट रहता हैं।

**43. वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति मोहग्रस्तता–** तामसी माया का प्रमुख कार्य है मोह। जब अज्ञानता के कारण किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति हम असीमित स्नेह करते हैं और उसके वियोग की कल्पना से ही दुखी हो जाते हैं तो ये भाव मोह कहा जाता है। जैसे हमने एक सुन्दर भवन का निर्माण बड़े परिश्रम से, अनेक प्रयत्नों से करवाया तो उस भवन के प्रति हमारा मोह उत्पन्न हो जाता है। हम ये सत्य जानते हैं कि अन्ततः हमारी मृत्यु होगी और हम मृत्यु के आगोश में खोकर इस भवन से वंचित हो जायेंगे, परन्तु हमारे भवन को किसी कारणवश नुकसान पहुॅचाने या लेने का प्रयास करता है तो हमें अत्यंत कष्ट होता है। ये कष्ट मोह के कारण ही है। ऐसी ही व्यक्तियों का भी मोह है। जब माया के तामसी स्वरूप का प्रभाव बढ़ता है और उसकी प्रबलता बढ़ती है तो हम असीमित रूप से मोहग्रस्त रहते हैं। मोह तामसी माया का ही स्पष्ट कार्य रूप है।

**44. भोगवृत्ति की अनावश्यक वृद्धि–**

जब मनुष्य में सांसारिक भोगों की, वस्तुओं के संचय की वृत्ति अनावश्यक रूप से बढ़ जाती है तो भी वह तामसी माया से आवृत हो जाता है। भोगों वस्तुओं का अनावश्यक संचय का एक ही उद्देश्य होता है असीमित रूप से स्वच्छन्दता पूर्वक सांसारिक भोगों का आनन्द लेना। मनुष्य में जब ये वृत्ति आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती है तो यह समझना चहिए कि वह तामसी माया से आवृत है। तामसी माया से आवृत मनुष्य सांसारिक भोगों में ही आनन्द का अनुभव करता है। उसकी यह भोग वृत्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह कर्तव्य अकर्तव्य का बोध भूल जाता है। इस भोग वृत्ति के आश्चर्यजनक रूप से बढ़ने का कारण तामसी माया को ही जानना चाहिए।

**45.घोर दुष्कर्म, हिंसावृत्ति और तंत्र–मंत्र में विश्वास–**

जब मनुष्य घोर दुष्कर्मों की ओर अग्रसर होता है तथा हिंसावृत्ति करके समाज में लोगों को मारना चाहता है अथवा मारने की ओर प्रवृत्त होता है, तो समझना चाहिए कि वह तामसी माया के प्रबल प्रभाव से आवृत है। दुष्कर्म, हिंसावृत्ति और तत्र–मंत्र में विश्वास ये सब तामसी माया के ही साक्षात् स्वरूप हैं। समाज में आज हिंसा का बोलबाला है और चारों ओर अनैतिक कर्मों का क्रियान्वयन हो रहा है तथा लोगों में तंत्र–मंत्र के प्रति विश्वास बढ़ता जा रहा है। इस तथ्य से ये समझना चाहिए कि आज के समाज में तामसी माया का प्रभाव बहुत तेजी से बढ़ रहा है। तामसी माया अव्यक्त रहकर भी दुष्कर्मों, हिंसा, तत्र–मंत्र में विश्वास की क्रियाओं के रूप में प्रकट होती है।

**छ– सत् रज मिश्रित माया–** सात्विक माया के पन्द्रह गुणों का वर्णन पूर्व में किया गया है जो सात्विक माया का कार्यरूप है। इसके पश्चात् राजसी माया के पन्द्रह गुणों का भी वर्णन हुआ है। जब दोनों सात्विक और राजसी माया का मिश्रित प्रभाव प्रतीत हो तो समझना चाहिए सत् रज मिश्रित माया की प्रबलता है। जैसे किसी मनुंष्य में तपश्चर्या की आकांक्षा जाग्रत हो और उसका उद्देश्य सांसारिक वस्तुओं का संग्रह हो तो उसे सत रज मिश्रित माया का प्रभाव जानना चाहिए। साधरणतया माया को मनुष्य शीघ्रता से समझ नहीं पाता और उसके स्वरूप से अनजान रहता हैं इस कारण इसे दुष्तर कहा जाता है।

**ज–रज तम मिश्रित माया–** आज मानव इस मिश्रित माया के प्रभाव से अधिक आवृत है। वह जब असीमित आकांक्षाओं की पूर्ति का प्रयास करता है और इस पूर्ति के लिए छल–बल, कपट, हिंसा आदि का आश्रय ले लेता है तब वह रज तम मिश्रित माया से आवृत हो जाता है। राजसी माया के जिन पन्द्रह गुणों का वर्णन पूर्व में हुआ है और तामसी माया के जिन पन्द्रह स्वरूपों का उल्लेख किया गया है यदि दोनों गुण मिश्रित रूप से प्रकट होने लगते हैं तो इसे रज तम मिश्रित माया का प्रभाव समझना चाहिए।

**झ– सत् तम मिश्रित माया–** सात्विक और तामसी माया का मिश्रण बड़ा ही विलक्षण हैं। जब मनुष्य सत् कर्म करने को उद्धत रहता है और तमो गुण के प्रभाव से दुष्कर्मों की ओर भी उन्मुख हो जाता है तो उसे सत् तम मिश्रित माया का प्रभाव जानना चाहिए। उदाहरण कोई समाज सुधारक या शास्त्रों में पारंगत विद्वान मनुष्य

दुष्कर्मों का आचरण करने लगे तो समझना चाहिए की वह सात्विक और तामसी माया के मिश्रित प्रभाव से आवृत है। इस प्रकार सात्विक और तामसी माया के जिन पन्द्रह–पन्द्रह गुणों का उल्लेख पूर्व में हुआ है यदि दोनों का मिश्रित प्रभाव किसी व्यक्ति में प्रतीत हो तो ये समझना चाहिए कि वह व्यक्ति सत् और तम मिश्रित माया के प्रभाव से आवृत है।

## 29. माया के त्रिगुणों के संबंध में कुछ विशिष्ट तथ्य–

त्रिगुणीमयी माया विलक्षण है तथा सत्–रज–तम गुण भी विलक्षण हैं इनकी प्रतीति मनुष्य शरीर में होती है और इनका प्रभाव देवताओं में भी है। त्रिगुणों के विषय में कुछ जानकारी प्रस्तुत है जिससे त्रिगुणों की कार्यविधि, प्रकटीकरण , प्रभाव आदि स्पष्ट हो सके। त्रिगुण किस प्रकार से शरीर में कार्य करते है? उनका प्रकटीकरण शरीर में कैसे होता है? तथा उनके प्रभाव से प्रभावित मनुष्य किस प्रकार का आचरण और व्यवहार करता है ?हम उसे कैसे जान सकते हैं? इस संबंध में कुछ तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं। कृपया उनका अवलोकन कीजिए–

**क–उपासना की तीन विधियॉ–** मनुष्य के प्रत्येक कर्म का कारण होता है अर्थात् बिना कारण के कर्म हो ही नहीं सकता। इस आधार पर उपासना का भी कारण होता है। बिना कारण के उपासना नहीं होती है। जब मनुष्य उपासना की ओर, भगवान की भक्ति की ओर उन्मुख होता है तो उसके पृथक्–पृथक् तीन भाव त्रिगुणों का ही परिणाम हैं। जो उपासना निष्काम भाव से होती है, अर्थात् उपासक को भगवान से कुछ आकांक्षा नहीं होती है परन्तु आकांक्षा न रहते हुए भी भगवान उनकी सम्पूर्ण व्यवस्था करता है, तो ये उपासना सात्विक कही जाती है। उपासना यदि धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य आदि की आंकाक्षा से होती है तो ये उपासना राजसी उपासना कही जाती है। जब उपासना किसी के अहित करने के भाव से उपासक करता है भले ही उसका अहित न हो तो ये उपासना तामसी उपासना कही जाती है।

**ख– त्रिगुणों के पृथक्–पृथक् स्वरूप–** त्रिगुणों का अस्तित्त्व है। वे मूर्त रूप में हैं। सत्विक, राजस तथा तामस का पृथक्–पृथक् स्वरूप है। सात्विक गुण निर्मल अर्थात् मलरहित होता है। प्रकाशस्वरूप होता है और इस प्रकाश के कारण ही ज्ञान का उदय हो जाता है। सात्विक गुण शांत स्वरूप है इस कारण मनुष्य में इसके प्रभाव से अशांति समाप्त हो जाती है। सत्व गुण का जो स्वरूप है उसका प्रभाव शरीर पर

पड़ता है। सात्विक गुणों के प्रभाव से शरीर निर्मल, प्रकाश स्वरूप और शांत हो जाता है। सत्व गुण का जो स्वरूप है उसका प्रभाव अंतःकरण पर भी पड़ता है। रजोगुण संशयस्वरूप है। इस कारण जब शरीर में इस गुण की वृद्धि हो जाती है तो मनुष्य संशय से ग्रस्त हो जाता है और वह सांसारिक वस्तुओं का संचय करने लगता है। ये संचय भोगवृत्ति के कारण होता है। तमोगुण के स्वरूप को अज्ञान स्वरूप कहा जाता है। मनुष्य जब अज्ञान से आवृत हो जाता है तो उसमें आलस्य, प्रमाद, निद्रा की बहुलता हो जाती है। इस प्रकार तीनों गुणों के पृथक्–पृथक् स्वरूप है और उनका शरीर पर पृथक्–पृथक् प्रभाव होता है। सत्वगुण की वृद्धि होने पर शरीर में रज और तम गुण का प्रभाव कम हो जाता है। रज के बढ.ने पर सत्वगुण और तमोगुण का प्रभाव शरीर पर कम हो जाता है। इसी प्रकार तमोगुण की शरीर में वृद्धि हो जाती है तब सत्व और रजोगुण का प्रभाव कम हो जाता है। इस प्रकार मानव शरीर में एक गुण की जब वृद्धि होती है तो शेष दो गुणों का क्षय होता है।

**ग– त्रिगुण प्रभावित मनुष्य की परख–** मनुष्य किस गुण से प्रभावित है और शेष कौन दो गुण उसमें दबे हुए हैं? ये परख भी मनुष्य के विचार और कार्य पद्धति के आधार पर हम कर सकते हैं। मनुष्य के शरीर में जब सत्वगुण बढ़ जाता है तो उसमें शांति के भाव का उदय होता है और भोगवृत्ति के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है। मन में चंचलता का अभाव हो जाता है। सात्विक माया के जिन पन्द्रह गुणों का पूर्व में वर्णन हुआ है वे उसमें स्पष्ट प्रतीत होते हैं। रजोगुणी व्यक्ति के मन में कामनाओं का असीमित रूप से उदय हो जाता है। वह रात दिन कामनाओं की पूर्ति में लगा रहता है। ऐसे व्यक्ति को राजसी समझना चाहिए। जिन पन्द्रह गुणों का वर्णन तामसी माया के प्रभाव के रूप में हुआ है वे ऐसे तामसी व्यक्ति में पाये जाते हैं। तमोगुण के बढ़ जाने पर मनुष्य न पूरी होने वाली असीमित आकांक्षाऐं करता है और शोक तथा मोह से आवृत रहता है। अज्ञान के कारण निद्रा और आलस्य भी बढ़ जाता हैं। शोक एवं मोह से आवृत मनुष्य को तमोगुणी मानना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य की क्रियाविधि के आधार पर उसकी वृत्ति को देखकर हम उसके प्रकार को परख सकते हैं।

**घ– त्रिगुणों का शरीर पर पृथक्–पृथक् प्रभाव–** त्रिगुणों का शरीर पर पृथक्–पृथक् प्रभाव रहता है। सात्विक गुण के शरीर में बढ़ जाने पर मनुष्य यम–नियम रूप अष्टांगयोग के क्रियान्वयन में प्रवृत्ति, श्रद्धा, आस्तिकभाव, भक्ति, मुमुक्षता, दैवी

सम्पदा के गुणों का प्रादुर्भाव, असत् वस्तुओं के त्याग की इच्छा आदि भाव उत्पन्न हो जातें हैं। जब मनुष्य में राजसी गुणों की वृद्धि हो जाती है तो उसके मन में असंख्य कामनाऐं, इच्छाऐं, लोभ–लालच, दर्प–दंभाचरण, अहंकार, ईर्ष्या–द्वेष आदि भाव स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। जब मनुष्य में तमोगुण रहता है तब निद्रा आलस्य प्रमाद की प्रतीति होती है। जड़ता–मूढ़ता आदि गुण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य शरीर में त्रिगुणों का स्पष्ट प्रभाव रहता है। त्रिगुण अपना प्रभाव डालते हैं और उनके प्रभाव को मानव शरीर में स्पष्ट देखा जा सकता है।

**ङ– त्रिगुण का अवस्थाओं में प्रकटीकरण–** पूर्व में तीन अवस्थाओं का वर्णन हो चुका है। वे अवस्थायें जाग्रत अवस्था, स्वप्नावस्था और सुषुप्ति अवस्था कही जाती हैं। सत्वगुण से जाग्रत अवस्था मानी जाती है और रजोगुण से स्वप्नावस्था मानी जाती है तथा सुषुप्ति अवस्था तमोगुण के कारण होती है। सुषुप्ति अवस्था निद्रा अवस्था होती है। निद्रा ही तमोगुण का स्वरूप है। स्वप्नावस्था में भॉति–भॉति अज्ञानजनित कल्पनाऐं और कामनाऐं रहती हैं इस कारण वह रजोगुण का कार्य रूप है। जाग्रत अवस्था में विवेक जाग्रत रहता है और विवेक के जाग्रत रहने से जाग्रत अवस्था को सात्विक गुण का स्वरूप माना जाता है।

**च– त्रिगुण में मृत्यु का परिणाम–** मनुष्य जीवनपर्यन्त जिस भाव से अर्थात् जिस गुण से आवृत रहता है वह भाव मृत्यु के समय भी मनुष्य में रहता है। उस भाव से वह पृथक् नहीं हो सकता। जैसे हमने जीवन में अधिक समय तक सात्विक गुण का

सेवन किया है तो अन्तकाल में सात्विकता ही साथ रहती है। इसी प्रकार यदि मनुष्य जीवनपर्यन्त राजसी गुण से ओत–प्रोत रहता है अर्थात् संसारिक वस्तुओं के संचय में, कामनाओं की पूर्ति में लगा रहता है तो वह मनुष्य मृत्यु के निकट आने पर राजसी गुण से आवृत हो जाता है। इसी प्रकार तामसी गुण से आवृत मनुष्य जीवन पर्यन्त अज्ञान जनित कार्य, दुष्कर्म, हिसांत्मक कार्य करता है तो वह तामसी गुण से युक्त रहता है। मृत्यु के समय तमोगुण उसे प्रभावित करते हैं। सत्वगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर मनुष्य उत्तम लोकों को जाता है जहां वह देवताओं के दिव्य भोगों को भोगता है तथा पुण्य के समाप्त होने पर वह इस मृत्यु लोक में जन्म ग्रहण कर लेता है। राजसी गुण की वृद्धि में मृत्यु हो जाने पर मनुष्य इसी पृथ्वी लोक में पुनः जन्म ग्रहण करता है और तमोगुण की वृद्धि में मनुष्य की यदि मृत्यु होती है तो या तो वह नरक आदि लोकों में जाता है या कीट, पशु, पक्षी आदि यानियों में जन्म ग्रहण करता है।

## छ– त्रिगुणीमयी श्रद्धा–

श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती है जिसे सात्विक, राजस तथा तामस श्रद्धा कहा जाता है। सात्विक श्रद्धा से युक्त मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप के बारे में विचार करता है। यह श्रद्धा मनुष्य में ये विचार उत्पन्न कर देती है कि वह क्या है? वह कहॉ से आया है? उसका स्वरूप क्या है? वह कहां जायेगा? उसका कल्याण किस कार्य में है? उसे क्या करना चाहिए? और क्या नहीं करना चाहिए? राजसी श्रद्धा से आवृत मनुष्य में ये विचार आते हैं कि उसे संसार में असंख्य सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति किस प्रकार होगी? सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के क्या उपाय हैं? इन कामनाओं की पूर्ति के लिए और सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए जो कर्म होता है वह राजसी श्रद्धा का ही रूप है। तामसी श्रद्धा मनुष्य को अनैतिक ,अधार्मिक, असामाजिक कर्म करने को प्रेरित करती है और वह मनुष्य को भूत–प्रेतों की उपासना में भी लगा देती है जिससे मनुष्य दुष्कर्मो के क्रियान्वयन के लिए उद्धत रहता है।

## 30. त्रिगुणीमयी माया संशय उत्पन्न करती है–

त्रिगुणीमयी माया का एक विशिष्ट कार्य है कि वह मनुष्य के मन में संशय की उत्पत्ति कर देती है। संशयरूपी तत्त्व मनुष्य को भ्रमित कर देता है। संशय की उत्पत्ति से मनुष्य में भ्रम की उत्पत्ति हो जाती है क्या करना उचित है? क्या करना अनुचित है? क्या कर्तव्य है? क्या अकर्तव्य है? उस बोध का निश्चयात्मक स्वरूप अर्थात् विनिश्चय करने की शक्ति समाप्त हो जाती हैं। संशयग्रस्त मनुष्य सत्य का सम्यक्रूपेण आचरण नहीं कर पाता है। भ्रम का रहना ही संशय का एक रूप है। संशयग्रस्त मनुष्य अपने कल्याण के मार्ग का निश्चय नहीं कर पाता हैं, इस कारण अपने कल्याण के मार्ग के विनिश्चय हेतु संशय से निवृत होना आवश्यक है। हम संशय रूपी दोष का अपने विचार से वर्गीकृत कर रहे हैं। (क) मौलिक संशय (ख) सांसारिक संशय (ग) ज्ञानरूप संशय और (घ) आध्यात्मिक संशय।

## क– मौलिक संशय–

मौलिक संशय से ग्रस्त मनुष्य मूलभूत सिद्धान्तों के संबंध में संशय से आवृत हो जाता है। ये सम्पूर्ण जगत किसी के द्वारा नियंत्रित है या नहीं है? इसका कोई आधार है? अथवा नहीं है, आदि प्रश्न मौलिक संशय के स्वरूप हैं। प्रमुख मौलिक संशय का विवरण निम्न प्रकार है–

**1. परमात्मा नहीं है–** इस संसार में इस सिद्धान्त को मानने वालों की कमी नहीं है कि परमात्मा नहीं है। परमात्मा अव्यक्त सत्ता है वह विभिन्न प्रकार के रूपों में, क्रियाविधि में अपने को प्रकट करता है। प्रत्यक्ष न होकर, अप्रत्यक्ष रहकर नाना प्रकार के कर्म करता है। व्यक्त, प्रत्यक्ष न होने के कारण लोग ये प्रश्न करते हैं कि परमात्मा कहां है? परमात्मा नहीं है, क्योंकि वह हमें प्रतीत नहीं होता। इस कारण उसका अस्तित्त्व नहीं है। परमात्मा है इसके लिए हम उसे प्रकट तो नहीं कर सकते हैं। प्रकट न करने के कारण ही उसे श्रद्धा और आस्था का विषय मान लेते हैं,और वेदान्त के सिद्धान्तों के आधार पर उसकी सत्ता को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। जब कोई ये प्रश्न कर देता है कि उसकी सत्ता नहीं है। हम परमात्मा को नहीं मानते हैं, तो इस प्रश्न का कोई उत्तर हमारे पास नहीं है कि हम परमात्मा को दिखा सकें कि वह है। ये एक प्रकार का मौलिक संशय है, जो माया अज्ञानी मनुष्यों के मन में उत्पन्न करती है और इस सिद्धान्त को दृढ़ रखती है।

**2. परमात्मा है अथवा नहीं यह निश्चित नहीं है–** माया मनुष्य के अन्तःकरण में यह संशय उत्पन्न कर देती है कि परमात्मा है कि नहीं। परमात्मा है नहीं ये मानना पृथक् प्रकार का मौलिक संशय है। परमात्मा है अथवा नहीं यह उससे पृथक प्रकार का संशय है। इस संशय से नकारात्मक और सकारात्मक दोनों ही भावों का प्रकटीकरण हो रहा है। इस प्रकार के संशय से ग्रस्त मनुष्य यह निश्चय नहीं कर पाता है कि परमात्मा का अस्तित्त्व है या नहीं। अनुकूल परिस्थितियों में ऐसे व्यक्ति परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करते हैं और प्रतिकूल परिस्थितियों में परमात्मा के अस्तित्त्व को अस्वीकार कर देते हैं। इस संशय से ग्रस्त मनुष्य जब अनुकूल कारणों से प्रसन्न होता है तो कहता है कि परमात्मा की बड़ी दया है और जब प्रतिकूलता में अप्रसन्न होता है तो कहता है कि परमात्मा है नहीं। यदि होता तो हमारी प्रार्थना अवश्य सुनता और हमारा दुख हर लेता। इस प्रकार का संशय मौलिक संशय का ही रूप है।

**3.यह जगत बिना आधार के है–** इस संसार का कोई स्पष्ट आधार तो प्रतीत नहीं होता है। अर्थात् यह जगत कहां टिका है? यह स्पष्ट नहीं है। जब संसार का आधार प्रतीत नहीं होता है तो वह बिना आधार वाला है यह स्पष्ट होता है। यह जगत बिना आधार वाला है यह तथ्य माया के द्वारा उत्पादित संशय है। हम जिस जगत में रह रहे हैं, वह किस आधार पर टिका है ?यह संशय मौलिक संशय है। हम सभी ये जानते हैं ये पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और निरंतर गतिशील है।

इसकी गतिशीलता को कोई स्पष्ट प्रमाण हमें प्रतीत नहीं होता है इस कारण इस जगत को हम आधारहीन मान लेते हैं। ये भी एक प्रकार का मौलिक संशय है।

**4. स्त्री–पुरूष के संयोग से जनित है–** हजारों वर्षों से यह सृष्टिक्रम चला आ रहा है। हमारे पिता–पितामाह पूर्वज आदि ने इस पृथ्वी पर जन्म अवश्य लिया होगा जिसके कारण हम आज अस्तित्त्व में हैं। ये क्रम ये तथ्य स्पष्ट करता है कि मनुष्य का पुनर्जन्म तथा पुनः मृत्यु का क्रम चलता है। मनुष्य उत्पन्न होता है और समय के साथ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जगत के स्त्री–पुरूषों की उत्पत्ति को देखकर यह प्रतीत होता है कि जगत मात्र स्त्री–पुरूषों में संयोग से उत्पन्न हो जाता है और क्रमिक चलता रहता है। पूर्व में, अतीत में चलता रहा है और आगे भी चलता रहेगा। इस संयोग के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। यह जगत मात्र स्त्री–पुरूष के संयोग से उत्पन्न हुआ है यह भाव रखना एक प्रकार का मौलिक संशय है जो माया के कारण उत्पन्न हो जाता है।

## ख– सांसारिक संशय–

माया जो दूसरे प्रकार का संशय उत्पन्न करती है उसे सांसारिक संशय कहते हैं। संसार के अधिकतर लोग इस संशय से ग्रस्त रहते हैं। इस जीवन का क्या उद्देश्य है? जीवन हमें क्यों प्राप्त हुआ है? इस संबंध में संशय ग्रस्त रहते हैं। जीवन के उद्देश्य को लेकर अनिश्चितता का ये संशय आज बहुत से लोगों में व्याप्त है। मनुष्य जीवन के वास्तविक जीवन के उद्देश्य के प्रति संशय उत्पन्न कर देना माया का प्रमुख कार्य है। हम किसी भी कार्य के उद्देश्य के प्रति संशय ग्रस्त हो जाते हैं तो उस उद्देश्य की प्राप्ति हम नहीं कर सकते हैं। इसी कारण मनुष्य जीवन के उद्देश्य के प्रति संशयग्रस्तता मनुष्य को उसके वास्तविक उद्देश्य से विमुख रखती हैं। माया मनुष्य में कैसे–कैसे संशय उत्पन्न कर देती हैं? ये तथ्य हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

**1. मनुष्य जीवन का उद्देश्य धनोपार्जन है–** आज का मनुष्य धन के उपार्जन को मानव जीवन का उद्देश्य समझकर, मानकर धन के उपार्जन हेतु रात–दिन एक किये है। समाज में किसी व्यक्ति ने, किसी परिवार ने कतिपय कारणों से कुछ अच्छा धन संचित कर लिया है तो उसे लोग ये कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने बहुत तरक्की की हैं। एक पिता अपने पुत्र को ये बताता है कि धन का उपार्जन कैसे किया जाये? नीति–अनीति के मार्ग पर चलकर येन–केन–प्रकारेण किसी न किसी

प्रकार से धन का उपार्जन करना मानव ने अपना उद्देश्य बना लिया है। क्या धन का उपार्जन करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है? इस पर आप भी विचार करें। ये धन जो हमने आपने येन–केन–प्रकारेण उपार्जित किया है, कमाया हैं वह धन हमारी मृत्यु के साथ छूटने वाला है। जीवन को धनोपार्जन का उद्देश्य बनाकर कार्य करना मायाजनित संशय है। इस उद्देश्य से हम संसार में सफल तो हो सकते हैं पर अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

**2. जीवन का उद्देश्य आमोद–प्रमोद है–** आज के समाज में आमोद–प्रमोद का बोलबाला है। मनुष्य अधिकाधिक धन का उपार्जन करना चाहता है और उस धन से आमोद–प्रमोद करना चाहता है। ये संशय मनुष्य के मन में राजसी माया के कारण उत्पन्न हो जाता है। आज जो भ्रष्टाचार से धन कमाने की प्रवृत्ति ने विशाल रूप ले लिया है उसका एक ही कारण है कि प्रत्येक क्षेत्र का व्यक्ति चाहे वह राजनीतिक हो, अधिकारी हो, व्यवसायी हो वह धन एकत्र करके अपने आमोद–प्रमोद के साधनों हेतु भविष्य में निशिचिंत होना चाहता है। धन के उपार्जन के जो उद्देश्य हैं उन्हें एक मात्र आमोद–प्रमोद ही निश्चित किया गया है। हम अधिकतम धन का उपार्जन करें और अधिकतम सुखी जीवन बिताये ये आज के मानव का उत्कृष्ट लक्ष्य है। पढ़–लिखकर खूब धन कमायेंगे, खूब धन कमाकर खूब आमोद–प्रमोद करेंगे, ये जीवन के उद्देश्य का एक संशय है। ये संशय मनुष्य में माया के कारण हो जाता है। माया इन उद्देश्य को मनुष्य के अंतःकरण में गहरे तक डाल देती है। यह उद्देश्य इतना गहरा होता है कि हम समझ नहीं पाते हैं और संशयग्रस्त रहकर आमोद–प्रमोद में अपना जीवन बर्बाद कर देते हैं।

**3. जीवन का उद्देश्य पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य की प्राप्ति है–** मनुष्य धन के उपार्जन को अपने जीवन का उद्देश्य बनाता है। ये धन किस प्रकार उपार्जित होगा? वे साधन भी स्वयं ही विचारता है। बहुत से लोग उच्च पद के प्राप्ति के उपरान्त ही धन के उपार्जन करने का संकल्प लेते हैं। उच्चपद स्वयं ही धन को उपार्जित करता है। माया के द्वारा बहुत से लोगों के मन में यह तथ्य घर कर गया है कि जीवन का उद्देश्य उच्च पद की प्राप्ति, प्रतिष्ठा की प्राप्ति तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति है। राजनीतिक अथवा शासकीय पद मिलने पर प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। राजनीतिक पद की प्राप्ति के लिए आज के जगत में कितना संघर्ष है? ये सब कोई स्पष्ट देख रहा है। कितनी मिथ्याचारिता, झूठ, प्रपंच आदि करना पड़ता है? यह कोई वर्णन का विषय नहीं है। इतनी बड़ी मिथ्याचारिता, झूठ, प्रपंच

करके हमें पद प्राप्त होता है और प्रतिष्ठा तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। माया का राजसी स्वरूप ही मनुष्य में ये संशय उत्पन्न कर देता है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य पद, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य की प्राप्ति है। इस संशय से ग्रस्त मनुष्य नाना प्रकार की चेष्टाऐं करने पर प्रतिष्ठा की प्राप्ति का प्रयास करता है।

**4. सांसारिक भोग वस्तुएं एकत्र करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है–** मनुष्य अपने जीवन के पृथक्–पृथक् उद्देश्य बनाता है ये सब माया के कारण ही है। ये माया उपार्जित संशय है। मुगलकालीन अनेक भव्य इमारतें हमारे देश में मौजूद हैं। मुगलकाल के शासकों ने अपने जीवन में इनका निर्माण कराया। अनेक प्रकार की कहानियॉ किंवदंतियॉ आज भी हमारे समाज में उपलब्ध हैं जो मुगल शासको की भोगवृत्ति को प्रदर्शित करती हैं। आज के मानव ने भी अपने जीवन के उद्देश्य को कुछ इसी प्रकार से निश्चित कर लिया है। वह सांसारिक भोगों की वस्तुओं को एकत्र करने के प्रति अति उत्साही होता है। प्रत्येक मौसम के अनुकूल भव्य भवन का निर्माण, उसमें प्रत्येक प्रकार की सम्पत्तियों का एकत्रीकरण, कुछ अवशेष न रहे इसके लिए पूरा प्रयास होता है। ये सब आज के मानव जीवन के स्पष्ट उद्देश्य हैं। ये माया के द्वारा उपार्जित संशय है। माया के द्वारा उपार्जित संशय इतना प्रबल है कि हम आप इसमें पूरी तरह से डूब चुके हैं।

**5. खाओ पियो और मौज करो–** माया ने ,सांसारिक संशय की प्रबलता ने मनुष्य को इतना संशयग्रस्त कर दिया है कि वह अपने जीवन के उद्देश्य को खाओ पियो और मौज करो मान बैठा है। यह सांसारिक संशय की महाप्रबलता है। आज के युवा ने अपनी जीवन शैली को इसी उद्देश्य में परिवर्तित कर लिया है उसका एक उद्देश्य है कि धन का उपार्जन येन –केन–प्रकारेण करो और उस धन से राजसी और तामसी वस्तुओं का सेवन करो और मौज मस्ती करो। ये सिद्धान्त आज के मानव जीवन को ध्वस्त कर रहा है। हमारे आगे आने वाली पीढ़ियॉ भी इससे प्रभावित हो रही हैं। परमात्मा की पराशक्ति माया की प्रबलता से ये सिद्धान्त दृढ़ हो रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ये मान्यता बढ़ती जा रही है कि खाओ पियो और मौज करो। हमने कभी इस विषय पर विचार नहीं किया है कि हम जो जीवन का ये सिद्धान्त बनाते हैं उसका दुष्प्रभाव और दुष्परिणाम क्या होगा? हमारा सामाजिक जीवन कितना दूषित हो जायेगा? हम ये विचार नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार के संशयग्रस्त उद्देश्यों को लेकर आज का मानव जी रहा है। ये माया की प्रबलता के कारण ही है।

## ग– ज्ञानरूप संशय–

त्रिगुणीमयी माया मनुष्य में ज्ञानरूप संशय उत्पन्न कर देती है। मनुष्य इस प्रकार के संशय से युक्त होकर अपने को ज्ञानी मानता है। वह यह भाव मिथ्या रूप से समझता है कि हम ज्ञानी हैं और हमारा ही ज्ञान सही है, पर्याप्त है। मनुष्य तो सर्वथा अज्ञानी है, इस जगत की विशिष्टताओं को देखें तो पायेंगे की परमात्मा ने इस जगत में कितनी अलौकिकताओं से कितने आश्चर्यजनक तथ्यों से परिपूरित किया है? इन अलौकिकताओं तथा आश्चर्यजनक वस्तुओं के उत्पादक, रचयिता का ज्ञान कितना विशाल है? कितना विस्तृत है? उसके ज्ञान की तुलना में मनुष्य सर्वथा अज्ञानी है। उसके पास ज्ञान का अभाव हैं। वह ज्ञानहीन हैं। इस जगत के निर्माण में उसने कैसे–कैसे तत्त्वों को रचा है? यह विचारणीय है। तभी तो उसे ज्ञान स्वरूप कहा जाता है। इस कारण मनुष्य को अपने ज्ञान का कभी अहंकार नहीं करना चाहिए। माया ने मनुष्य में कैसे–कैसे ज्ञान रूप संशय उत्पन्न कर दिये हैं? यह कुछ प्रकरणों में यहां प्रस्तुत है। कृपया अवलोकन कीजिए–

**1. हमें सब कुछ ज्ञात है–** पढ़े–लिखे लोगों को, उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों को आपने यह कहते हुए ये सुना होगा की हमें सब कुछ ज्ञात है, हमें न बतायें, हम सब कुछ जानते हैं। ये ज्ञात होने का भ्रम, कुछ जानने का संशय माया ही मनुष्य के मन में उपार्जित कर देती है। एक मनुष्य जीवन में कई विषयों को पढ़ सकता है, अध्ययन कर सकता है तथा अध्ययन करके जानकारी को संकलित कर सकता है। अधिक अध्ययन से अधिक जानकारी मस्तिष्क में संचित हो जाती है। एक व्यक्ति समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थ शास्त्र आदि विषयों का प्रकाण्ड जानकार गणित के विषय में कम जानकारी ही रखता है। हमारे कथन का ये अभिप्राय है कि मनुष्य सीमित विषयों के अध्ययन से सीमित जानकारी प्राप्त कर सकता है। जीवन भर के अध्ययन से कई विषयों की जानकारी हो सकती है। ऐसे अनेक साहित्यकार कवि, लेखक अनेक जीवन के क्षेत्रों में विभिन्न विषयों पर लिखने वाले सम्पूर्ण जीवन ही अध्ययन में लगा देते हैं। उन्हें समाज में विशिष्ट स्थान उनकी जानकारी के कारण, अध्ययनरूपी स्वाध्याय के कारण प्राप्त हो जाता है। एक समालोचक अनेक विषयों की समालोचनाऐं लिखता है। वह अपनी जानकारी के अनुसार ही, अपने ज्ञान के आधार पर ही समालोचना करता है, परन्तु उसे सीमित ज्ञान ही होता है। एक विषय पर दो पृथक्–पृथक् समालोचकों के पृथक्–पृथक् मत रहते हैं। एक विषय पर यदि हम कई समालोचकों के विचार जाने तो सब में पृथकता, विषमता, प्रतिकूलता ही

दृष्टिगाोचर होगी। इस कारण मानव बहुत सीमित ज्ञान वाला ही है। यदि वह ये कहता है कि हमें सब कुछ ज्ञात है तो ये उसका अहंकार ही कहा जायेगा। ये कथन मनुष्य माया की प्रबलता तथा उसके द्वारा उपार्जित संशय के आधार पर कहता है और वैसा ही अनुभव भी करता है। मनुष्य अज्ञानी है, तत्व ज्ञान के पश्चात् ही वह वास्तविक ज्ञान का पर्याय कहा जाता है।

**2. हमारा ज्ञाान सही है–** एक शिक्षित व्यक्ति के अंतःकरण में स्वाभाविक रूप से यह भाव रहता है कि वह पढ़ा–लिखा व्यक्ति है। उसने अध्ययन किया है। वास्तविक तथ्य भी यही है कि मनुष्य अध्ययन के पश्चात् कुछ ज्ञान अर्जित कर लेता है। उच्च शिक्षित मनुष्य में ये भाव और भी प्रगाढ. होता है कि वह उच्च शिक्षित व्यक्ति है। उच्च शिक्षित व्यक्ति में कुछ विशेष जानकारी रहती है, ये तथ्य सही है। परन्तु जिस विषय में उसने ये शिक्षा प्राप्त की है उस विषय में तो वह जानकार हो सकता है, परन्तु प्रत्येक विषय में अच्छा जानकार हो यह तथ्य निश्चित नहीं है। उच्चशिक्षित व्यक्ति के अतिरिक्त भी कम शिक्षित लोगों में तथा सामाजिक जीवन के अनुभवी व्यक्तियों में भी कई क्षेत्रों की जानकारी हो जाती है। ऐसे व्यक्ति ये कहते हैं कि हमारा ज्ञान सही है और अन्य का सही नही है। हम जो कह रहे हैं वह सही ज्ञान के आधार पर कह रहे हैं। हमारा ज्ञान इस विषय में सही है अन्य लोगों का सही नहीं है। यह विचार भी माया के कारण उत्पन्न हो जाता है। माया संशय उत्पन्न कर देती है कि हमारा ज्ञान सही है और उस संशय के कारण ही हम अपने मत को हठ पूर्वक मानते हैं। किसी विषय में यदि संशय हो तो हमें संशय का सम्यक्रूपेण निवारण कर लेना चाहिए। हमें यह हठ नहीं करना चाहिए कि हमारा ही मत, हमारा ही ज्ञान सही है। माया का ज्ञानरूप संशय मनुष्य के अंतःकरण में हठवादिता उत्पन्न कर देता है कि हमारा ज्ञान सही है, उचित है अन्य का नहीं।

**3. जो हम जानते हैं वह कोई नहीं जानता–** दार्शनिकों, विचारकों, चिंतकों में कभी–कभी दृढ़ हो जाता है कि हम जो जानते हैं वह कोई नहीं जानता है। हम जो प्रस्तुत कर रहे हैं वह कोई नहीं प्रस्तुत कर सकता है। मन एक कल्पनाशील तत्त्व है वह विचारों को आकाश के सदृश उत्पन्न कर देता है। आपने अनेक दार्शनिकों, विचारकों, चिंतकों की पुस्तकों का अध्ययन किया होगा। उन सब में एक ही विषय के संबंध में जो पृथकता रहती है, विचारों में सामांजस्यता नहीं बैठती, प्रतिकूलता रहती है। ये सब मन की संकल्पनाऐं हैं। मन किसी विषय विचार करते

हुए बहुत दूर तक चला जाता है, और फिर विचारों में तारतम्यता बिठाकर एक विषय को प्रस्तुत करता है । अनेक विचारकों की पुस्तकों के अध्ययन से ये तथ्य स्पष्ट हो जाता है। प्रख्यात विचारकों में मन द्वारा उपार्जित तथ्यों की बहुलता रहती है। प्रख्यात साहित्यकारों, विचारकों, दार्शनिकों की पुस्तकों का जब आप अध्ययन करेंगे तो आप पायेंगे कि उन्होंने विभिन्न प्रकार के अध्ययन तथा मन की संकल्पना की शक्ति के आधार पर प्रख्यात पुस्तकों का सृजन किया है। भॉति–भॉति के प्रतिकूल सिद्धान्त मनुष्य को भ्रमित कर देते हैं। यही माया का ज्ञान रूप संशय है। ऐसी स्थिति में ये विचार दृढ़ हो जाता है कि हम जो जानते हैं वह कोई नहीं जानता। जब हम इस प्रकार के संशय से ग्रसित हो जायें तो हमें समझना चाहिए कि हम माया के ज्ञानरूप संशय से ही आवृत हैं।

**4–किसी क्षेत्र की विशिष्ट जानकारी का भ्रम–** जब मनुष्य किसी क्षेत्र में विशेष जानकार हो जाता है तो वह अपने ज्ञान के आधार पर उस क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है। रात–दिन उसी क्षेत्र में संलग्न रहता है। वह अपने जीवन के लक्ष्य को उसी क्षेत्र में संलग्न करता है। एक अभिनेता अभिनय के क्षेत्र में यदि पारंगत हो जाता है तो वह अभिनय में ही विभिन्न प्रकार के आयाम स्थापित करना चाहता है। वह एक होकर विभिन्न रूपों में अपने को प्रदर्शित करता है। उसका अभिनय का क्षेत्र ही उसके लिए सब कुछ है। वह अधिकांशतः अन्य क्षेत्रों के बारे में कुछ नहीं विचारता। इसी प्रकार अन्य क्षेत्र के लोगों को भी अपनी जानकारी का भ्रम रहता है। वे सारा जीवन ही उसी क्षेत्र में जिसके वे जानकार हैं समाप्त कर देते हैं। विशिष्ट लोग अपने क्षेत्र की जानकारी तथा कार्य के कारण प्रसिद्ध भी हो जाते हैं। जैसे संगीत, कला, व्यवसाय, बैंकिग आदि के क्षेत्रों के जानकार अपने ही क्षेत्रों में रमें रहते हैं। वे जीवन की वास्तविकता से परिचित नहीं होना चाहते हैं। ये माया के ज्ञानरूप संशय द्वारा उपार्जित भ्रम है। हम चाहे किसी भी क्षेत्र के विशिष्ट जानकार हों परन्तु पहले मानव हैं। इस कारण मानव जीवन की क्या वास्तविकता है इस तथ्य को हमें अवश्य जानना चाहिए।

**घ– अध्यात्मिक संशय–** भारतवर्ष जैसे धर्म प्रधान देश में अध्यात्मिक संशयों की बहुलता है। यद्यपि अध्यात्मिक संशय सम्पूर्ण विश्व के अध्यात्मिक जगत में हैं। भारत वर्ष की जनता में धार्मिक श्रद्धा कूट–कूटकर भरी है क्योंकि उसके पूर्वज अध्यात्मिक जगत के मनीषी थे, ऋषि–महार्षि थे। भारतवर्ष की अध्यात्मिक श्रद्धा का दर्शन विभिन्न अवसरों कार्तिक पूर्णिमा, माघ पूर्णिमा, कुम्भ, महाकुम्भ के अवसरों पर

स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। अनेक मंदिरों में लाखों–करोड़ों लोग प्रतिवर्ष दर्शन करके अपनी अध्यात्मिक श्रद्धा का प्रदर्शन करते हैं। भारतवर्ष की अध्यात्मिक श्रद्धा जितनी गहरी है, जितनी विस्तृत है, उतने ही अध्यात्मिक संशय भी गहरे एवं विस्तृत हैं। भारतवर्ष की भोली–भाली धर्म परायण जनता के मन में अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का दुष्प्रचार हुआ और उन्हें, सत्य से, वास्तविकता से दूर रखने का कार्य किया गया। अध्यात्मिक संशय मनुष्य को सत्य से दूर ले जाते हैं। इस कारण एक साधक के लिए तथा जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर आरूढ़ होना चाहता है उसके लिए अध्यात्मिक संशय बहुत हानिप्रद हैं। इस कारण प्रमुख अध्यात्मिक संशयों का वर्णन आवश्यक है। कृपया प्रमुख धार्मिक संशयों का अवलोकन कीजिये –

### 1. किसी मनुष्य को भगवान मानने का संशय–

हमारे देश में कई महानुभावों ने अपने को भगवान घोषित कर दिया। हमारी धर्म प्राण, श्रद्धायुक्त भोली–भाली जनता ने उन्हें भगवान समझकर, मानकर, भगवान के रूप में प्रतिष्ठित कर उनकी पूजा उपासना आरम्भ कर दी। यह कार्य महाभारत काल से तथा इससे पूर्व से भी हो रहा है। आज भी हो रहा है। जब कोई मनुष्य अपने को भगवान घोषित कर देते हैं तो सत्य से अपरिचित लोग उन्हें भगवान मानने लगते हैं। ये माया का प्रभाव है कि मनुष्य एक सामान्य व्यक्ति को ईश्वर बना देता है। ऐसे कल्पित भगवान बने व्यक्ति वैसा ही व्यवहार और आचरण भी करने लगते हैं। इस मान्यता से वह अपना सर्वनाश तो करता ही है और अपने लाखों अनुयायियों का भी सर्वनाश कर देता है। वह स्वयं तो सत्य से परिचित नहीं होता और न ही वह अपने शिष्यों को सत्य से परिचित करा पाता है। हमने पूर्व में भी ये कहा था की परमात्मा और मनुष्य में एक मौलिक अंतर है कि मनुष्य प्रकृति के अधीन है और प्रकृति परमात्मा के अधीन है। मनुष्य की अधीनता कभी समाप्त नहीं हो सकती है। इस कारण यदि मनुष्य अपने को भगवान के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है तो वह नितांत मिथ्याचारिता है तथा ऐसे व्यक्ति का बहिष्कार करना यथेष्ट है। मनुष्य भगवान नहीं हो सकता है। इस कारण किसी मनुष्य के भगवान के रूप में उपस्थित होना एक प्रकार का मायिक संशय है और माया का रूप है।

### 2. कल्कि अवतार के रूप में प्रतिष्ठा का संशय–

जिस प्रकार कई महानुभावों ने अपने को भगवान के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है वैसे ही कई महानुभावों ने अपने को कल्कि अवतार (कलयुग का अवतार)

व्याख्यापित किया है। उनका कथन है कि जब–जब धर्म का पतन होता है तब–तब भगवान अवतार ले लेते हैं। इस समय धर्म का पतन चरम सीमा पर है इस कारण अमुक व्यक्ति कल्कि अवतार के रूप में प्रकट हुआ है। जब एक मनुष्य अपने को कल्कि अवतार कहने लगता है तो वह अवतारी पुरूषों की भॉति ही आचरण करता है। यह सब माया के द्वारा उपार्जित संशय है जो कल्कि अवतार मनुष्य को तथा उनके मानने वाले अनुयायियों को भ्रमित कर देता है। वर्तमान में कोई कल्कि अवतार नहीं है और जब वह प्रकट होगा तो विशिष्ट प्रकार के कार्य करेगा जो समान्य मनुष्यों द्वारा सम्भव नहीं है। कल्कि अवतार का संशय आज भारतवर्ष में पर्याप्त रूप से व्याप्त है। कल्कि मिथ्या अवतारी पुरूषों ने अनेक मिथ्या सिद्धान्तों की स्थापना भी कर दी है और वह भॉति–भॉति के अनावश्यक तर्क, प्रकिया समझाकर लोगों को भ्रमित कर रहे हैं। ये सब माया का ही कार्य रूप है। उसकी प्रबलता है कि मनुष्य मोहित हो रहा है। सत्य से परे जाकर, समझकर आचरण करने को उद्यत है।

### 3. शास्त्र के प्रतिकूल मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना का संशय–

आज अनेक महानुभावों ने शास्त्रों के प्रतिकूल मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना कर ली है और उन मिथ्या मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर लोगों को भ्रमित कर रहे हैं। परमात्मा ने ब्रह्माण्ड का निर्माण प्रकृति के द्वारा किया है। निर्माण के साथ उसने विभिन्न देवताओं को पृथक्–पृथक् दायित्वों को निर्वहन करने का आदेश प्रदान दिया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य–चन्द्र, वरूण, इन्द्र, धर्म आदि देवगण इस जगत की व्यवस्था का संचालन करते हैं। वे सभी देवयोनि के सदस्य हैं। मनुष्ययोनि के नहीं है। कोई मनुष्य अपने को देवताओं के समान स्थापित करके सृष्टि निर्माण में अपने को सहयोगी सिद्ध करता है तो यह मिथ्याचारिता है। वह स्वयं तो भ्रमित होता है और अनुयायियों को भी भ्रमित करता है। सृष्टि की स्थापना, रचना आदि कार्य परमात्मा के हैं, मानव के नहीं हैं। मानव सृष्टि की रचना तथा निर्माण नहीं कर सकता है। यह ध्रुव सत्य है। इस प्रकार अनेक तथाकथित लोगों ने शास्त्रों के प्रतिकूल सिद्धान्तों की स्थापना का कार्य आरम्भ कर दिया है। वह स्वयं तो भ्रमित है और नई मौलिक सिद्धान्त की स्थापना से लोगों को भ्रमित कर रहे हैं। मनुष्य तथा देवयोनि पृथक्–पृथक् हैं। हमें ये समझना चाहिए एक मनुष्य को देवता बनाने का कार्य कदापि नहीं करना चाहिए यह शास्त्र विरूद्ध कार्य है। एक मानव को देवता बनाने का कार्य, उसको देवता के रूप में प्रतिष्ठित करने का कार्य माया का कार्य रूप है यह माया की प्रबलता ही है।

**4–सहजता से तत्त्वदर्शन का भ्रम–**

आज कुछ संस्थाओं ने तत्त्वदर्शन का कार्य करना आरम्भ कर दिया है। वे इस ज्ञान को अत्यंन्त सहज मानते हैं। जैसे हमें किसी वस्तु की आकांक्षा, आवश्यकता होती है तो हम उसे बाजार जाकर अपनी आवश्यकता की वांछित वस्तु खरीद लाते हैं। इसी प्रकार कई संस्थाओं ने भोले–भाले लोगों को तथा पढ़े–लिखे लोगों को भी संशयग्रस्त कर दिया है। उन्हें तत्त्वदर्शन करा कर ज्ञानवान बना दिया है। ज्ञान प्राप्त करना अत्यंन्त सरल है, पर उसकी प्राप्ति इतनी सरलता से नहीं होती है। ज्ञानवान मनुष्य संसार की चेष्टाओं में नहीं जाता है और उसका व्यवहार ही विशिष्ट हो जाता है। उसमें संसार के प्रति शून्यता आ जाती है। जगत के क्रिया–कलाप उसके लिए निरर्थक हो जाते हैं। यदि आप संसार के क्रिया–कलापों में संलग्न हैं उनसे व्यवहार कर रहे हैं तो आप निश्चित ही आत्मज्ञानी नहीं हैं। कामनाओं का सम्पूर्णता से त्याग, संसार की ममता से विहीनता, अहंकाररहित हो जाना, स्पर्हारहित हो जाना ये सब आत्मज्ञानी पुरूषों के सामान्य लक्षण हैं। सुख–दुख, लाभ–हानि, मान–अपमान में सम हो जाना यह आत्मज्ञानी का विशेष लक्षण है। इन लक्षणों की परख साधक को स्वयं कर लेनी चाहिए। यदि किसी कारण वश अपने को आत्मज्ञानी होने का भ्रम हो गया है तो इसे आप अपने मन से निकाल दें और इस ओर सार्थक प्रयास करें। आत्मज्ञान सहजता से हो सकता है ये भ्रम माया का ही कार्य रूप है। माया की प्रबलता के कारण ही हमें ये मिथ्या आभास और भ्रम हो जाता है। जिसे हमें निकाल देना चाहिए।

**5. शास्त्र के अर्थों की भ्रमपूर्ण व्याख्या करना–** शास्त्रों ने प्रत्येक तथ्यों के बारे में अपनी स्पष्ट और विशेष व्याख्या प्रस्तुत की है। शास्त्रों की व्याख्या में कहीं कोई त्रुटि नहीं है। शास्त्रों के अर्थों को, स्पष्ट व्याख्याओं को भी कुछ लोगों ने माया के प्रभाव से भ्रमित करने का प्रयास किया है। शास्त्र की कुछ स्पष्ट व्याख्याओं का अवलोकन कीजिए।

**क– संन्यासी कौन है?–**जो न तो द्वेष करता है और न ही आकांक्षा करता है वह संन्यासी है।

**ख– योगी और संन्यासी कौन है?–** जो कर्मफल के आश्रय का त्याग कर देता है अर्थात् जो कर्म करके भी उसके परिणाम की इच्छा नहीं करता है ,वह योगी भी है और संन्यासी भी है।

**ग– ब्राह्मण कौन है?–** ब्राह्मण में कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। वे गुण शम, दम, क्षमाभाव, मन वाणी में विनम्रता, ज्ञान, विज्ञान ,आस्तिक भाव और शौच ये ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण हैं।

**घ– पंडित कौन है?–** जिसके समस्त कर्म ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म हो चुके हैं तथा वह संकल्प और कामना का त्याग करके कर्म करता है उसे विद्वान लोग भी पंडित कहते हैं।

**ड– मुक्त कौन है?–** जिस पुरूष ने एक मात्र परमात्मा का आश्रय ग्रहण कर लिया है वह मुक्त है।

**च–सुखी कौन है?–** जिस पुरूष ने जीवन रहते हुए कामना और क्रोध को नियंत्रित कर लिया है वह सुखी है।

हमारे मौलिक आधारभूत शास्त्रों ने सभी तथ्यों की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की है परन्तु कतिपय लोगों ने अपने स्वार्थ, लाभ हेतु भ्रमित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें शास्त्रों द्वारा प्रस्तुत मूल व्याख्या का ही अवलोकन करना चाहिए। शास्त्र के अर्थों की प्रतिकूल व्याख्या माया की प्रबलता के कारण है और माया का ही कार्य रूप हैं।

**6. तंत्र–मंत्र–यंत्र से सिद्धि का भ्रम**– आध्यात्मिक जगत में तंत्र–मंत्र–यंत्र का भी महत्वपूर्ण स्थान स्थापित हो गया हैं। अधिकतर महानुभाव इस मार्ग का आश्रय लेकर सिद्धि प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। भारतवर्ष में आज अनेक पुस्तके, साहित्य, पत्रिकाऐं अनेक प्रकार तंत्र–मंत्र–यंत्र पर लिखे जा रहे हैं तथा उनके बहुत से पाठक हैं,जो उन भ्रमपूर्ण पुस्तकों को पढ़कर उनके आधार पर ही अनेक तांत्रिक अनुष्ठान भी कर रहे हैं। परमात्मा की अनुभूति तंत्र–मंत्र–यंत्र के आधार पर नहीं हो सकती है। माया ने ही इस प्रकार का मायाजाल बिछाकर साधकों को उसमें उलझाने का कार्य किया है। ऐसे में हम परमात्म प्राप्ति के मार्ग में बढ़ नहीं पाते हैं। तंत्र–मत्र की पुस्तकों के अध्ययन से ये ज्ञात होता है कि ये सभी अनुष्ठान विभिन्न प्रकार के फलों की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं। इनमें सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए उनकी अनुष्ठान की कार्यविधि तथा प्रक्रिया का भी वर्णन मिलता है। अनुष्ठान की कार्यविधि और प्रक्रिया को अपनाकर सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति कर सकते हैं। यही तंत्र–मंत्र–यंत्र के अनुष्ठान का अभिप्राय है। इसका परमात्मा की प्राप्ति से कोई संबंध और अभिप्राय नहीं है। माया का ये संशय साधकों में प्रायः आ

जाता हैं जो तत्त्व की प्राप्ति में बाधक है। आप ये समझ लें कि माया ने पृथक्–पृथक् प्रकार के तंत्रमंत्रों की रचना करके उसमें तत्त्व प्राप्ति वाले साधकों को भी उलझाने का कार्य किया है। यह भी एक प्रकार का आध्यात्मिक संशय है।

**7.ज्ञानहीन गुरू की शरण–** आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति में गुरू का बहुत महत्व है। बिना उचित गुरू के हम आध्यात्मिक साधना के शिखर को नहीं छू सकते हैं। गुरू ही हमें अध्यात्म की बातों से लेकर आत्मज्ञान होने तक की यात्रा को सहजतापूर्वक करवा देता है। गुरू कैसा हो इस संबंध में अनेक भ्रान्तियॉ है। वास्तविक गुरू में तीन गुण विशेष होते हैं–

**क– गुरू शास्त्रों का मर्मज्ञ विद्वान होता है।**

**ख– गुरू में शास्त्रों के वास्तविक तथ्य की व्याख्या करने की क्षमता होती है तथा**

**ग– गुरू आत्मज्ञानी होता है।**

उपरोक्त गुण जिस पुरूष में होते हैं वह गुरू बनने की योग्यता रखता है। आज के समय में उक्त गुणों से युक्त गुरूओं का अभाव सा हो गया है। ऐसा नही है कि शास्त्रों के मर्मज्ञ, आत्मज्ञानी गुरू नहीं है। हमें उन्हें सम्यक् प्रयास से खोजना पड़ता है। यदि हमें आत्म ज्ञान प्राप्त करना है तो उक्त गुणों से सम्पन्न गुरू को खोजना ही पड़ेगा। जब तक उचित गुरू न मिले तब तक परमात्मा को ही हमें गुरू मान लेना चाहिए। ज्ञानहीन गुरू हमें उचित, सत्य अध्यात्मिक मार्ग पर नहीं पहुॅचाता। वह स्वयं ही माया के प्रपंच में व्यस्त रहता है। ज्ञानहीन गुरू की शरण में रहने से उचित है कि हम परमात्मा को अपना सच्चा सुहृद मानकर उसकी सानिध्यता में रहकर अपनी अध्यात्मिक यात्रा पूरी करें। इस प्रकार हम ज्ञानहीन गुरू के आध्यात्मिक संशय से निवृत हो सकते हैं।

**8. ज्योतिष विद्या का संशय–** माया ने अपने कार्यरूप से, प्रभाव से ज्योतिष रूपी संशय उत्पन्न कर दिया है। पूर्व में कहा गया है कि ज्योतिष वह ज्ञान है जिसके माध्यम से ग्रहों, नक्षत्रों की स्थिति तथा उनकी गति का अध्ययन किया जाता है। ज्योतिष से हम तत्त्व अर्थात् आत्मज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते हैं। आज कल के समाज में ज्योतिष का बड़ा प्रभाव दिख रहा है। अधिकांश लोग भविष्य जानने के लिए इस विद्या का प्रयोग करते हैं। ज्योतिष के वर्तमान विद्वान लोगों को यह बताते हैं कि अमुक रत्न जैसे, हीरा, पन्ना, मोती, पुखराज आदि के पहनने से आपको

अनेक समस्याओं से मुक्ति स्वतः ही मिल जाएगी। यह भ्रान्ति समाज में आधारभूत स्थान ले रही है। ज्योतिषियों के बताने के आधार पर अनेक महानुभाव हीरा, पन्ना, मोती आदि को धारण कर रहे हैं। इस सम्बंध में एक तथ्य स्पष्ट कहना चाहूँगा कि परमात्मा की सम्यक् निश्चित विधि व्यवस्था है जो हमारे कर्मो के आधार पर चलती है। कोई भी शक्ति परमात्मा की इस व्यवस्था का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। यदि परमात्मा की विधि व्यवस्था का अतिक्रमण किसी कारण से होने लगेगा तो जगत की सम्पूर्ण व्यवस्था ही छिन्न–भिन्न हो जायेगी। हम अनेक प्रकार के अनैतिक और असामाजिक कर्म करके कुछ अनुष्ठान के द्वारा रत्न आदि पहनकर, धारण कर उसके परिणाम से बच सकेंगे, हमें इस माया रूपी संशय को अपने से निकाल देना चाहिए। कोई भी ज्योतिष अथवा तांत्रिक हमे किसी प्रकार के अनुष्ठान से परमात्मा की व्यवस्था के दण्ड से बचा लेगा, ये मात्र भ्रम ही है। ऐसा भ्रम फैलाने वालों की गति नारकीय ही होगी। वे संशय फैलाने के लिए परमात्मा द्वारा अवश्य दण्डित होगें।

**9. प्राथमिक यौगिक क्रियाओं और तीक्ष्ण व्रतों का संशय–** परमात्मा की अनुभूति तत्त्व दर्शन बड़ी सरलता से, सहजता से प्राप्त होने का विषय है, जिसके लिए उसके निरंतर चिंतन की आवश्यकता होती है। योग संबधी व्यायाम तथा व्रत परमात्मा प्राप्ति के मार्ग की प्राथमिक स्थिति है। हमें ये तथ्य स्वीकार करना चाहिए कि यौगिक व्यायाम तथा प्राथमिक यौगिक क्रियाओं प्राणायाम आदि से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यदि हम निराहार रहते हैं, तपती धूप में तपते हैं और चारो ओर आग जलाकर बैठते हैं तो हम निश्चित ही तामसी प्रवृत्ति के मनुष्य हैं। सर्दी में बिना वस्त्रों के रहने का आभ्यास करते हैं या रहते हैं तो ये परमात्मा की प्राप्ति का साधन नहीं है। एक प्राथमिक स्तर के साधक को अथवा तीक्ष्ण व्रतधारी मनुष्य को माया भ्रमित कर देती है तथा उस ओर नहीं बढ़ने देती जहां पर परमशांति हैं। आहार के उचित अनुपान से कर्मो में उचित चेष्टा से, संयमित आचरण से, उचित रूप से सोने और जागने से योग की सिद्धि में सहायता प्राप्त होती है। योग की सिद्धि को परमात्मा की सानिध्यता समझें। अनेक लोग आज इस संशय से ग्रस्त हैं कि प्राथमिक यौगिक क्रियाओं से या व्यायाम से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। ये प्राथमिक यौगिक क्रियाऐं परमात्मा की प्राप्ति रूपी साधन का आरम्भिक सोपान हैं। यहां पर एक तथ्य और स्पष्ट करना आवश्यक है कि कई सम्प्रदाय के मानने वाले लोग क्रोध, इन्द्रियसंयम और वाणी की सरलता का प्रयास करते हैं। ये संयम ठीक हैं परन्तु यह परमात्मा की ओर अग्रसर होने, उन्मुख होने

का आरम्भिक मार्ग ही है। ऐसे महानुभाव अपने मत की स्थापना करने वाले सन्तों या परमात्मा के अव्यक्त स्वरूप की उपासना करते हैं जो देहाभिमान के कारण इतनी शीघ्र फलदायी नहीं होती है। ऐसे महानुभाव लोगों पर माया का स्पष्ट प्रभाव रहता है और वे माया के प्रभाव से आवृत तथा आच्छादित रहते हैं। माया की प्रबलता से मुक्त नहीं हो पाते हैं।

आध्यात्मिक संशय और भी प्रकार के हो सकते हैं क्योंकि अध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ परमात्मा की ओर अग्रसर साधक को माया विशेष रूप से आकर्षित करती है। परमात्मा की सत्ता में हम जब प्रवेश करना चाहते है तो परमात्मा की ये पराशक्ति माया अपने प्रभाव से उस साधक को विचलित कर देती है। ये तथ्य आप स्पष्ट रूप से समझ लें कि साधना की पराकाष्ठा पर ही जाकर माया के प्रभाव, कार्य–व्यवहार और उसकी प्रबलता का आभास हो पाता है और अधिकांशतः ऐसे साधकों को भी माया अपने जाल में फंसाकर परमात्मा की उन्मुख्ता को कम कर देती है। जो अध्यात्मिक संशय माया के कारण स्मृति में आये वे वर्णित कर दिये गये। माया का कार्य विस्तार बहुत प्रबल है, बहुत विस्तृत है इस कारण दुष्कर्मी और सत्कर्मी सभी पर माया का पर्याप्त प्रभाव रहता है।

## 31. संशय रहित तथा मायातीत मनुष्य मुक्ति के योग्य होता है–

उत्कृष्ट साधक की दो स्थितियॉ हैं। उसका संशय रहित हो जाना सैद्धान्तिक सिद्धि है और मायातीत अर्थात् त्रिगुणीमयी माया को जानकर उसका अतिक्रमण कर जाना प्रयोगात्मक सिद्धि है। उत्कृष्ट साधक साधना से, शास्त्रों के निरंतर सेवन से, गुरू कृपा से परमात्मा के नाम के निरंतर जप से संशय रहित स्थिति प्राप्त कर लेता है। साधना के पथ पर संशय रहित होना भी साधना की एक उत्कृष्ट स्थिति है। यह शीघ्र नहीं आती है। आध्यात्मिक साधना में निरंतर संशय उठा करते हैं। जो संशय उठता है उसका समाधान भी करना पड़ता है। अध्यात्मिक संशय का कोई निराकरण नहीं होता तब तक साधक को बेचैनी का आभास होता है। आत्मज्ञानी गुरू के सहारे किसी अध्यात्मिक संशय को तत्काल समाप्त किया जा सकता है, पर यदि आत्म ज्ञानी गुरू नहीं है तो संशय की निवृत्ति के मात्र दो साधन है–एक शास्त्रों का अनवरत अध्ययन तथा दूसरा परमात्मा की शरण में अनन्य भाव से चला जाना। तत्त्वदर्शी गुरूओं का अभाव सा है पर ऐसे गुरू नहीं है ये तथ्य सही नहीं है। आत्मज्ञानी गुरू का मिलना दुर्लभ हैं। शास्त्रों का अनवरत अध्ययन आसानी से, सहजता से हो सकता है और तीसरे साधन में

परमात्मा के नित्य स्मरण का प्रयास भी हो सकता है। इस कारण संशय की निवृत्ति हेतु जो साधन सुलभ हों उसका हमें अनुकरण कर लेना चाहिए। हमारा अनुभव है कि परमात्मा के नित्य स्मरण और जप से संशय की शीघ्र निवृत्ति हो जाती हैं। परमात्मा हमें उस बुद्धि का योग प्राप्त कराता है जिससे संशय रूपी बादल छिन्न–भिन्न होते हैं। जो साधन अपनाया गया है वह प्रयोगात्मक होने के कारण वर्णित किया जा सकता है। इस प्रकार उत्कृष्ट साधक का यह प्रथम कर्म है कि वह किसी भी प्रकार से अपने समस्त संशयों को समाप्त करके सैद्धान्तिक सिद्धि प्राप्त कर ले।

**इस प्रकरण में प्रयोगात्मक सिद्धि का जो दूसरा प्रारूप है** वह माया के अतीत होने पर, उसके पार जाने से सम्भव है। प्रत्येक मनुष्य को, प्रत्येक साधक को यह तथ्य स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि जब तक माया के त्रिगुणों का अतिक्रमण नहीं हो जाता तब तक परमात्मा की अनुभूति नहीं हो सकती। त्रिगुणों के प्रभाव से प्रत्येक मनुष्य प्रभावित है और ग्रस्त है। जैसे किसी कमरे में धुऐं के भर जाने पर उस स्थान में जितने भी व्यक्ति होते हैं वे सब के सब धुऐं से प्रभावित हो जाते हैं। इसी प्रकार त्रिगुणों का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर रहता है और कोई इससे मुक्त नहीं हो सकता। मुक्त होना इतना सहज भी नहीं है। परमात्मा की पराशक्ति ने अपने त्रिगुणों को इस ब्रह्माण्ड में फैला दिया है जिससे प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित हो गया है। जिस प्रकार हमारे भोजन में अनेक प्रकार के रस होते हैं वैसे ही माया ने भी संसार में अनेक प्रकार के रसों को फैला दिया है। मीठे, खट्टे, नमकीन रसों से युक्त भोजन जो पृथक् प्रकार के स्वाद देते हैं उन्ही में मनुष्य फंसा हुआ है। एक के पश्चात् दूसरे स्वाद को ग्रहण करके उसमें तृप्त होना चाहता है। पृथक्–पृथक् प्रकार के रसों में उसे कुछ समय के लिए तृप्ति का आभास तो होता है परन्तु वह तृप्ति कुछ समय पश्चात् स्वतः ही विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार मनुष्य अनेक प्रकार के रसों में फंसा हुआ अपना जीवन समाप्त कर देता है। ये सब माया के प्रभाव से ही होता है। इसको माया की प्रबलता समझना चाहिए।

जल के पात्र में, दर्पण में सूर्य दिखता है, प्रतीत होता है परन्तु वास्तविक रूप में जल में सूर्य नहीं होता है। ये तथ्य प्रत्येक मनुष्य जानता है कि जल में, दर्पण में सूर्य नहीं है मात्र उसका प्रतिबिम्ब ही है। सूर्य मात्र हमें भासता है, प्रतीत होता है परन्तु वास्तविक रूप से नहीं है। माया ने यह संसार हमें प्रतिबिंम्ब की तरह दिखा दिया है परन्तु इसकी यथार्थ सत्ता नहीं है मात्र आभास है जो हमें भासती

है। यदि जल और दर्पण में सूर्य होता तो हम उसकी निकटता का आभास करते पर वह प्रतिबिम्ब के रूप में दिखता तो है परन्तु वास्तव में नहीं है। वैसे ही माया अव्यक्त, अप्रत्यक्ष, अप्रकट रहकर संसार को दिखा रही हैं। ये उसकी दिव्यता और विलक्षणता तथा अलौकिकता है। जगत प्रतिबिम्ब है और माया दर्पण और जल के रूप में है जिसे हम देख नही पाते हैं। जल और दर्पण दिखने के कारण उनकी सत्ता का हमें आभास होता है परन्तु माया का वैसा आभास हमें नहीं होता इस कारण माया विशिष्ट है। माया अप्रत्यक्ष और अप्रकट रहकर मनुष्य को परमात्मा से विलग रखती है और अपने जाल में फंसायें रखती है।

माया से अतीत होना माया के गुणों का अतिक्रमण करना है। जब तक साधक माया के गुणों को उसकी क्रियाविधि को नहीं पहचानता तथा उससे पार जाने का प्रयास नहीं करता तब तक वो मायातीत और गुणातीत नहीं हो सकता। माया के सात्विक गुण और उसका कार्य माया के राजसी गुण और उसका कार्य तथा माया के तामसी गुण और कार्य हमें समझना चाहिए। हम पर अर्थात् मनुष्य पर ये गुण कैसे प्रभाव डालते हैं? यह हमें जानना चाहिए। जब तक हम ये नही जान पाते कि गुणों का प्रभाव, गुण और कार्य हमें कैसे प्रभावित करते हैं तब तक हम उसका अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकार बरसात के दिनों में टूटी छत से पानी टपकता है तो हम छत के टूटे हुए स्थान को खोजकर उसकी मरम्मत कर देते हैं। इस क्रिया में टूटे हुए स्थान को हमें खोजना पड़ता है कि पानी कहॉ से टपक रहा है? ये जानना पड़ता है, तभी हम रिसाव को रोक सकते हैं। उसी प्रकार हमें त्रिगुणों के प्रभाव को जानकर हमें उसके प्रभाव को हटाना पड़ता है। तामसी और राजसी माया के जो गुण हैं उनका पूर्ण परित्याग हमें तत्काल कर देना चाहिए।

माया के सात्विक गुण ग्रहण करने से साधना आरम्भ होती है। उससे पहले साधना आरम्भ ही नहीं होती है। माया का सात्विक गुण भी बहुत ही मोहक और ललचाने वाला है। वह साधक को अपने स्वरूप में फंसाता है और अनेक प्रकार के आध्यात्मिक संशय उत्पन्न कर देता है। भांति–भांति की सिद्धियों का लालच देकर सात्विक माया साधक को अपने जाल में फंसाये रखती हैं। जो साधक माया के सात्विक गुण की क्रिया विधि को, उसके गुणों को जानकर उसमें नहीं फंसता है वह माया के गुणों का अतिक्रमण करके माया से अतीत हो जाता है। त्रिगुणमयी माया का अतिक्रमण कर जाता है। इस विषय पर हम पुनः चर्चा करेंगे। इस स्थल पर हमें ये समझना चाहिए कि मायातीत मनुष्य ही मुक्ति के योग्य होता है।

## 32. मुक्ति (मोक्ष) क्या है?–

साधरणतया, सहजता से हम ये जानते हैं कि हम आप सभी जन्म ग्रहण करते हैं, जीवन बिताते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा ही साधारणतया जीवन कही जाती है। हमारे जन्म कितने हुये? और हम कितनी बार मृत्यु को प्राप्त हुये ? ये हम नहीं जानते हैं। इस संबंध में हमारी स्मृति विस्मृत है। विस्मृत होने का अभिप्राय है कि हमारे मस्तिष्क को यह ज्ञात नहीं है कि हमने सृष्टि के आदि से कितनी बार जन्म लिया और कितनी बार मृत्यु को प्राप्त हुए है? ये विस्मृति क्यों हो जाती है? ये भी हम नही जानते हैं। पुनः जन्म लेना और पुनः मृत्यु को प्राप्त होना तथा जीवन भर अनेक समस्याओं से जूझना, क्या यही जीवन की वास्तविकता है? मां के गर्भ में अतीव कष्ट की अनुभूति, जीवन पर्यन्त समस्याओं के कठिन चक्र में घूमना तथा मृत्यु के समय होने वाले कष्ट को हम जीवन मानते हैं। वर्तमान समय में शायद ही कोई व्यक्ति आपको ऐसा मिले जो समस्याओं से न जूझ रहा हो। प्रत्येक व्यक्ति यही कहता है कि मैं बड़ा परेशान हूॅ, समस्याओं से घिर गया हूॅ, शांति नहीं है आदि–आदि। पारिवारिक तथा सामाजिक तनाव, आर्थिक समस्याओं की अनुभूति, रोजी रोटी की समस्यायें, बीमारियों से ग्रस्तता आदि–आदि प्रकरण जीवन पर्यन्त मनुष्य को परेशान करते हैं। यदि जन्म न हो तो मृत्यु भी हमें प्राप्त न हो। जन्म पाकर मृत्यु की ओर यात्रा ही जीवन कहलाता है। इस कारण जन्म से जीवन की यात्रा आरम्भ होती है और मृत्यु पर जाकर समाप्त हो जाती है। जहां जन्म है वही मृत्यु भी है। इस कारण जन्म मृत्यु का समाप्त हो जाना ही मुक्ति है, जो माया से अतीत हो जाने पर हो सकती है।

हम जानते हैं कि धीरे–धीरे हम अपनी जीवन यात्रा पूरी करते हैं। यह एक प्रक्रिया है जो चलती रहती है। अब आप अपनी जीवन यात्रा की घटनाओं पर दृष्टिपात करें तो पाऐंगे कि अधिकतर जीवन संघर्ष पूर्ण ही रहा है। अनेक समस्याओं और हलचल से युक्त रहा है। जो व्यक्ति जिस स्तर का है उस स्तर की उसकी समस्यायें रहती हैं। अधिकतर व्यक्ति समस्या ग्रस्त रहकर जीवन यात्रा पूरी करते हैं। यदि जन्म न होगा तो जीवन नही चलेगा और मृत्यु भी नहीं होगी। इस कारण मुक्ति की इस परिभाषा का अवलम्बन करें कि हमें जन्म मृत्यु से पृथक् होना है, तो हमें इसके लिए प्रयास करने होंगे। वर्तमान जन्म के पहले भी कोई जीवन था और मृत्यु के पश्चात् भी कई जीवन होगें, ये तथ्य हम स्पष्ट रूप से समझ लें। वर्तमान जीवन सौ वर्षों का हो सकता है परन्तु जन्म के पहले जो जीवन था वह

हजारों–लाखों वर्ष का रहा और मृत्यु के पश्चात् भी वह हजारों–लाखों वर्षों का रहेगा। पूर्व के जीवन की स्मृति हमें नहीं है पर शास्त्रों में इसका उल्लेख है जिसे हम मानने को बाध्य है। हमारे समक्ष और आज के विज्ञान के समक्ष कोई विकल्प नहीं है। हमें मानना पड़ेगा, जो कुछ शास्त्रों में मुक्ति के विषय में वर्णित है।

जन्म और मृत्यु से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है। मुक्त मनुष्य परमात्मा के परम धाम में निवास करता है जहां दुखों का सर्वथा अभाव है और समस्याओं का नितांत वियोग है। दुख, कष्ट, समस्याऐं, शोक आदि से परमात्मा का परमधाम मुक्त है। परमात्मा के इस निवास को सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि प्रकाशित नही करते हैं। वहां परमात्मा का अलौकिक दिव्य प्रकाश है। हम इस जगत में सौ वर्षों की आयु प्राप्त कर सकते हैं और वह भी अनेक संकटों, समस्याओं, दु,खों से भरी हुई है। कभी परिवार, समाज का दुख है तो कभी बीमारियों का कष्ट है। कभी कोई दैवीय आपदा हमें दुखी कर जाती है। इन समस्त प्रकार के दुखों की आत्यन्तिक मुक्ति का नाम ही मोक्ष है। ये मानव जीवन का परम उद्देश्य और परमपुरूषार्थ माना जाता है। इसकी उपलब्धि प्रप्ति इतनी सहज नहीं है जितनी कहने से प्रतीत होती है। इसके लिए हमें मायातीत, गुणातीत होना पड़ता है।

बहुत से लोग शास्त्रों में वर्णित उक्त तथ्य की उपेक्षा करते हैं, उपहास करते हैं। उन्हें ये विचार करना चाहिए कि प्रत्येक तथ्य पर तर्क संगत विचारों की मान्यता है। प्रत्येक विषय पर तार्किक एवं प्रयोगात्मक विचार अंततः माने जाते हैं और स्वीकार किये जाते हैं। हम जो जीवन जी रहे हैं उसमें क्या विषमतायें हैं? क्या समस्यायें हैं? क्या परेशानियां हैं? इस पर जब हम विचार करते हैं तब विषमताऐं, समस्यायें, परेशानियां ही हमें प्रतीत होती हैं। इन्ही विषमताओं, परेशानियों, समस्याओं के निवारण के लिए हम संघर्ष करते हैं। क्यों करते हैं? इसका उत्तर है कि विषमताओं, परेशानियों, कठिनाइयों का अंत हो। साधारणतया हम जब कड़ी धूप में होते हैं तो धूप के प्रभाव से बचने के लिए ठण्डे स्थान में जाने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार हम जब भंयंकर सर्दी में होते हैं तो गर्म वस्तुओं और साधनों की खोज करते हैं। ये सुख–दुख का क्रम चलता रहता है। यदि हम ऐसे स्थान की खोज कर लें जहॉ सर्दी–गर्मी, सुख–दुख न हो तो ये कार्य उत्तम कार्य ही कहा जायेगा क्योंकि वहॉ पर हमारी सर्दी–गर्मी, सुख–दुख रूपी समस्याओं का पूरी तरह से निवारण हो जायेगा ।

यही वह स्थान है जिसे परमधाम कहा जाता है। ये परम धाम मुक्ति के पश्चात् सहजता से प्राप्त हो जाता है। मुक्ति की प्राप्ति माया के गुणों के अतिक्रमण

से होती है और तभी हम माया के अतीत हो जाते हैं। ये सब क्रमिक तथ्य हैं। गुणों का अतिक्रमण मायातीत होने की स्थिति, मायातीत होने से मुक्ति की प्राप्ति और मुक्ति से परमधाम में नित्य निवास। परमधाम में नित्य निवास से सर्दी–गर्मी,सुख–दुख आदि कठिनाईयों, समस्याओं से पूर्ण निवृत्ति। अब आपको ये निश्चित करना है कि आप इस जगत में जीवन मृत्यु रूपी क्रम में रहना चाहेंगे अथवा मुक्ति चाहेंगे। जो लोग मुक्ति चाहते हैं मायातीत होना चाहते हैं उनके लिए मायातीत के गुणों के आधार पर मायातीत होने की प्रक्रिया का हम उल्लेख कर रहे हैं। जो नहीं होना चाहते हैं उनके लिए यह विषय निरर्थक है।

## 33. मायातीत मनुष्य के गुण–

मायातीत मनुष्य के गुणों के उल्लेख के दो उद्देश्य हैं। एक तो मायातीत मनुष्य के गुणों के आधार पर हम अपने का परख सकते हैं। दूसरे मायातीत कैसे हुआ जा सकता है? इस प्रक्रिया पर हम विचार कर सकते हैं। जैसे हमें जब ज्वर आता है तो थर्मामीटर से उस ज्वर का तापमान नापते हैं। इस प्रक्रिया से हमें ये ज्ञात हो जाता है कि हमारे शरीर में सामान्य ताप है अथवा हम ज्वर से पीड़ित हैं। इसी प्रकार मायातीत मनुष्य के गुणों को जानकर हम अपनी परख कर सकते हैं कि हम माया से अतीत स्थिति को प्राप्त हुये हैं अथवा नहीं हुए हैं। मायातीत गुण जब हमारे में आ जाते हैं तो हम माया से अतीत हो जाते हैं। माया से अतीत मनुष्य को जीवन रहते जीवन मुक्त भी कहा जाता है क्योंकि वह शरीर के रहते मुक्त हो जाता है। शरीर त्याग के उपरान्त जीवन मृत्यु के चक्र में नहीं फसता है। मायातीत स्थिति, अनुभव, आभास की स्थिति है। भावना प्रधान है, क्रिया प्रधान नहीं है। क्रिया की प्रधानता उसमें नहीं होती है। भावना की प्रधानता रहती है। जैसे सुख–दुख के होते हुये भी उसको अपनी भावना में न लायें तो सुख–दुःख के प्रभाव से हम मुक्त रहेंगे। इसमें कोई क्रिया नही है मात्र आभास है। सुख में सुखी न होना, दुःख में दुःखी न होना ये भाव है क्रिया नहीं है। माया से अतीत मनुष्य की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार भावना प्रधान है। मायातीत मनुष्य के विशिष्ट गुणों का वर्णन प्रस्तुत है। कृपया उनका अवलोकन कीजिए–

### 1. धैर्यवान–

हवा के चलने से पेड़–पौधे हिलते हैं क्योंकि हवा उन्हें अपनी गति से प्रभावित करती है। वैसे ही जगत की हलचल अर्थात् घटनाओं का प्रभाव प्रत्येक

व्यक्ति पर पड़ता है। वह घटनाओं से अवश्य प्रभावित होता है। ये एक सामान्य बात है। जैसे हम अपने पुत्र, भाई, पिता–माता की बीमारी का समाचार पाकर दुखी होते हैं और मृत्यु का समाचार पाकर हमारा हृदय कांप जाता है। जैसे तूफान में एक शांत वृक्ष इतनी तेजी से हिलता है और टूटते–टूटते रह जाता है अथवा टूट जाता है। वैसे ही ये दुःखद समाचार पाकर हमारा हृदय कांप जाता है और हम अंदर तक उद्वेलित हो जाते हैं। जैसे आपने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा की अमुक महिला के पति की मृत्यु का समाचार पाकर उसकी पत्नी बेहोश हो गई अर्धमूर्क्षित हो गई। ये समाचार ही था जिसने आंधी के तीव्र वेग की तरह महिला को प्रभावित किया। समाचार में इतनी तीव्रता होती है। इतना संवेग होता है, तीव्र वेग होता है कि वह मनुष्य को अंदर तक झकझोर देता है। पुत्र की मृत्यु के समाचार से पिता की मृत्यु होते हुये आपने सुना होगा। ये समाचार का संवेग है तीव्र वेग है जो मनुष्य को मूर्क्षित कर देता है। मार डालता है, परन्तु मायातीत मनुष्य अप्रिय समाचारों, दुःखद–सुखद घटनाओं से प्रभावित नहीं होता। वह तीव्र आंधी में मजबूत आधार वाले पेड़ की तरह शांत भाव से खड़ा रहता है। वह सुख–दुःख, जीवन मरण की घटनाओं को गुणों का कार्यरूप समझकर उसका अनुभव करता है। परम धैर्यवान होकर परम शांति से शांत भाव से उसका अनुभव करता रहता है, क्योंकि परमात्मा की सानिध्यता, की उसकी निकटता की अनुभूति उसे रहती है। मायातीत मनुष्य का धैर्यवान होना परम एवं विशिष्ट गुण है।

## 2. उदासीनवत्–

सूर्य समय से निकलता है और समय से अस्त हो जाता है। चन्द्रमा का दर्शन तिथि के अनुसार हमें होता रहता है। सर्दी–गर्मी, बरसात, मौसम भी समय से प्रकृति की व्यवस्था के अनुकूल आया जाया करते हैं। प्रकृति की इस वृहद व्यवस्था को हम देखते रहते हैं और उसके बारे में कोई विचार नहीं करते हैं। विचार क्यों नहीं करते हैं? क्योंकि ये सारी व्यवस्था प्रकृति प्रदत्त है। जो स्वतः स्वाभाविक रूप से चलती रहती है। इसे हम रोक नहीं सकते हैं। इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप हमारी शक्ति से बाहर का तथ्य है। सूर्य प्रातः उदय होता है। उसके उदय होने को हम देखते रहते हैं। हमारा देखने का भाव उदासीनवत् रहता है। उदासीनवत् का अभिप्राय है कि जो घटित हो रहा है उन क्रियाओं को निरपेक्ष भाव से देखना। प्रकृति में जो घटित हो रहा है उसमें हम कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, इस कारण सूर्य आदि की क्रियाओं को निरपेक्ष भाव से देखते रहते हैं, परन्तु संसार में

जो हमारे सम्पर्क में घटित हो रहा है उसमें हम निरपेक्ष भाव नहीं रख पाते हैं। उन घटनाओं में सापेक्ष भाव आ जाता है।

हमारा पुत्र यदि हमारी सेवा नहीं कर रहा है तो हम निरपेक्ष भाव नहीं रख पाते हैं क्योकि हमें सेवारूपी सुख प्राप्त नहीं हो रहा है। सेवा करना उसका कर्तव्य है और वह नहीं कर रहा है तो त्रुटि उसकी है। अपने कर्तव्य को ठीक रूप से पालन न करने के कारण वह दोषी हो रहा है। हम उसकी सेवाभाव रूपी कर्तव्य को यदि निरपेक्ष भाव से देखेंगे तो हम उदासीनवत् हो जायेंगे। ऐसे ही समस्त विश्व में जो हो रहा है उसे भी निरपेक्ष भाव से देखें और हमारे सम्पर्कित लोग जो कर रहे हैं, उसे भी हम निरपेक्ष भाव से देखें। यदि हमारा कोई सम्पर्कित व्यक्ति कर्तव्य कर्म का पालन नहीं करता है तो उसे हमें समझाने का प्रयास तो करना चाहिए परन्तु उसे निरपेक्ष भाव से ही देखना चाहिए। जगत में जो कुछ हो रहा है उससे प्रभावित नहीं होना तथा अपने कर्तव्य कर्मों का उचित आचरण करना ही उदासीनवत् कहा जाता है। माया से अतीत मनुष्य जगत के प्रपंचों, चेष्टाओं, गति और व्यवहार की प्रक्रियाओं के प्रति उदासीनवत् हो जाता है वह संसार के कार्यो में कोई रूचि नहीं रखता है। यह उसका उदासीनवत् आचरण है, यह स्थिति मायातीत होने के बाद आती है।

## 3. सुख–कामना–मोह से अतीत हो जाता है–

प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है, कामना करता है और मोहग्रस्त रहता है। सुख सात्विक गुण का परिणाम है। कामना रजो गुण के कारण होती है और मोह तमोगुण के कारण होता है। सुख की चाहना प्रत्येक व्यक्ति करता है, चाहे वो किसी स्तर का व्यक्ति हो। कामना और असीमित इच्छाऐं भी प्रत्येक मनुष्य करता है। परिवार तथा सम्पर्कित व्यक्तियों और वस्तुओं से मोह भी प्रत्येक व्यक्ति करता है। ये तीनों कार्य सत, रज, तम के कारण होते हैं। हम ये विचार करें की हमें सुख नहीं चाहिए। यह विचार क्या क्रियान्वित हो सकता है? यह विचार हमें मयातीत होने के लिए क्रियान्वित करना पड़ेगा। सुख की चाहना छोड़ दें। सुख की चाहना से हमें सुख नहीं प्राप्त होता है। सुख हमारे शुभ कर्मों के कारण ही हमें अवश्य प्राप्त होता है इसे कोई रोक नहीं सकता है। हमारा ये विचार रहता है कि सुख की चाहना करने से सुख मिलता है यह विचार त्रुटिपूर्ण है। कौन चाहता है कि हमें दुख प्राप्त हो? कोई नहीं चाहता पर दुख मिलता है। इससे ये बात सिद्ध होती है कि हमारी चाहने से कुछ नहीं होता है। दुख और सुख हमारे कर्मो के परिणाम से हमें सहजता से प्राप्त हो जाते हैं। इस कारण सुख की चाहना का परित्याग कर दें।

मनुष्य कामना क्यों करता है? क्योंकि उसे ये जगत मोहक प्रतीत होता है। उसमें सुख का आभास होने लगता है। कामनाओं का अनंत सेवन इतना विशाल है कि मनुष्य उसमें डूब जाता है ये रजो गुण का कार्य रूप है। हम जितनी कामनायें करते हैं, उनमें कितनी पूरी होती है? यह तो हम जानते ही हैं। एक कामना की पूर्ति हेतु हमें कितना परिश्रम करना पड़ता है? यह भी हम जानते हैं। इस कारण हमें कामना नहीं करनी चाहिए। मात्र कर्तव्य करना चाहिए। कर्तव्य कर्म करने से अनिवार्य और आवश्यक कमानाओं की पूर्ति स्वयं ही हो जाती हैं। तमोगुण का कार्य रूप मोह प्रत्येक मनुष्य के मन में रहता है। हमारा जिनसे सम्पर्क रहता है, चाहें वह व्यक्ति हो अथवा वस्तुएं हों उनसे स्वाभाविक रूप से मोह हो जाता है। यद्यपि वह व्यक्ति वे वस्तुऐं समाप्त होने वाले हैं। फिर भी हम उनसे मोह करते हैं। यह माया का कितना विलक्षण प्रभाव है? मायातीत मनुष्य सुख की चाहना का सर्वथा परित्याग कर देता है। कामनाऐं कदापि नहीं करता है और संसार की सम्पर्कित वस्तुओं और व्यक्तियों के मोह को भी त्याग देता है। प्रकट में तो करता हुआ प्रतीत होता है पर अंतरात्मा से नहीं करता है। सुख, कामना तथा मोह का परित्याग ही मायातीत मनुष्य का प्रमुख लक्षण है।

**4. परमात्मा का नित्य आभास करता है–** हम सब जगत का नित्य आभास करते हैं। तीनों अवस्थाओं में जाग्रत, स्वप्नावस्था और सुषुप्ति अवस्था में साधारणतया जगत की अनुभूति हमें रहती है। सुषुप्ति अवस्था के कारण शरीर में तो नहीं रहती है पर जैसे सुषुप्ति समाप्त होती है हमें उस अवस्था की अनुभूति होती है कि हम सो गये थे। हम सो गये थे, सोये हुए व्यक्ति की स्मृति में ये तुरन्त आ जाता है। इस कारण इस अवस्था को जाग्रत के सम्पर्क में रहना मान रहे हैं। सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीर तो जाग्रत में ही रहता है। जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में शरीर की नित्य सम्पर्कता का आभास हम करते हैं। जगत में रहकर जगत की वस्तुओं का आभास हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से करते हैं। ये सब स्थिति सब के साथ रहती है। जगत की जैसी प्रतीति तथा आभास हमें रहता है वैसी ही प्रतीति एवं आभास परमात्मा का हमें नहीं रह पाता है। यह कमी है। समग्र जगत माया का कार्य रूप है। यह जगत जब हमें माया के कार्यरूप जैसा प्रतीत होता है तो हम परमात्मा का आभास कर लेते हैं। माया की जो संरचना है, वह है नहीं, हमें नहीं होकर भी उसका आभास होता है । इसे ही मायिक प्रपंच कहते हैं। मायातीत मनुष्य परमात्मा का आभास करता है। वह जगत की समग्र वस्तुओं में और व्यक्तियों में परमात्मा का ही दर्शन करता है। जो देखता है, जो आभास करता है, वह सब का

सब परमात्म स्वरूप है। हम किसी वस्तु का आभास, अनुभव मन तथा बुद्धि से ही करते हैं। हमारी इन्द्रियां तो प्राथमिक वस्तुऐं हैं। मन तथा बुद्धि के सहयोग के बिना वे कुछ कार्य करने में सक्षम नहीं हैं। वैसे तो परमात्मा अचिंत्यरूप है अर्थात् मन और बुद्धि के परे की सत्ता है। परन्तु जड़ बुद्धि भी उसका आभास कर लेती है जब बुद्धि समग्र सांसारिक प्रपंचों से दूर हो जाती है और मन निर्मल पूर्ण शांत हो जाता है। मायातीत मनुष्य त्रिगुणात्मक सत्ता से अपने को पृथक् कर लेता है। इस कारण वह परमात्मा का नित्य आभास करता है। इस स्थिति को अपने स्वरूप में स्थित होना भी कहते हैं। शास्त्रों में इसे स्वस्थ कहा जाता है। स्वस्थ का स्पष्ट अभिप्राय अपने वास्तिवक रूप में स्थित हो जाना है और उसी में रहना। मायातीत मनुष्य अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है और नित्य उसी में रहता है। ये मायातीत मनुष्य का विशिष्ट गुण है।

**5. मान–अपमान में सम हो जाता है–**

सामान्य रूप से प्रत्येक मनुष्य अपमान से उद्धेलित हो जाता है। अपमानित हो जाने पर मन में कितनी हलचल होती है? इसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति सहजता से करता है। अपमानित किये जाने पर हम उद्धेलित क्यों हो जाते हैं? परेशान क्यों हो जाते हैं? यह तथ्य विचारणीय है। जब हमारा मान सम्मान होता है तो हम प्रसन्नता का आभास करके गद–गद हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? यह तथ्य भी विचारणीय है। मान तथा अपमान का प्रभाव मनुष्य पर तत्काल तथा स्थिर भाव से होता है। मान–अपमान का सीधा प्रभाव हमारे मन और बुद्धि पर पड़ता है और मन तथा बुद्धि इससे गम्भीर रूप से प्रभावित होते हैं। अपमानित मनुष्य तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। यदि वह सक्षम है, तो अपने प्रतिपक्षी को भी अपमानित करने का प्रयास करता है। सक्षम नहीं है तो प्रतिपक्ष को भांति–भांति के उपायों से अपमानित करने के विचार में संलग्न हो जाता है। उसके मन में ये भाव चलता रहता है कि कैसे हम उस व्यक्ति से बदला लें जिसने हमारा अपमान किया है। साधारण रूप से मान तथा अपमान बहुत ही संवेदनशील तथ्य है, जिसका दूरगामी परिणाम होता है। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में द्रोपदी ने दुर्योधन पर व्यंग्य कसकर उसे अपमानित किया था, जिसका परिणाम महाभारत रूपी विशाल नरसंहार के रूप में हुआ तथा द्रोपदी को भरी सभा में अपमानित करने का प्रयास हुआ।

मान और अपमान का एक निश्चित सिद्धान्त है, जिसे हमें समझना चाहिए। यदि हमने किसी को सम्मानित किया है,तो हमें भी सम्मान अवश्य प्राप्त होगा।

इसके प्रतिकूल यदि हमने किसी को अपमानित किया है तो हम भी अवश्य अपमानित किये जायेंगें। यह निश्चित सिद्धान्त है और परमात्मा की निश्चित व्यवस्था है। सामान्य लोग इसे नहीं जानते हैं और मानते भी नहीं हैं। तत्त्वदर्शी पुरूष माया से अतीत हुआ इसी सिद्धान्त का समझता है और उसे मानता है। उसे यदि कोई अपमानित करता है तो वो इसे अपने कार्य का परिणाम समझकर शांत रहता है। ऐसे सिद्ध पुरूष के मन में अपने अपमान के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। उसे यदि सम्मानित किया जाता हैं तो भी वह इसे अपने प्रारब्ध का परिणाम समझकर उसे सामान्य भाव से लेता है। इस कारण मायातीत मनुष्य मान तथा अपमान में सम हो जाता है। हम यदि माया के गुणों का अतिक्रमण करना चाहें तो हमें भी मान और अपमान में एक समान होना पड़ेगा। ऐसी स्थिति आने पर हम मायातीत हो जायेंगे।

## 6. कर्म फल के आश्रय का परित्याग कर देता है–

मनुष्य को परमात्मा ने कर्म का अधिकार प्रदान किया है, पर उसमें शर्तें लागू हैं। परमात्मा की शर्त है कि हमने जो आपको कर्म करने की स्वतंत्रता दी है उसमें आपको मात्र कर्तव्य कर्मों का आचरण करना है तथा अकर्तव्य कर्मों का परित्याग करना है। मनुष्य कर्म और विकर्म के अंतर को न समझकर मनमाने ढंग से जो आचरण करता है उसका प्रतिकूल प्रभाव और परिणाम होता है। हम जो भी कर्म करते हैं उसका परिणाम अवश्य होता है। सत्कर्म का अच्छा परिणाम तथा दुष्कर्म का प्रतिकूल परिणाम हमें अवश्य ही प्राप्त होता है। कर्मफल की व्यवस्था बड़ी ही विचित्र है। ये सम्पूर्ण प्रक्रिया परमात्मा की विधिव्यवस्था के अधीन चलती है। इस व्यवस्था में रंच मात्र भी दोष नहीं है।

प्रत्येक मनुष्य कर्म के परिणाम अर्थात् कर्मफल को दृष्टि में रखकर कर्म करता है। बिना कर्म फल पर दृष्टि रखे साधारणतया कर्म नहीं होता है। हम किसी कर्म करने के पहले ये विचार कर लेते हैं कि हम अमुक कर्म करेंगे तो उसका अमुक–अमुक परिणाम होगा। ये एक सामान्य तथ्य है। परन्तु हम जो कर्म करते हैं उसका परिणाम अवश्य होता है यह निश्चित सिद्धान्त है। इस कारण इस सिद्धान्त के आधार पर हम कर्म फल की आकांक्षा करें अथवा न करें तो भी हमे कर्म फल अवश्य प्राप्त होगा। अच्छे कर्मों का अच्छा फल और बुरे कर्मों का प्रतिकूल परिणाम निश्चित प्राप्त होता है। इस कारण जो कर्म सिद्धान्त को समझ जाते हैं वे फल की इच्छा का त्याग करके कर्म करते हैं। परमात्मा ने फल की इच्छा के त्याग को क्यो

प्रतिबंधित किया है? यह विचारणीय है। परमात्मा हमें कर्मों का फल देता है। अवश्य देता है। वह परमात्मा की व्यवस्था के आधार पर हमें निश्चित ही प्राप्त हो जाता है। अर्थात् बिना मांगे बिना चाहे हम कर्मों का फल प्राप्त कर लेते हैं। इसमें कर्म फल की चाहना व्यर्थ है।

माया से अतीत मनुष्य इस कर्म फल के सिद्धान्त को समझता है इस कारण समाज में, व्यवहार में वह कर्म तो करता है परन्तु कर्म फल का विचार मन में नहीं लाता है। वह जानता है कि हम जो कर्म करेंगे उसका परिणाम अवश्य होगा। इस कारण मायातीत मनुष्य प्रत्येक कर्म में अपने को निष्पक्ष और निष्काम भाव से लगा देता है और परिणाम की अपेक्षा और आशा नहीं करता है। यदि हमें मायातीत होना है तो हमें कर्म फल के आश्रय का त्याग करना ही पड़ेगा। हम कर्म फल के आश्रय का त्याग करके हम माया से अतीत हो सकते हैं।

## 7. माया से अतीत मनुष्य के अन्य विशिष्ट गुण–

**क–** माया से अतीत मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों में अर्थात् दुखों की प्राप्ति में, अनुकूल परिस्थितियों अर्थात् सुखों की प्राप्ति में एक समान भाव से अविचल भाव से स्थित रहता है। उसको अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियॉ विचलित नहीं कर सकती हैं। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियॉ दिन और रात की भांति आया जाया करती हैं। इस विश्वास में वह दृढ़ता प्राप्त कर लेता है। मायातीत मनुष्य का सुखों और दुखों में एक समान रहना ही विशेष गुण है।

**ख–** सामान्य मनुष्य मूल्यवान वस्तुओं को विशेष महत्व देता है। मूल्यहीन वस्तुओं की उपेक्षा करता है। ये समान्य नियम है। माया से अतीत मनुष्य हीरा, पन्ना, मोती आदि मूल्यवान वस्तुओं को पत्थर के साधारण टुकड़े के समान मूल्यवाला मानता है। उसकी दृष्टि में जो मूल्य हीरे के टुकड़े का होता है वही मूल्य एक समान्य पत्थर के टुकड़े का होता है। मूल्यवान वस्तुओं तथा अमूल्यवान वस्तुओं को एक दृष्टि से देखना मायातीत मनुष्य का विशेष गुण है।

**ग–** हम सब अपने शत्रु पक्ष से द्वेष करते हैं, घृणा करते हैं। उनके अहित का विचार करते हैं और उन्हें हानि पहुॅचाना चाहते हैं। इसके प्रतिकूल मित्रों से स्नेह करते हैं उनकी सहायता करने का प्रयास करते हैं। उनके हित कल्याण का विचार करके उन्हें लाभ पहुॅचाना चाहते हैं। ये एक सामान्य विचार रहता है। माया से अतीत मनुष्य अपने शत्रु और मित्र में समभाव रखता है। इसका एक कारण है कि

परमात्मा किसी का द्वेषी नहीं है और न ही किसी का प्रेमी है। उसका न तो कोई शत्रु है और न ही कोई मित्र है। परमात्मा का यही समभाव वाला गुण मायातीत मनुष्य में स्वतः ही आ जाता है और वह अपने शत्रु तथा मित्र के प्रति एक समान व्यवहार करता है। शत्रु और मित्र उसकी दृष्टि में एक समान होता है।

**घ–** इस जगत में जो कुछ भी हो रहा है, चल रहा है, वह सब कौन कर रहा है? किसके द्वारा कराया जा रहा है? इन प्रश्नों का उत्तर सामान्य व्यक्ति नहीं जानता है। वह समस्त कर्मों में अपने को कर्ता मान लेता है। ये सिद्धान्त भ्रमपूर्ण है। जगत में जो भी गति, चेष्टा हो रही है वह त्रिगुणों के परिणाम स्वरूप हो रही है। हम कर्ता नहीं है। गुण ही कर्ता हैं। मायातीत मनुष्य ये तथ्य जान जाता है। वह जगत की चेष्टा, गति, क्रिया आदि को एक निरपेक्ष भाव से देखा करता है। जैसे एक मशीन चल रही है। उससे उत्पादन हो रहा है। उसी प्रकार त्रिगुण अपना कार्य कर रहे हैं। मनुष्य का उसमें सहयोग नहीं है। मायातीत मनुष्य गुणों को ही जगत की समस्त चेष्टाओं का कारण मानकर शांतभाव से जगत के क्रिया–कलापों को देखा करता है और कर्तापन के अभिमान से मुक्त हो जाता है।

**ड़–** हम जो कर्म करना चाहते हैं वह किसी कारण से करते हैं। बिना कारण के कर्म नही होते हैं। इसका अर्थ है कि कारण न हो तो हम कर्म नहीं करेंगे। हम सभी नये–नये कर्मों का आरम्भ कारण से प्रेरित होकर करते रहते हैं। मायातीत मनुष्य कर्मों के कारण को शून्य कर देता है। उसका संसार की किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थिति की प्राप्ति का लक्ष्य समाप्त हो जाता है। इस कारण उसमें कर्म के कारण के प्रति शून्यता आ जाती है। कर्म के कारण की शून्यता से वह नये कर्मो के आरम्भ का परित्यागी हो जाता है। ये मायातीत मनुष्य का विशेष गुण है।

## 34–माया से अतीत होने का एक सरल उपाय–

माया की प्रबलता एवं उसके प्रभाव को आप सहजता पूर्वक जान गये होंगे। हम सभी उसकी प्रबलता और उसके प्रभाव से आवृत हैं, आच्छादित हैं। प्रभाव और प्रबलता से आवृत होकर ही हमें नाना प्रकार की सांसारिक चेष्टाऐं करनी पड़ती हैं। सांसारिक चेष्टाओं के कारण ही हमारा मन और बुद्धि दोनों ही संसार में रम जाती हैं। संसार में मन तथा बुद्धि रमती है तब संसार मन बुद्धि में रच–बस जाता है। इस प्रकार की सांसारिक प्रक्रिया में प्रत्येक मनुष्य रहता है। हम संसार में होने वाली क्रियाओं के आकर्षण में फंसते हैं। जैसा मन तथा बुद्धि कहती है वैसा ही हम

करते रहते हैं। मन तथा बुद्धि में संसार का साम्राज्य बस जाता है और उसकी प्रत्येक गतिविधि समा जाती है। मन तथा बुद्धि में बसे हुये संसार के साम्राज्य को निकालकर उसमें परमात्मा का साम्राज्य स्थापित करना है। मन बुद्धि से जब संसार का साम्राज्य समाप्त हो जायेगा, तब परमात्मा का साम्राज्य उसमें स्वतः आ जायेगा। मन बुद्धि में जब परमात्मा का साम्राज्य पूरी तरह से आ जायेगा तब हम संसार के साम्राज्य का परित्याग कर देंगे। ये स्थिति माया से अतीत मनुष्य की है।

मन बुद्धि से संसार के साम्राज्य को हटाने और उस खाली स्थान में मन बुद्धि में परमात्मा के साम्राज्य को स्थापित करने का प्रयास करें। ये कार्य आपको स्वयं करना पड़ेगा, क्योंकि हमने ही मन तथा बुद्धि में संसार का साम्राज्य भरा है तो हम ही उसे हटाएंगे। लोग पूछते हैं कि कैसे हटेगा? तो हम उत्तर देते हैं कि जैसे बसाया था वैसे ही हटाना पड़ेगा।

भवन बनाने वाले को यह ज्ञात होता है कि भवन कैसे टूटेगा? उस भवन बनाने में समय लगता है पर तोड़ने में बहुत कम समय लगता है। जितने समय में भवन बनाया गया है उससे बहुत कम समय में भवन टूट जाता है। हमारे मन तथा बुद्धि में जीवन भर संसार रहा है। बसा है। यदि हम चाहेंगे तो बहुत कम समय में मन और बुद्धि से संसार निकल जायेगा। संसार की जो जो वस्तुएं, स्थितियॉ मन बुद्धि में बैठी हुई हैं उन्हें हम जबरदस्ती निकाल कर बाहर करें और उनके स्थान पर परमात्मा को बैठा दें। जितनी वस्तुएं निकाले, जितनी स्मृतियों को विस्मृत करें उस स्थान में परमात्मा को स्थापित करते जायें। ये क्रिया करते–करते एक दिन संसार बाहर होगा और परमात्मा अन्दर बैठ जायेगा। संसार की शून्यता और परमात्मा की उपस्थिति से हम तत्काल गुणों से अतीत हो जायेंगे। यह प्रक्रिया हमें स्वयं करनी पड़ेगी जिससे हम गुणातीत और मायातीत हो जायेंगें।

## 35– एक मात्र सहारा परमात्मा का–

इस जगत में तीन प्रकार के मनुष्य हैं। एक वे हैं जो संसार के सहारे रहते हैं और दूसरे वे हैं जो संसार तथा परमात्मा दोनों के सहारे रहते हैं। अर्थात् मौका पड़ते ही संसार का आश्रय लेते हैं और संसार का सहारा गड़बड़ दिखने पर परमात्मा का सहारा लेने का प्रयास करते हैं। तीसरे मनुष्य वे हैं जो संसार का पूर्ण आश्रय त्यागकर एक मात्र परमात्मा का ही आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। जैसे एक छोटा बालक प्रतिकूलता देखते ही माता की गोद की ओर भागता है। पहले प्रकार

के लोग संशययुक्त होते हैं। दूसरे प्रकार के मनुष्य संशय में तो रहते हैं और पूर्ण संशय से मुक्त न हो पाने के कारण संसार का आश्रय लेते रहते हैं। और तीसरे प्रकार के मनुष्य संशय से पूर्ण मुक्त होकर धीरे–धीरे मायातीत हो जाते हैं।

हमें यदि इस जीवन में मुक्त होना है तो परमात्मा का एकमात्र आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए। और संसार के समस्त आश्रयों का पूर्ण परित्याग कर देना चाहिए। चित्त की समस्त वृत्तियों को परमात्मा में समाहित कर देना चाहिए।यह विचार दृढ़ कर लें।

**एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।**

**16.02.2012**

परमात्मा की असीम कृपा